गीता दर्शन–भाग-7
अध्याय—14 (प्रवचन—पहला) — चाह है संसार और अचाह हे परम सिद्धि

श्रीमद्भगवद्गली अथ चतर्दशोऽध्याय —

श्रीभगवानवाच:

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम्।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गता।। 1 ।।
हदं ज्ञानमुपाश्चित्य मम साधर्म्यमागताः ।
सर्गेंऽपि नोयजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च।। 2 ।।
मम योनिर्महद्रब्रह्म तीस्मनार्भं दधाथ्यहम्।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत।। 3 ।।
इसके उपरांत श्रीकृष्ण बोले हे अर्जुन, ज्ञानों में भी अति उत्तम परम ज्ञान को मैं फिर भी तेरे लिए कहूंगा? कि जानकर जानकर सब मुनिजन हम संसार से मुकृति होकर परम सिद्धि को प्राप्त हो गए हैं।

हे अर्जुन, हम ज्ञान को आश्रय करके अर्थात धारण करके मेरे स्वरूप को प्राप्त हुए पुरुष सृष्टि के आदि में पुन: उत्पन्न नहीं होते हैं और प्रलयकाल में भी व्याकुल नहीं होते हैं। है अर्जुन, मेरी महत ब्रह्मरूप प्रकृति अर्थात त्रिगुणमयी माया संपूर्ण भूतों की योनि है अर्थात गर्भाधान का स्थान है और मैं उस योनि में चेतनरूप बीज को स्थापन करता हूं। उस जड़—चेतन के संयोग से सब भूतों की उत्पत्ति होती है।

यूनान में एक विचारक हुआ, पिरहो। विचारक को जैसा होना चाहिए, जितने संदेह से भरा हुआ, उतने संदेह—से भरा हुआ विचारक पिरहो था।

एक दिन सांझ पिरहो निकला है अपने घर के बाहर। वर्षा के दिन हैं। रास्ते के किनारे एक गड्ढे में उसका का गुरु गिर पड़ा है और फंस गया है। गले तक कीचड़ में डूबा हुआ गुरु; पिरहो किनारे खड़ा होकर सोचता है, निकालूं या न निकालूं! क्योंकि पिरहो का खयाल है, तब तक कोई कर्म करना उचित नहीं, जब तक कि उसके परिणाम पूरी तरह सुनिश्चित रूप से शात न हो जाएं। और परिणाम शुभ होंगे या अशुभ, जब तक यह साफ न हो, तब तक कर्म में उतरना भ्रांति है।

गुरु को बचाने से शुभ होगा या अशुभ; गुरु बचकर जो भी करेंगे जीवन में, वह शुभ होगा या अशुभ, जब तक यह साफ न हो जाए, तब तक पिरहो गुरु को कीचड़ से निकालने को तैयार नहीं है। क्योंकि कोई भी कृत्य तभी किया जा सकता है, जब उसके अंतिम फल स्पष्ट हो जाएं।

भला हुआ कि और लोग आ गए और उन्होंने डूबते हुए गुरु को बचा लिया। लेकिन पिरहो किनारे पर ही खड़ा रहा। और जानकर आप आश्चर्यचकित होंगे कि जिन दूसरे शिष्यों ने गुरु को बचाया, गुरु ने कहा कि वे ठीक—ठीक विचारक नहीं हैं, ठीक विचारक पिरहो ही है। इसलिए मेरी गद्दी का अधिकारी वही है। क्योंकि जिस कर्म का फल तुम्हें साफ नहीं, तुम उसे कर कैसे सकते हो?

पिरहो पश्चिम में संदेहवाद का जन्मदाता है। लेकिन अगर कर्म का फल स्पष्ट न हो, तो कोई भी कर्म किया नहीं जा सकता। क्योंकि किसी कर्म का फल स्पष्ट नहीं है, और स्पष्ट नहीं हो सकता है। क्योंकि कर्म है अभी, और फल है भविष्य में। और प्रत्येक कर्म अनेक फलों में ले जा सकता है, वैकल्पिक फल हैं। इसलिए अगर कोई यही तय कर ले कि जब तक फल निर्णायक रूप से निश्चित न हो, तब तक मैं कर्म में हाथ न डालूंगा, तो वैसा व्यक्ति कोई भी कर्म नहीं कर सकता है।

पिरहो खडा है—इसे फिर से सोचें। अगर मुझे वह मिल जाए तो उससे मैं कहूंगा कि खड़े रहने का फल ठीक होगा या बचाने का, यह भी सोचना जरूरी है। क्योंकि खड़ा होना कृत्य है। तुम कुछ निर्णय ले रहे हो। गुरु को बचाना ही

अकेला निर्णय नहीं है। मैं खड़ा रहूं या बचाने में उतरूं, यह भी निर्णय है। मैं इस समय सोचूं या कर्म करूं, यह भी निर्णय है।

निर्णय से बचने का कोई उपाय नहीं है। चाहे मैं कुछ करूं और चाहे न करूं, निर्णय तो लेना ही होगा। और करने का भी फल होता है, न करने का भी फल होता है। न करने से गुरु मर भी सकता था। तो न करने का फल नहीं होता, ऐसा मत सोचना। फल तो न करने का भी होता है। कर्म का भी फल होता है, आलस्य का भी फल होता है।

हम कुछ करें या न करें, निर्णय तो लेना ही होगा। निर्णय मजबूरी है। इसलिए जो सोचता हो कि मैं निर्णय से बच रहा हूं वह बेईमान है। क्योंकि बचना भी अंततः निर्णय है और उसके भी फल होंगे। अर्जुन भी ऐसी ही दुविधा में है। वह कर्म में उतरे, न उतरे? युद्ध में प्रवेश करे, न करे? क्या होगा फल? शुभ होगा कि अशुभ होगा? इसके पहले कि वह कदम उठाए, भविष्य को देख लेना चाहता है। जो कि संभव नहीं है, जो कभी भी संभव नहीं हुआ और कभी भी संभव नहीं होगा। क्योंकि भविष्य का अर्थ ही यह, जो न देखा जा सके, जो अभी नहीं है, जो अभी गर्भ में है; होगा।

वर्तमान देखा जा सकता है। निर्णय वर्तमान के संबंध में लिए जा सकते हैं। भविष्य अंधेरे में है, छिपा है अज्ञात में। अर्जुन चाहता है, उसका भी निर्णय ले ले, तो ही युद्ध में उतरे।

और ध्यान रहे, पिरहो और अर्जुन की हालत में बहुत फर्क नहीं है। अर्जुन की हालत और भी बुरी है। वहा तो एक आदमी डूबता और मरता था, यहां लाखों लोगों के मरने और बचने का सवाल है। युद्ध की आखिरी घड़ी में उसके मन को संदेह ने पकड़ लिया है।

वस्तुत: जब भी आपको कोई कर्म करने का निर्णय लेना होता है, तब आप सभी अर्जुन की अवस्था में पहुंच जाते हैं। इसलिए अधिक लोग निर्णय लेने से बचते हैं। कोई और उनके लिए निर्णय ले ले। पिता बेटे से कह दे, ऐसा करो। गुरु शिष्य से कह दे, ऐसा करो। आप इसीलिए आशा मानते हैं। आज्ञा मानने की मौलिक आधारशिला खुद निर्णय से बचना है।

दुनिया में लोग कहते हैं कि लोगों को स्वतंत्र होना चाहिए। लेकिन लोग स्वतंत्र नहीं हो सकते। लोग आज्ञा मानेंगे ही। क्योंकि आज्ञा मानने में एक तरकीब है, उसमें निर्णय कोई और लेता है, आप निर्णय की जो दुविधा है, निर्णय का जो कष्ट है, जो कठिनाई है, उससे बच जाते हैं। इसलिए लोग गुरु को खोजते हैं, नेताओं को खोजते हैं। किसी के पीछे चलना चाहते हैं।

पीछे चलने में एक सुविधा है, जो आगे चल रहा है, वह निर्णय लेगा। पीछे चलने वाले को निर्णय लेने की जरूरत नहीं है। यद्यपि यह भी भ्रांति है। क्योंकि किसी के पीछे चलने का निर्णय लेना, सारे निर्णयों की जिम्मेवारी आपके ऊपर आ गई। चुन तो आपने लिया है, लेकिन अपने को धोखा देने की सुविधा है।

अर्जुन जैसी कठिनाई प्रत्येक व्यक्ति को अनुभव होगी। इसलिए गीता का संदेश बहुत शाश्वत है। क्योंकि प्रत्येक मनुष्य के जीवन में वही कठिनाई है। हर कदम पर, प्रतिपल, एक पैर भी उठाना है, तो निर्णय लेना है। क्योंकि हर पैर उठाने का परिणाम होगा और जीवन भिन्न होगा। एक कदम भी बदल देने से जीवन भिन्न हो जाएगा।

आज आप यहां मुझे सुनने आ गए हैं। आपका जीवन वही नहीं हो सकता अब, जो आप मुझे सुनने न आए होते तो होता। वही हो ही नहीं सकता। अब कोई उपाय नहीं है। यह बड़ा निर्णय है। क्योंकि इस समय में आप कुछ करते। किसी के प्रेम में पड़ सकते थे, विवाह कर सकते थे। किसी से झगड़ सकते थे, दुश्मनी पैदा कर सकते थे। इस समय में कुछ न कुछ आप करते, जो जिंदगी को कहीं ले जाता।

इस समय मुझे सुन रहे हैं। यह भी कुछ कर रहे हैं। यह भी जिंदगी को कहीं ले जाएगा। क्योंकि एक—एक शब्द आपको भिन्न करेगा। आप वही नहीं हो सकते। चाहे आप मैं जो कहूं उसे मानें या न मानें, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। न मानें, तो भी आप वही नहीं होंगे। क्योंकि न मानने का निर्णय आपको भिन्न जगह ले जाएगा। मानें तो भी, न मानें तो भी!

एक पलक भी झपकी, तो हम बदल रहे हैं। और एक पलक का फासला बड़ा फासला हो सकता है। मंजिल में हजारों मील का फर्क हो सकता है।

इस अर्जुन की मनःस्थिति को ठीक से समझ लें, तो फिर कृष्ण का प्रयास समझ में आ सकता है कि कृष्ण क्या कर रहे हैं।

अर्जुन उस दुविधा में खड़ा है, जो प्रत्येक मन की दुविधा है। और जब तक मन रहेगा, दुविधा रहेगी। क्योंकि मन कहता है, तुम कुछ करने जा रहे हो, इसका परिणाम तुम्हें ज्ञात नहीं। और जब तक परिणाम ज्ञात न हो, तुम कैसे करने में उतर रहे हो? मन प्रश्न उठाता है और उत्तर नहीं है।

अर्जुन प्रश्न—चिह्न बनकर खड़ा है। उत्तर की तलाश है। यह उत्तर उधार भी मिल सकता है। कोई कह दे और जिम्मेवारी अपने ऊपर ले ले। कोई कह दे कि भविष्य ऐसा है। भविष्य के संबंध में कोई निर्णायक मंतव्य दे दे और सारा जिम्मा अपने ऊपर ले ले, तो अर्जुन युद्ध में कूद जाए या युद्ध से रुक जाए। कोई भी निष्कर्ष अर्जुन ले सकता है। लेकिन तब निर्णय उधार होगा, किसी और पर निर्भर होगा।

कृष्ण कोई उधार वक्तव्य अर्जुन को नहीं देना चाहते। इसलिए गीता एक बड़ा गहन मनो—मंथन है। एक शब्द में भी कृष्ण कह सकते थे कि मुझे पता है भविष्य। तू युद्ध कर। पर कृष्ण की अनुकंपा यही है कि उत्तर न देकर, अर्जुन के मन को गिराने की वे चेष्टा कर रहे हैं। जहां से संदेह उठते हैं, उस स्रोत को मिटाने की कोशिश कर रहे हैं; न कि संदेह के ऊपर आस्था और श्रद्धा का एक पत्थर रखकर उसको दबाने की।

अर्जुन को किसी तरह समझा—बुझा देने की कोशिश नहीं है। अर्जुन को रूपांतरित करने की चेष्टा है। अर्जुन नया हो जाए, वह उस जगह पहुंच जाए जहां मन गिर जाता है। जहां मन गिरता है, वहां संदेह गिर जाता है। क्योंकि कौन करेगा संदेह? जहां मन गिरता है, वहा भविष्य गिर जाता है, क्योंकि कौन सोचेगा भविष्य? मन के गिरते ही वर्तमान के अतिरिक्त और कोई अस्तित्व नहीं है। मन के गिरते ही व्यक्ति कर्म करता है, लेकिन कर्ता नहीं होता है। क्योंकि वहां कोई अहंकार नहीं बचता पीछे, जो कहे, मैं। मन ही कहता है, मैं।

फिर कर्म सहज और सरल हो जाता है। फिर वह कर्म चाहे युद्ध में जाना हो, चाहे युद्ध से हट जाना हो, लेकिन उस कर्म के पीछे कर्ता नहीं होगा। सोच—विचारकर, गणित, तर्क से लिया गया निष्कर्ष नहीं होगा। सहज होगा कर्म। अस्तित्व जो चाहेगा उस क्षण में, वही अर्जुन से हो जाएगा। कृष्ण की भाषा में, परमात्मा जो चाहेगा अर्जुन से वही हो जाएगा। अर्जुन निमित्त हो जाएगा।

अभी अर्जुन कर्ता होने की कोशिश कर रहा है। अभी वह चाहता है, मैं जो करूं, उसकी जिम्मेवारी मेरी है। उसका दायित्व मेरा है। मेरे ऊपर होगा, शुभ या अशुभ। मैं कर रहा हूं।

और अगर आप कर रहे हैं, तो बड़ी चिंता पकड़ेगी। इसलिए जितना ज्यादा मैं का भाव होगा, उतनी ज्यादा जीवन में चिंता होगी। जितना मैं का भाव कम होगा, उतनी चिंता क्षीण हो जाएगी। और जिस व्यक्ति को चिंता से बिलकुल मुक्त होना है, उसे मैं से मुका हो जाना पड़ेगा। मैं ही चिंता है।

लोग मेरे पास आते हैं। वे कहते हैं, हम कैसे निश्चित हो जाएं? मैं उनसे कहता हूं जब तक तुम हो, तब तक निश्चित न हो सकोगे। क्योंकि तुम चिंता के स्रोत हो। जैसे बीज से अंकुर निकलते हैं, ऐसे तुमसे चिंताओं के अंकुर निकलते हैं। तुम चिंताओं को पोषण कर रहे हो। तुम आधार हो। फिर तुम परेशान हो कि मैं कैसे निश्चित हो जाऊं! तब निश्चित होना और एक नई चिंता बन जाती है। तब शात होने की चेष्टा एक नई अशांति बन जाती है।

इसलिए साधारण आदमी उतना चिंतित नहीं है, जितना धार्मिक, असाधारण आदमी चिंतित होता है। अपराधी उतना चिंतित नहीं है, जितना साधु चिंतित दिखाई पड़ता है।

जितना ज्यादा चिंता से हम छूटना चाहते हैं, उतनी नई चिंता हमें पकड़ती है। एक तो यह नई चिंता पकड़ लेती है कि चिंता से कैसे छूटें! और कोई उपाय नहीं दिखाई पड़ता छूटने का, तो मन बड़े भयंकर बोझ से दब जाता है। जैसे कोई छुटकारा नहीं, कोई मार्ग नहीं। इस कारागृह के बाहर जाने के लिए कोई द्वार खुला नहीं दिखता, कोई स्रोत नहीं दिखता, कोई सूत्र नहीं समझ में आता कि कैसे बाहर जाएं। एक प्रकाश की किरण भी दिखाई नहीं पड़ती।

जो उस अंधेरे में मजे से रह रहा है, उसकी चिंताएं कारागृह के भीतर की हैं। जो कारागृह के बाहर जाना चाहता है, उसकी तो नई चिंताएं आ गईं, कि कारागृह से बाहर कैसे निकलें? इसलिए धार्मिक आदमी गहन चिंता में डूब जाता है। यह स्वाभाविक है। मैं चूंकि चिंता का केंद्र है।

कृष्ण की पूरी चेष्टा यही है कि अर्जुन कैसे मिट जाए। गुरु का सारा उपाय सदा ही यही रहा है कि शिष्य कैसे मिट जाए।

यहां जरा जटिलता है। क्योंकि शिष्य मिटने नहीं आता। शिष्य होने आता है। शिष्य बनने आता है, कुछ पाने आता है। सफलता, शाति, सिद्धि, मोक्ष, समृद्धि, स्वास्थ्य—कुछ पाने आता है। इसलिए गुरु और शिष्य के बीच एक आंतरिक संघर्ष है। दोनों की आकांक्षाएं बिलकुल विपरीत हैं। शिष्य कुछ पाने आया है और गुरु कुछ छीनने की कोशिश करेगा। शिष्य कुछ होने आया है, गुरु मिटाने की कोशिश करेगा। शिष्य कहीं पहुंचने के लिए उत्सुक है, गुरु उसे यहीं ठहराने के लिए उत्सुक है।

पूरी गीता इसी संघर्ष की कथा है। अर्जुन घूम—घूमकर वही चाहता है, जो प्रत्येक शिष्य चाहता है। कृष्ण घूम—घूमकर वही करना चाह रहे हैं, जो प्रत्येक गुरु करना चाहता है। एक दरवाजे से कृष्ण हार जाते लगते हैं, क्योंकि अज्ञान गहन है, तो दूसरे दरवाजे से कृष्ण प्रवेश की कोशिश करते हैं। वहां भी हारते दिखाई पड़ते हैं, तो तीसरे दरवाजे से प्रवेश करते हैं।

ध्यान रहे, शिष्य बहुत बार जीतता है। गुरु सिर्फ एक बार जीतता है। गुरु बहुत बार हारता है शिष्य के साथ। लेकिन उसकी कोई हार अंतिम नहीं है। और शिष्य की कोई जीत अंतिम नहीं है। बहुत बार जीतकर भी शिष्य अंततः हारेगा। क्योंकि उसकी जीत उसे कहीं नहीं ले जा सकती। उसकी जीत उसके दुख के डबरे में ही उसे डाले रखेगी। और जब तक गुरु न जीत जाए, तब तक वह दुख के डबरे के बाहर नहीं आ सकता है। लेकिन संघर्ष होगा। बड़ा प्रीतिकर संघर्ष है। बड़ी मधुर लड़ाई है।

शिष्य की अड़चन यही है कि वह कुछ और चाह रहा है। और इन दोनों में कहीं मेल सीधा नहीं बैठता। इसलिए गीता इतनी लंबी होती जाती है। एक दरवाजे से कृष्ण कोशिश करते हैं, अर्जुन वहा जीत जाता है। जीत जाता है मतलब, वहा नहीं टूटता। जीत जाता है मतलब, वहा नहीं मिटता। चूक जाता है उस अवसर को। उसकी जीत उसकी हार है। क्योंकि अंततः जिस दिन वह हारेगा, उसी दिन जीतेगा। उसकी हार उसका समर्पण बनेगी।

तो कृष्ण दूसरे दरवाजे पर हट जाते हैं; दूसरे मोर्चे से संघर्ष शुरू हो जाता है। ये प्रत्येक अध्याय अलग— अलग मोर्चे हैं। और इन अलग— अलग अध्यायों में वे सब द्वार आ गए हैं, जिनसे कभी भी किसी गुरु ने शिष्य को मिटाने की कोशिश की है। अर्जुन मिटे तो ही हल हो सकता है। बिना मिटे कोई हल नहीं है।

शिष्य की मृत्यु में ही समाधान है। क्योंकि वहीं उसकी बीमारियां गिरेंगी। वहीं उसकी समस्याएं गिरेंगी। वहीं उसके प्रश्न गिरेंगे। वहीं से उसके भीतर उसका उदय होगा, जिसके लिए कोई समस्याएं नहीं हैं। वह चेतना भीतर छिपी है और उसे मुक्त करना है। और जब तक यह साधारण मन न मर जाए, तब तक कारागृह नहीं टूटता, जंजीरें नहीं गिरतीं, भीतर छिपा हुआ प्रकाश मुक्त नहीं होता।

प्रकाश बंद है आप में, उसे मुक्त करना है। और आपके अतिरिक्त कोई बाधा नहीं डाल रहा है। आप सब तरह से कोशिश करेंगे, क्योंकि आप समझ रहे हैं जिसे अपना स्वरूप, जिस अहंकार को, आप उसको बचाने की कोशिश करेंगे। आप सोचते हैं, आत्म—रक्षा कर रहे हैं। अर्जुन भी आत्म—रक्षा में संलग्न है। लेकिन गुरु अंततः जीतता है।

उसके हारने का कोई उपाय नहीं है। बहुत बार हारता है। उसकी सब हार झूठी है। शिष्य बहुत बार जीतता है। उसकी सब जीत झूठी है। अंततः उसे हार जाना होगा। अब हम इस सूत्र में प्रवेश करें।

कृष्ण बोले, हे अर्जुन, ज्ञानों में भी अति उत्तम परम ज्ञान को मैं फिर भी तेरे लिए कहूंगा कि जिसको जानकर सब मुनिजन इस संसार से मुक्त होकर परम सिद्धि को प्राप्त हो गए हैं।

ज्ञानों में भी अति उत्तम परम ज्ञान मैं फिर तेरे लिए कहूंगा। बहुत बार पहले भी उन्होंने कहा है। कहते हैं, फिर तेरे लिए कहूंगा। गुरु थकता ही नहीं। जब तक तुम सुन ही न लोगे, तब तक वह कहे ही चला जाएगा।

पश्चिम में बुद्ध के वचनों पर बड़ी खोज हुई है। वे बड़े हैरान हुए। हैरानी की बात है। क्योंकि बुद्ध अस्सी साल जीए। कोई चालीस साल की उम्र में ज्ञान हुआ। वे चालीस साल तुम अलग कर दो। फिर चालीस साल बचते हैं। इन चालीस साल में एक तिहाई हिस्सा तो नींद में चला गया होगा। कुछ घंटे भोजन—भिक्षा में चले गए होंगे रोज। कुछ घंटे रोज यात्रा में चले गए होंगे। अगर आठ घंटे नींद के गिन लें, चार घंटे रोज यात्रा के गिन लें, दो घंटे स्नान— भोजन—भिक्षा के गिन लें, तो चालीस साल में से करीब तीस साल ऐसे व्यय हो जाते हैं। दस साल बचते हैं।

लेकिन पश्चिम की खोज कहती है कि बुद्ध के इतने वचन उपलब्ध हैं कि अगर बुद्ध पैदा होने के दिन से पूरे सौ वर्ष अहर्निश बोले हों, सुबह से दूसरी सुबह तक, न सोए हों, न उठे, न बैठे हों, तो भी शास्त्र ज्यादा मालूम पड़ते हैं। एक व्यक्ति सौ वर्ष निरंतर बोलता रहे, बिना रुके, अविच्छिन्न, जन्म के दिन से मरने के क्षण तक, न सोए, न कुछ और करे, तो इतना बोल पाएगा जितना बुद्ध के वचन उपलब्ध हैं।

स्वभावत:, खोज करने वाले कहते हैं कि ये प्रक्षिप्त हैं। दूसरे लोगों के वचन इसमें मिल गए हैं। एक आदमी इतना बोल नहीं सकता। दस साल में इतना नहीं बोला जा सकता, जितना कि सौ साल निरंतर कोई बोले! इसका मतलब यह हुआ कि अगर बुद्ध दस गुना जीते, तो इतना बोल सकते थे। या दस बुद्ध होते, तो इतना बोल सकते थे।

मैं इसका कुछ और ही अर्थ लेता हूं। मैं इसका इतना ही अर्थ लेता हूं कि जो बात इतनी लंबी मालूम पडती है, उसके लंबे होने का कारण शिष्यों के साथ. अर्जुन के साथ तो कृष्ण का अकेला संघर्ष है, एक शिष्य है। बुद्ध के पास दस हजार शिष्य थे। यह संघर्ष बड़ा है, विराट है। इतने वचन इसीलिए हैं, जैसे बुद्ध दस मुंह से एक साथ बोले हों। ऐसी कोई जगह नहीं छोड़ी है, जहां से शिष्य के ऊपर हमला न किया हो, आक्रमण न किया हो।

गुरु थकता नहीं।

फिर से तेरे लिए कहूंगा! ज्ञानों में भी अति उत्तम ज्ञान को, परम ज्ञान को मैं फिर से तेरे लिए कहूंगा कि जिसको जानकर सब मुनिजन इस संसार से मुक्त होकर परम सिद्धि को प्राप्त हो गए हैं। अज्ञान गैर—जानकारी का नाम नहीं है। अज्ञान गलत जानकारी का नाम है। गैर—जानकारी भोलापन भी हो सकती है। अज्ञान जटिल है, भोलापन नहीं है। अज्ञानी कुशल होते हैं, चालाक होते हैं, कुटिल होते हैं। अज्ञानी नहीं जानता, ऐसा नहीं है, गलत जानता है। इसे थोड़ा ठीक से समझ लें।

न जानने से हम उलझन में नहीं पड़े हैं। हमारी उलझन गलत जानने की उलझन है। न जानने से कोई कैसे उलझेगा? गलत जानने से कोई उलझ सकता है। उलझने के लिए भी कुछ जानना जरूरी है।

थोड़ी देर को समझें, अर्जुन की जगह अगर कोई सच में ही भोला— भाला आदमी होता, जो कुछ नहीं जानता, तो वह युद्ध में उतर जाता। क्या अड़चन थी? अर्जुन के सिवाय किसी ने सवाल नहीं उठाया।

भीम है, उसे कोई अड़चन नहीं है। वह अपनी गदा उठाए तैयार खड़ा है। जब भी युद्ध शुरू हो जाएगा, वह कूद पड़ेगा। वह भी अज्ञानी है। लेकिन अर्जुन से भिन्न तरह का अज्ञान है। उसका अज्ञान सिर्फ जानकारी का अभाव है।

उसे ये सवाल भी नहीं उठते कि क्या शुभ है, क्या अशुभ है। मारूंगा, तो पाप लगेगा कि पुण्य होगा, ये सब सवाल भी नहीं उठते। वह बच्चे की तरह है।

अर्जुन पंडित है। अर्जुन जानता है। अर्जुन जानता है कि यह बुरा है, यह भला है, ऐसा करना चाहिए, ऐसा नहीं करना चाहिए। धर्म — अधर्म का उसे खयाल है। उसकी जानकारी ही उसकी उलझन है।

अज्ञान अगर सिर्फ गैर—जानकारी हो, तो मनुष्य सरल होता है, निर्दोष होता है, बच्चों की भांति होता है। उलझन नहीं होती। मुक्त नहीं हो जाता उतने से, कारागृह के बाहर भी नहीं निकल जाता, लेकिन कारागृह में ही प्रसन्न होता है। उसे कारागृह का पता ही नहीं होता। जानकारी हो, अड़चन शुरू हो जाती है।

अर्जुन की कठिनाई यह है कि उसे पता है कि गलत क्या है। लेकिन इतना भर पता होने से कि गलत क्या है, वासना नहीं मिट जाती। वासनाएं तो अपने ही मार्ग पर चलती हैं। और बुद्धि अलग मार्ग पर चलने लगती है, दुविधा खड़ी होती है। पूरी प्रकृति शरीर की कुछ कहती है करने को, और बुद्धि ऊपर से खड़े होकर सोचने लगती है। व्यक्ति दो हिस्सों में बंट जाता है। यह बंटाव, यह खंडित हो जाना व्यक्ति का, यह स्पिलट पर्सनैलिटी, दो स्वर का पैदा हो जाना, इससे दुविधा खड़ी होती है। फिर कोई निर्णय नहीं लिया जा सकता।

अर्जुन युद्ध तो करना ही चाहता है। सच तो यह है कि वही युद्ध की इस स्थिति को ले आया है। कौन कहता था युद्ध करो? युद्ध की इस घड़ी तक आने की भी कोई जरूरत न थी। वासनाएं तो युद्ध के क्षण तक ले आई हैं। इस सारे युद्ध की जड़ में अर्जुन छिपा है। इसे थोड़ा समझ लेना चाहिए, क्योंकि उससे ही गीता का अर्थ भी स्पष्ट होगा।

यह सारा युद्ध शुरू होता है द्रौपदी के साथ। द्रौपदी को अर्जुन ले आया। दुर्योधन भी लाना चाहता था। वह सुंदरतम स्त्री रही होगी। न केवल सुंदरतम, बल्कि तीखी से तीखी स्त्रियों में एक। सौंदर्य जब तीखा होता है, तो और भी प्रलोभित हो जाता है। द्रौपदी तेज, अति तीव्र धार वाली स्त्री है। उसने सभी को आकर्षित किया होगा। दुर्योधन भी उसे अपनी पत्नी बनाकर ले आना चाहता था।

वासनाओं का संघर्ष था। अर्जुन उसे ले आया।

संघर्ष भारी रहा होगा। क्योंकि अर्जुन के भी चार भाई उसे लाना चाहते थे। और स्त्री ऐसी कुछ रही होगी कि पांचों भाई उसके कारण टूट सकते थे और मिट सकते थे। इसलिए पांचों ने बांट लिया है। कहानी तो सिर्फ ढांकने का उपाय है।

कहानी है कि मां ने कहा कि तुम पांचों बांट लो, क्योंकि मां को कुछ पता नहीं। अर्जुन' ने बाहर से इतना ही कहा कि मां, देखो, क्या ले आया हूं! उसने भीतर से कहा कि तुम पांचों बांट लो। यह कहानी तो सिर्फ ढांकने का उपाय है। असली बात यह है कि द्रौपदी पर पांचों भाइयों की नजर है। और अगर द्रौपदी नहीं बंटती, तो ये पांचों कट जाएंगे, ये पांचों बंट जाएंगे। कु

इस द्रौपदी से सारा का सारा—अगर ठीक से समझें, तो काम से, वासना से, इच्छा से सारा सूत्रपात है। फिर उपद्रव बढ़ते चले जाते हैं। लेकिन मूल में द्रौपदी को पाने की आकांक्षा है। फिर धीरे— धीरे एक—एक बात जुड़ते—जुड़ते यह युद्ध आ गया।

आज तक अर्जुन को खयाल नहीं उठा; आखिरी चरण में ही स्मरण आया। अब तक इतनी सीढ़ियां चढ़कर जहां पहुंचा है, हर सीढ़ी से इस बात की सूचना मिल सकती थी।

जब भी आप कुछ चाहते हैं, आप युद्ध में उतर रहे हैं। क्योंकि आप अकेले चाहने वाले नहीं हैं, और करोड़ों लोग भी चाह रहे हैं। चाह का मतलब प्रतियोगिता है, चाह का मतलब युद्ध है। जैसे ही मैंने चाहा, कि मैं संघर्ष में उतर गया।

इसलिए ज्ञानियों ने कहा है कि संघर्ष के बाहर केवल वही हो सकता है, जिसकी कोई चाह नहीं। उसकी कोई प्रतिस्पर्धा नहीं है। वह किसी की दुश्मनी में नहीं खड़ा है।

पर अर्जुन को यह खयाल कभी नहीं आया। अब तक वह ठीक शरीर के एक हिस्से को मानकर चलता रहा। आज सारी चीज अपनी विकराल स्थिति में खड़ी हो गई है।

यह थोड़ा समझने जैसा है।

कामवासना जन्म की पर्यायवाची है और युद्ध मृत्यु का पर्यायवाची है। और सभी कामवासना अंत में मृत्यु पर ले आती है। ऐसा होगा ही। इसलिए ज्ञानियों ने कहा है, जो मृत्यु के पार जाना चाहता हो, उसे कामवासना के पार जाना होगा। काम में हमारा जन्म है और काम में ही हमारी मृत्यु है।

यह युद्ध तो आखिरी क्षण है, जब मृत्यु प्रकट हो गई। लेकिन इसका बीज तो बो दिया गया उस दिन, जिस दिन द्रौपदी पर कामवासना फेंकी गई। उस दिन इसका बीज बो दिया गया।

दुर्योधन भी चाहता था। अर्जुन के खुद दूसरे भाई भी चाहते थे। और चाह सभी की एक—सी है। गलत और सही चाह में कुछ भी नहीं होता। अर्जुन द्रौपदी को पा सका है, क्योंकि धनुर्विद्या में कुशल है। तो द्रौपदी को पाना किसी कुशलता पर निर्भर है, तो फिर दुर्योधन ने जुए में कुशलता दिखाने की कोशिश किया है और द्रौपदी को छीन लेना चाहा है। वह भी एक कुशलता है। कुशलता का संघर्ष है।

और महाभारत के एक—एक पात्र में उतरने जैसा है, क्योंकि वे जीवन के प्रतीक हैं।

द्रौपदी की शादी के बाद पांडवों ने एक महल बनाया, वह उत्सव के लिए था। और दुर्योधन और उसके भाइयों को निमंत्रित किया। महल ऐसा बनाया था, उस दिन की श्रेष्ठतम इंजीनियरिंग की व्यवस्था की थी, कि जहां दरवाजे नहीं थे, वहा दरवाजे दिखाई पड़ते थे, इस भांति कांचों का, दर्पणों का जमाव किया। जहां दीवार थी, वहा दरवाजा दिखाई पड़ता था, भ्रामक था। जहां दरवाजा था, वहा दीवार मालूम होती थी। दर्पणों के आयोजन से ऐसा किया जा सकता है।

और जब दुर्योधन उन झूठे दरवाजों में टकरा गया जहां दीवार थी, तो द्रौपदी हंसी और उसने कहा कि अंधे के लड़के हैं! यह व्यंग्य भारी पड़ गया। पांडव हंसे। उन्होंने मजा लिया। अंधे के बेटे तो जरूर कौरव थे। लेकिन कोई भी अपने बाप को अंधा नहीं सुनना चाहता, अंधा हो तो भी। कोई भी अपने को बुरा नहीं देखना चाहता। और ध्यान रहे, गाली एक बार क्षमा कर दी जाए, व्यंग्य क्षमा नहीं किया जा सकता। गाली उतनी चोट नहीं करती, व्यंग्य सूक्ष्मतम गाली है। किसी पर हंसना गहन से गहन चोट है। इसलिए ध्यान रखना, आप गाली देकर दूसरों को इतनी चोट नहीं पहुंचाते; जब कभी आप मजाक करते हैं, तब जैसी आप चोट पहुंचाते हैं, वैसी कोई गाली नहीं पहुंचा सकती।

महावीर ने अपने वचनों में कहा है कि साधु किसी का व्यंग्य न करे। इसको हिंसा कहा है, बड़ी से बड़ी हिंसा।

लेकिन अर्जुन ने उस दिन सवाल नहीं उठाया कि हम एक बड़ी हिंसा कर रहे हैं। न, यह सब वासना का खेल चलता रहा। अब यह उसकी अंतिम परिणति है। यह युद्ध उस सब का जाल है। यहां आकर उसे पता चला। यहां उसकी बुद्धि ने जब देखा चारों तरफ नजर डालकर कि क्या हमने कर डाला है! और हम कहां आकर खड़े हो गए हैं!

ध्यान रहे, जब भी आप किसी भ्रांति में कदम उठाते हैं, तो पहले कदम पर किसी को पता नहीं चलता। पहले कदम पर पता चल जाए, तो इस दुनिया में भ्रांतियां ही न हों। बस, अंतिम कदम पर पता चलता है, जब पीछे लौटना मुश्किल होता है।

जब आप में पहली दफा क्रोध उठता है, पहली लहर, तब आपको पता नहीं चलता। जब आप छुरा लेकर किसी की छाती में भोंकने को ही हो जाते हैं, जब कि अपने ही हाथ को रोकना असंभव हो जाता है, जब कि हाथ इतना आगे जा

चुका कि अब लौटाया नहीं जा सकता, कि आप लौटाना भी चाहें, तो अब मोमेंटम हाथ का ऐसा है कि अब लौट नहीं सकता। हाथ को जो गति मिल गई है, वह छुरा छाती में घुसकर रहेगा। अब एक ही उपाय है, इतना आप कर सकते हैं कि चाहें तो छुरे की धार अपनी छाती की तरफ कर लें या दूसरे की तरफ कर दें। लेकिन हाथ चल पडा। या तो हत्या होगी या आत्महत्या होगी।

जीवन में पहले कदम पर ही कुछ किया जा सकता है। इस संबंध में भी मनुष्य के अंतस्तल की एक यांत्रिक व्यवस्था को समझ लेना जरूरी है।

मनुष्य के व्यक्तित्व में दो तरह के यंत्र हैं। एक, जो स्वेच्छा से चालित है। हम इच्छा करते हैं, तो चलते हैं। दूसरे यंत्र हैं, जो स्वेच्छाचालित नहीं हैं, जो स्वचालित हैं। जिनमें हमारी इच्छा कुछ नहीं कर सकती। और जब पहले यंत्र से हम काम लेते हैं, तो एक सीमा आती है, जहां से काम पहले यंत्र के हाथ से दूसरे यंत्र के हाथ में चला जाता है।

समझें कि आप कामवासना से भर गए हैं। एक सीमा है, जब तक आप चाहें, तो रुक सकते हैं। लेकिन एक सीमा आएगी, जहां कि शरीर का स्वचालित यंत्र कामवासना को पकड़ लेगा। फिर आप रुकना भी चाहें, तो नहीं रुक सकते। फिर रुकना असंभव है। सभी वासनाएं दोहरे ढंग से काम करती हैं। पहले हम उन्हें इच्छा से चलाते हैं। फिर इच्छा उन्हें आग की तरह उत्तप्त करती है, सौ डिग्री पर लाती है, फिर वे भाप बन जाती हैं। फिर इच्छा के हाथ के बाहर हो जाती हैं। फिर आपके भीतर यंत्रवत घटना घटती है।

इसलिए बुद्ध ने कहा है, क्रोध पैदा हो, उसके पहले तुम जग जाना। वासना उठे, उसके पहले तुम उठ जाना और होश से भर जाना। क्योंकि पहला कदम अगर उठ गया, तो तुम्हें अंतिम कदम उठाने की भी मजबूरी हो जाएगी। मध्य में रुकना असंभव है। चीजें चल पड़ती हैं।

महावीर का एक बहुत प्रसिद्ध वचन है कि जो आधा चल पड़ा, वह मंजिल पर पहुंच ही गया। क्योंकि बीच से लौटना मुश्किल है। इसका कारण यही है कि हमारे भीतर दोहरे यंत्र हैं। आप अपनी किसी भी वृत्ति में इसका निरीक्षण करें, तो आपको पता चल जाएगा कि एक सीमा तक आप चाहें, तो वापस लौट सकते हैं, हाथ के भीतर है। आप खुद ही वह सीमा—रेखा पहचान लेंगे। और अगर अपने भीतर आपने उस सीमा को पकड़ लिया, जहां से इच्छाएं हाथ के बाहर हो जाती हैं, तो आप अपने मालिक हो सकते हैं।

अर्जुन आखिरी घड़ी में, जब कि सब हो चुका, बस आखिरी परिणाम होने को है, वहां आकर डांवाडोल हो गया है।

और ध्यान रहे, सभी लोग वहीं आकर डांवाडोल होते हैं। क्योंकि जब पूरी चीजें प्रकट होती हैं, तभी हमें होश आता है। पहले तो चीजें छिपी—छिपी चलती हैं। बहुत धाराओं में चलती हैं। छोटे—छोटे झरने बहते हैं। फिर सब झरने मिलकर जब बड़ा विराट नद बन जाता है, तब हमें दिखाई पड़ता है। फिर हमें लगता है, यह हमने क्या कर लिया! फिर हम भागना चाहते हैं। लेकिन अब घटना हम से बड़ी हो गई। और अब भागने का कोई उपाय नहीं है। अब पीछे हटने का कोई उपाय नहीं है।

अर्जुन उस घड़ी में बात कर रहा है, जहां कि चीजें स्वचालित हो गई हैं, जहां कि युद्ध अस्तित्व की घटना बन गई है। इसे थोड़ा समझ लेना चाहिए। जहां युद्ध से अब लौटने का कोई उपाय नहीं, जहां युद्ध होगा। पानी सौ डिग्री तक गरम हो चुका। अगर हम नीचे से अंगारे भी निकाल लें, तो भी भाप बनेगी। यह भाप का बनना अब एक नैसर्गिक कृत्य हो गया है। और इसी घड़ी में आदमी घबड़ाता है। लेकिन उसकी घबड़ाहट व्यर्थ है। रुकना था, पहले रुक जाना था।

यह जो अर्जुन आखिरी क्षण में डांवाडोल हो रहा है। सभी का मन होता है। नियम यह है कि या तो पहले क्षण में सजग हो जाएं और वासना की यात्रा पर न निकलें। और अगर कोई वासना अंतिम क्षण में पहुंच गई हो, तो घबडाएं मत। अब निमित्त होकर उसे पूरा हो जाने दें। निमित्त होकर पूरा हो जाने दें!

पहले क्षण में आप मालिक हो सकते हैं, निमित्त होने की जरूरत न थी। यहीं कृष्ण, महावीर की साधनाओं का भेद है। और इसलिए लोगों को लगता है कि ये तो बड़ी विपरीत बातें हैं।

जैन गीता को कोई आदर नहीं दे सकते, क्योंकि पूरे पहलू अलग हैं। गीता है वासना के आखिरी क्षण में साधना। महावीर की साधना के सारे सूत्र पहले क्षण में हैं। इसलिए महावीर कहते हैं, अपने मालिक बनो। क्योंकि अगर पहले क्षण में कोई निमित्त बन गया, तो व्यर्थ बह जाएगा वासना में। पहले क्षण में मालिक बन सकता है। ' जब तक इच्छा के अंतर्गत है सब, तब तक हम उसका त्याग कर सकते हैं। पहले क्षण में निमित्त बनने की कोई भी जरूरत नहीं है। और जो पहले क्षण में मालिक बन जाता है, उसे निमित्त बनने की कभी भी जरूरत नहीं पड़ेगी। अंतिम क्षण आएगा नहीं।

इसलिए महावीर की और कृष्ण की साधनाएं बिलकुल विपरीत मालूम पड़ेगी। और जो नहीं समझ सकते हैं, सिर्फ शास्त्र पढ़ते हैं, उनको लगेगा कि वे विरोधी हैं। वे विरोधी नहीं हैं।

जैसे कि कोई आदमी पानी गरम कर रहा है, और अभी उसने आग जलाई ही है। हम कहते हैं, अंगार बाहर खींच लो। अभी रुक सकती है बात। अभी पानी गरम भी नहीं हुआ था। अभी कुनकुना भी नहीं हुआ था। अभी भाप बनना बहुत दूर था। अभी आंच पकड़ी ही नहीं थी पानी को। अभी पानी अपनी जगह था, आपने चूल्हा जलाया ही था। अभी अंगारे, ईंधन वापस खींचा जा सकता है। महावीर कहते हैं, पहले क्षण में रुक जाओ, आधे के बाद रुकना मुश्किल हो जाएगा, चीजें तुम्हारी सामर्थ्य के बाहर हो जाएंगी। और निश्चित ही, जो पहले क्षण में नहीं रुक सकता, वह आधे में कैसे रुकेगा? क्योंकि पहले में चीजें बहुत कमजोर थीं, तब तुम न रुक सके! आधी में तो बहुत मजबूत हो गईं, तब तुम कैसे रुकोगे? और जब अंतिम, निन्यानबे डिग्री पर पानी पहुंच गया, तब तो तुम कैसे रुकोगे!

अगर महावीर से अर्जुन पूछता, तो वे कहते, जिस दिन तू द्रौपदी को स्वयंवर करने चला गया था, उसी दिन लौट आना था। वह पहला क्षण था। लेकिन कोई सोच भी नहीं सकता कि महाभारत का यह महायुद्ध द्रौपदी के स्वयंवर से शुरू होगा!

बीज में वृक्ष नहीं देखे जा सकते। जो देख ले, वह धन्यभागी है। वह वहीं रुक जाएगा। वह बीज को बोएगा नहीं। वृक्ष के फलों का कोई सवाल नहीं उठेगा।

लेकिन कृष्ण के सामने सवाल बिलकुल अन्यथा है। अंतिम क्षण है। घटना घटकर रहेगी। चीजें उस जगह पहुंच गई हैं, जहां से लौटाई नहीं जा सकतीं। चीजों ने अपनी गति ले ली है। स्वचालित हो गई हैं। अब युद्ध अवश्यंभावी है, भाग्य है, अब वह नियति है। इस क्षण में क्या करना?

इस क्षण में कृष्ण कहते हैं, तू निमित्त बन जा। अब तू कर्ता की तरह सोच ही मत। अब तू यह निर्णय ही मत ले। अब निर्णय अस्तित्व के हाथ छोड़ दे। तू सिर्फ एक उपकरण की तरह, जो हो रहा है उसे हो जाने दे। तू सिर्फ साक्षी रह और उपकरण बन।

जो व्यक्ति पहले क्षण में रुक जाए, उसे निमित्त बनने की कभी जरूरत न पड़ेगी। इसलिए महावीर की साधना में निमित्त शब्द का उपाय ही नहीं है, उपकरण बनने की बात ही फिजूल है। जो व्यक्ति किसी वासना के अंतिम चरण में साक्षी और निमित्त बन जाए, वह दूसरी वासना के प्रथम क्षण में कभी कदम नहीं उठाएगा। जो पहले कदम पर रुक जाए, उसे अंतिम तक पहुंचने का कोई कारण नहीं है। जो अंतिम पर निमित्त बन जाए, उस साक्षी भाव में वह चीजों को इतनी प्रगाढ़ता में देख लेगा कि दूसरी कोई भी वासना बीज की तरह उसको धोखा नहीं दे पाएगी।

अगर अर्जुन इस युद्ध में निमित्त बनकर गुजर जाए, तो कोई दूसरी द्रौपदी उसे कभी नहीं लुभाएगी। फिर कोई वासना का बीज, जहां से उपद्रव शुरू होता है, उसे पकड़ेगा नहीं। वह आर—पार देखने में समर्थ हो जाएगा, उसकी दृष्टि पारदर्शी हो जाएगी।

अंतिम क्षण में निमित्त और पहले क्षण में मालिक, ये साधना के सूत्र हैं। और दो में से एक काफी है। क्योंकि दूसरे की जरूरत नहीं पड़ेगी।

गानों में भी अति उत्तम परम ज्ञान को मैं फिर तेरे लिए कहूंगा कि जिसको जानकर सब मुनिजन इस संसार से मुक्त होकर परम सिद्धि को प्राप्त होते हैं।

इस संसार से मुक्त होकर...।

संसार को थोड़ा समझ लेना जरूरी है। संसार वह नहीं है, जो आपके चारों तरफ फैला हुआ दिखाई पड़ता है। संसार वह है, जो आपके मन के चारों तरफ आपने बो रखा है। और अगर इस बाहर के संसार से आपका कोई भी संबंध है, तो इस भीतर के मन की बुनावट के कारण है।

इस बाहर के संसार को मिटाने, छोड़ने, भागने का कोई अर्थ नहीं है। इस भीतर मन की जड़ों को, इस मन के जाल को, जिससे आप देखते हैं चारों तरफ, जिससे परमात्मा आपको संसार जैसा दिखाई पड़ता है, इन वासनाओं के परदों को या चश्मों को अलग कर लेने की बात है।

नहीं तो परम ज्ञान संसार से कैसे मुक्त करेगा! संसार तो रहेगा ज्ञानी के लिए भी। कृष्ण के लिए भी संसार है। बुद्ध के लिए भी संसार है। आपके लिए भी संसार है। संसार तो ज्ञानी के लिए भी है। लेकिन ज्ञानी के पास मन नहीं है, इसलिए इसी संसार को वह किसी और ढंग से देखने में समर्थ हो जाता है। यह संसार तब उसे ब्रह्म—स्वरूप दिखाई पड़ता है। इस संसार में तब उसे वह सारा उपद्रव, वह सारा युद्ध, वह सारा विग्रह नहीं दिखाई पड़ता, जो हमें दिखाई पड़ता है। यह सारा जो प्रपंच का जाल हमें दिखाई पड़ता है। यह हमारे मन का विभाजन है।

ऐसा समझें कि एक प्रिज्म में से कोई सूरज की किरण को निकालता है। जैसे ही सूरज की किरण प्रिज्म को पार करती है कि सात हिस्सों में टूट जाती है, सात रंगों में टूट जाती है, इंद्रधनुष पैदा हो जाता है। इंद्रधनुष इसी तरह बनता है। हवा में अटके हुए पानी के कण प्रिज्म का काम करते हैं। उन पानी के कणों से जैसे ही सूरज की किरण गुजरती है, वह सात हिस्सों में टूट जाती है। इंद्रधनुष निर्मित हो जाता है। सूरज की किरण में कोई भी रंग नहीं है, टूटकर सात रंग हो जाते हैं। सूरज की किरण रंगहीन है, टूटकर इंद्रधनुष बन जाती है।

जगत में कोई भेद नहीं, कोई प्रकार नहीं, कोई रंग नहीं। लेकिन मन के प्रिज्म से दिखाई पड़ने पर बहुत रंगीन हो जाता है, इंद्रधनुष की तरह हो जाता है। जगत हमारे मन से देखा गया ब्रह्म है। और जब मन से जगत देखा जाता है, अस्तित्व देखा जाता है, तो संसार निर्मित हो जाता है। संसार टूटा हुआ इंद्रधनुष है। किसी भी भाति प्रिज्म बीच से हट जाए तो इंद्रधनुष खो जाएगा और बिना रंग की शुद्ध किरण शेष रह जाएगी, रूप—रंगहीन। अदृश्य किरण शेष रह जाएगी।

संसार अर्थात मन। इस शब्द के कारण बड़ी भांति हुई। क्योंकि निरंतर ज्ञानीजन कहते रहे, संसार से ऊपर उठो। और अज्ञानीजन समझते रहे कि बाहर जो संसार फैला है, इससे भागो। इससे ऊपर उठो, मतलब हिमालय चले जाओ। कोई ऊंची जगह खोज लो, जहां संसार से ऊपर उठ गए। दूर हट जाओ इससे।

और इंद्रधनुष से जो भागता है, उससे ज्यादा पागल और कौन है! इंद्रधनुष न दिखाई पड़े, ऐसी दृष्टि चाहिए। यह दृष्टि भीतरी घटना है।

इसलिए कृष्ण कह सकते हैं, ज्ञानों में भी अति उत्तम परम ज्ञान मैं तुझसे फिर से कहूंगा कि जिसको जानकर सब मुनिजन संसार से मुक्त होकर परम सिद्धि को प्राप्त हो गए हैं।

संसार से मुक्त होना अर्थात मन से मुक्त होना। और मन से जो मुक्त हुआ, वह परम सिद्धि को प्राप्त हो जाता है। क्योंकि वह भीतर छिपी है सिद्धि। वह स्वभाव, वह परम निर्वाण या मोक्ष भीतर छिपा है।

जैसे ही मन नहीं, कि हमें अपने होने का पता चल जाता है कि हम कौन हैं। इस मन के कारण न तो हमें अस्तित्व की वास्तविकता दिखाई पड़ती है और न अपनी। यह प्रिज्म दोहरा है। यह संसार को तोड़ता है, बाहर अस्तित्व को तोड़ता है और भीतर स्वयं को तोडता है। तो भीतर हमें सिवाय विचारों के, वासनाओं के और कुछ भी दिखाई नहीं पडता।

धम ने कहा है कि जब भी मैं अपने भीतर जाता हूं, तो मुझे सिवाय वासनाओं के, विचारों के, कामनाओं के, कल्पनाओं के, स्वभों के और कुछ भी नहीं मिलता। और लोग कहते हैं, भीतर जाओ तो आत्मा मिलेगी। झूम ने कहा है कि अनुभव से मैं कहता हूं कि भीतर बहुत बार जाकर देखा, आत्मा कभी नहीं मिलती। और हजार चीजें मिलती हैं।

आप भी प्रयोग करेंगे, तो झूम से राजी होंगे। प्रयोग नहीं करते, इसलिए आप सोचते हैं, भीतर आत्मा छिपी है। भीतर जाते ही नहीं, इसलिए कभी मौका ही नहीं आता कि आप समझ सकें कि भीतर आपको क्या मिलेगा। आप भी भीतर जाएंगे तो अम से राजी होंगे। क्योंकि जब तक मन से छुटकारा न हो, तब तक भीतर भी इंद्रधनुष मिलेगा, सात रंग मिलेंगे, वास्तविक किरण नहीं मिलेगी, मौलिक किरण नहीं मिलेगी।

यह प्रिज्म दोहरा है। बाहर तोड़ता है, अस्तित्व संसार हो जाता है। भीतर तोड़ता है, अस्तित्व विचारों में बंट जाता है। भीतर प्रतिपल विचार चल रहे हैं।

यह संसार शब्द और भी सोचने जैसा है। संसार शब्द का मतलब होता है, चाक, दि व्हील। संसार का मतलब होता है, जो घूमता रहता है गाड़ी के चाक की तरह।

कभी आपने अपने मन के संबंध में सोचा कि मन बिलकुल गाड़ी के चाक की तरह घूमता है। वही—वही विचार बार—बार घूमते रहते हैं। आप एक दिन की डायरी बनाकर देखें। सुबह से उठकर लिखना शुरू करें शाम तक। आप बडे चकित हो जाएंगे कि आपके पास बड़ी दरिद्रता है, विचार की भी दरिद्रता है। वही विचार फिर घड़ी, आधा घड़ी बाद आ जाता है।

और अगर आप एक दो—चार महीने की डायरी ईमानदारी से रखें, तो आप पाएंगे कि इन विचारों के बीच वैसी ही श्रृंखला है, जैसी गाड़ी में लगे हुए आरों की होती है। वही स्पोक फिर आ जाता है, फिर आ जाता है, फिर आ जाता है। रिकरेंस, पुनरावृत्ति भीतर होती रहती है।

एक बहुत बडा वैज्ञानिक इस संबंध में अध्ययन कर रहा था, तो बहुत हैरान हुआ। क्योंकि अगर हम सोच लें कि एक विचार एक सेकेंड लेता हो, क्योंकि विचार ज्यादा वक्त नहीं लेता, एक सेकेंड में झलक आ जाती है, तो आप एक मिनट में कम से कम साठ विचार करते हैं। फिर इस साठ में आप और साठ का गुणा करें, तो एक घंटे में इतने विचार। फिर इसमें आप चौबीस का गुणा करें, तो एक दिन में इतने विचार। कई लाख विचार! बड़े से बड़ा विचारक भी कई लाख विचार एक दिन में दावा नहीं कर सकता।

तो आप भीतर बड़ी दरिद्रता पाएंगे। वे ही विचार! फिर तो आपको खुद भी हंसी आएगी कि मैं कर क्या रहा हूं! जिस बात को मैं हजार दफा सोच चुका हूं उसको फिर सोच रहा हूं। वे ही शब्द हैं, वे ही भीतर भाव हैं, वे ही मुद्राएं हैं। फिर वही दोहर रहा है यंत्रवत।

बाहर संसार भी दौड़ रहा है। वर्षा आएगी, सर्दी आएगी, गरमी आएगी, मौसम घूम रहे हैं। सूरज निकलेगा, डूबेगा; चांद बडा होगा, छोटा होगा। वर्तुल है। सारी चीजें वर्तुल में घूम रही हैं, बाहर भी और भीतर भी। व्हील्स विदिन व्हील्स, चाको के भीतर छोटे चाक घूम रहे हैं। उनके भीतर और छोटे चाक घूम रहे हैं।

अपनी घड़ी खोलकर भीतर देखें, उसमें जैसी हालत है, वैसी आपके मन की है। चाक हैं। बहुत—से चाक हैं। और एक चाक दूसरे को घुमा रहा है, दूसरा तीसरे को घुमा रहा है, सब घूम रहे हैं। लेकिन कुछ बंधे हुए विचार हैं, वे ही दौड रहे हैं बार—बार। इसलिए भारत कहता रहा है कि बाहर भी संसार है, भीतर भी संसार है। क्योंकि वर्तुलाकार गति है। और जब तक इन चाको से आप मुक्त न हो जाएं, तब तक सिद्ध न होंगे।

सिद्ध का अर्थ है, जो घूमने के बाहर हो गया।

प्रदर्शनियां लगती हैं, मेले भरते हैं, तो बच्चों के लिए घूमने के झूले होते है। घोडे है, हाथी है, शेर है—झूलों में। बच्चे उन पर बैठे हैं और झूले चक्कर' काट रहे, हैं। और बच्चे बड़ा आनंद लेते हैं, जितने जोर से चक्कर चलता है। और बच्चों को ऐसा लगता है, कहीं पहुंच रहे हैं। यात्रा बहुत होती है, पहुंचते कहीं भी नहीं हैं। वह अपनी जगह पर घूम रहा है। शेर, हाथी, घोड़े, उन पर बैठने का मजा; फिर इतनी तेज गति; कहीं पहुंचने का खयाल बड़ा रस देता है।

करीब—करीब हम सब वैसी ही बच्चों की हालत मे हैं। थोड़ा हमारा झूला बड़ा है और वहां भी हाथी, घोड़े हैं।

अभी आप देखते हैं, पेट्रोल की कमी है, तो इंदिरा तांगे पर बैठकर..। इस मुल्क में अकल कभी आ नहीं सकती। अटल ' बिहारी बाजपेयी बैलगाड़ी पर बैठे हैं। पीलू मोदी ने कहा कि वे हाथी पर पहुंचेंगे। और मैं सोचता रहा कि गधे पर किसी को जरूर। क्योंकि वह राष्ट्रीय पशु है। वह चरित्र का प्रतीक है।

हमारी सब जीवन की व्यवस्था ऐसी ही है, बचकानी है। छोटे पद हैं, बड़े पद हैं, धन है, महल है, प्रतिष्ठाएं हैं; पद्म—भूषण हैं, भारतरत्न हैं, सब बैठे हैं, कोई अपने घोडे पर, कोई हाथी पर; चक्कर चल रहे हैं। जब तक कि कोई आपको उतार ही न दे! बच्चे भी बड़ी दिक्कत देते हैं झूले से उतरने में। जब तक कि मां —बाप उनको उतार ही न दें। रोते —चीखते वे बैठे हैं। जब तक इनको भी कोई उतार ही न ले इन घोड़ों पर से, तब तक वे अपनी तरफ से नहीं उतरते।

यह सारा का सारा। और पहुंचना कहीं भी नहीं है। यात्रा बहुत है। तेज गति है। भाव जरूर है कि कहीं पहुंच जाएंगे।

सिद्धि का अर्थ है ऐसी जगह, जहां से कहीं और जाने का भाव न उठे। जब तक कहीं जाने का भाव उठता है, तब तक संसार। सिद्धि का अर्थ है, जहां आप हैं, वही परम स्थान। उसके अतिरिक्त कहीं जाने का कोई भाव नहीं है। कोई मोक्ष भी सामने लाकर रख दे, तो आप आख बंद कर लें कि अपन पहले ही मोक्ष में बैठे हैं।

नान—इन के संबंध में कथा है—एक झेन फकीर। एक पहाड की तलहटी पर, जहां पहाड़ पर ऊपर एक तीर्थ था और हजारों यात्री वर्ष में यात्रा करते थे पैदल पहाड़ पर, नान—इन पहाड़ की तलहटी में एक झाड़ के नीचे लेटा रहता था। अनेक साधु—भिक्षु भी यात्रा पर जाते थे। अज्ञानियों का कोई गृहस्थों से संबंध नहीं है। साधु —संन्यासी भी वैसे ही अज्ञान में हैं। भिक्षु भी, संन्यासी भी, वे भी पहाड़ पर यात्रा करने जाते हैं। जैसे वहा कुछ हो! नान—इन झाडू के नीचे पडा रहता था।

एक दिन कुछ भिक्षुओं ने उसे देखा। वे भी विश्राम करने उसके वृक्ष के पास रुके थे। उन्होंने कहा, नान—इन, हम हर वर्ष यात्रा पर। आते हैं। तुम इस झाडू के नीचे कब तक पड़े रहोगे? यात्रा नहीं करनी है? हमने तुम्हें कभी तीर्थ के उस मंदिर में नहीं देखा, पहाड़ की चोटी पर नहीं देखा!

नान—इन ने कहा कि तुम जाओ। हम वहीं हैं, जहां तीर्थ है। हम उस जगह बहुत पहले पहुंच गए हैं। जहां तुम पहाड़ पर खोज रहे हो जिस जगह को, उस जगह तो हम बहुत पहले पहुंच गए हैं। हम तीर्थ में हैं। और नान—इन जहां होता है, वहीं तीर्थ होता है।

समझा उन्होंने कि यह आदमी पक्का नास्तिक मालूम होता है, अहंकारी मालूम होता है। क्योंकि नान—इन ने कहा, नान—इन जहां होता है, वहीं तीर्थ है। तीर्थ हमारे साथ चलता है। तीर्थ हमारी हवा है। हम तीर्थ में नहीं जाते।

लेकिन यह नान—इन ठीक कह रहा है। एक सिद्ध पुरुष के वचन हैं।

जिस दिन कहीं जाने को कुछ शेष न रह जाए! कब होगा ऐसा? ऐसा तभी होगा, जब कोई वासना न रह जाएगी। जब तक कोई वासना है, तब तक कहीं जाने का मन बना ही रहेगा।

वासनाग्रस्त आदमी कहीं न कहीं जा रहा है, जाने की सोच रहा है; योजना बना रहा है, मगर जा रहा है। वस्तुत: न जा रहा हो, तो कल्पना में जा रहा है। लेकिन वासनाग्रस्त आदमी कहीं न कहीं जा रहा है। एक बात पक्की है, वासनाग्रस्त

आदमी वहां नहीं मिलेगा, जहां वह है। वहा आप उसको नहीं खोज सकते। अपने घर में वह कभी नहीं ठहरता। वह हमेशा कहीं और अतिथि है।

सिद्ध पुरुष का अर्थ है, जो अपने घर में आ गया, जो अब वहीं है, जहां है। उससे अन्यथा जाने का कोई भाव नहीं। उससे अन्यथा जाने की कहीं कोई वृत्ति नहीं। उससे अन्यथा होने की कोई कामना नहीं। जो है, जहां है, जैसा है, राजी है। और यह राजीपन पूरा है। इस संसार से मुक्त होकर ज्ञानीजन जिस ज्ञान को पाकर परम सिद्धि को प्राप्त हो गए हैं, वह मैं फिर से तेरे लिए कहूंगा। हे अर्जुन, इस ज्ञान को आश्रय करके अर्थात धारण करके मेरे स्वरूप को प्राप्त हुए पुरुष सृष्टि के आदि में पुन: उत्पन्न नहीं होते और प्रलयकाल में भी व्याकुल नहीं होते हैं।

इस ज्ञान को आश्रय करके, धारण करके मेरे स्वरूप को प्राप्त ! हुए पुरुष सृष्टि के आदि में पुन: उत्पन्न नहीं होते और प्रलयकाल में व्याकुल नहीं होते।

जो व्यक्ति अपने स्वभाव में ठहर गया, ज्ञान में ठहर गया, जिसे। कुछ जानने को शेष न रहा और जिसे पहुंचने को कोई जगह न रही, जो विश्राम को उपलब्ध हो गया, जो सिद्ध हो गया, कृष्ण कह रहे हैं, ऐसा पुरुष फिर न तो पैदा होता है और न वस्तुत: मरता है। सृष्टियां पैदा होती रहेंगी, लेकिन सृष्टि का जाल फिर उसे अपने चक्र में न खींच पाएगा। चक्र घूमते रहेंगे सृष्टि के, लेकिन सृष्टि का कोई भी आरा फिर उस पुरुष को अपनी ओर आकर्षित न कर पाएगा। क्योंकि जिसको जाने की कहीं वासना न रही, वह सृष्टि में भी नहीं जाएगा।

सृष्टि में हम जाते इसीलिए हैं, पैदा हम इसीलिए होते हैं, कि हमें कहीं पहुंचना है। यह हमारा पैदा होना भी वाहन है। यह शरीर भी हमारी यात्रा का वाहन है। इसे हमने चुना है किन्हीं वासनाओं के ' कारण। कुछ हम करना चाहते हैं, बिना शरीर के वह न हो सकेगा। जो लोग प्रेतात्माओं का अध्ययन करते हैं, वे कहते हैं कि प्रेतात्माओं की एक ही पीड़ा है कि उनके पास वासनाएं तो वही हैं, जो आपके पास हैं, लेकिन वासनाओं को पूरा करवा सके, ऐसा कोई उपकरण नहीं है। क्रोध उनको भी आता है, लेकिन चांटा मारना मुश्किल है, क्योंकि हाथ नहीं हैं। कामवासना उनको भी जगती है, लेकिन कामवासना का कोई यंत्र उनके पास नहीं है कि संभोग कर सकें।

इसलिए प्रेतात्मविद कहते हैं कि ऐसी आत्माएं निरंतर कोशिश में होती हैं कि किसी घर में मेहमान हो जाएं, किसी व्यक्ति के शरीर में मेहमान हो जाएं। और अगर आप थोड़े कमजोर हैं, संकल्प से थोड़े हीन हैं.......।

संकल्पहीन आदमी का मतलब होता है, जो सिकुड़ा हुआ है, जिसके भीतर खाली जगह है। संकल्पवान आदमी का अर्थ होता है, जो फैला हुआ है, जिसके भीतर कोई जगह नहीं है। सच में जो अपने शरीर से बाहर भी जी रहा है। भीतर की तो बात ही अलग। जो फैलकर जी रहा है। ऐसे व्यक्ति में प्रेतात्माएं प्रवेश नहीं कर पाती हैं।

लेकिन जो सिकुड़कर जी रहा है, डरा हुआ। डरे हुए का मतलब, सिकुड़ा हुआ। जो अपने ही घर में एक कोने में छिपा है, बाकी घर जिसने खाली छोड़ रखा है। जिसका शरीर भी बहुत—सा खाली पड़ा है। उसमें कोई प्रेतात्मा प्रवेश कर जाएगी। क्योंकि प्रेतात्मा कोशिश में है, शरीर मिल जाए तो वासनाएं पूरी हो सकें।

आप भी शरीर में इसीलिए प्रविष्ट हुए हैं, गर्भ में इसीलिए प्रविष्ट हुए हैं कि कुछ वासनाएं हैं, जो अधूरी रह गई हैं। पिछले मरते क्षण में कुछ वासनाएं थीं, जो आपके मन में अधूरी रह गई हैं, वे आपको खींच लाई हैं। मरते क्षण में आदमी की जो वासना होती है, वही वासना उसके नए जन्म का कारण बनती है। या मरते क्षण में उसके जीवनभर का जो सार—निचोड़ होता है उसकी आकांक्षाओं का, वही उसे धक्का देता है नए गर्भ में प्रविष्ट हो जाने का।

कृष्ण कहते हैं, जो सिद्ध पुरुष है। वह साधारण जन्म—मरण में तो फंसेगा ही नहीं, साधारण गर्भ में तो प्रवेश ही नहीं करेगा।

क्योंकि जिसको कहीं जाना नहीं, वह ट्रेन में किसलिए सवार हो! वह किसलिए टिकट खरीदेगा जाकर क्यू में खड़े होकर! किसलिए धक्के खाएगा! कोई कारण नहीं है। उसे कहीं जाना नहीं है।

शरीर एक यात्रा—वाहन है। और गर्भ के द्वार पर वैसा ही क्यू है, ! जैसा किसी भी यात्रा—वाहन पर लगा हो ' वहां भी उतनी ही ! धक्का—मुक्की है। वहां भी गर्भ में प्रवेश करने के लिए उतना ही संघर्ष है।

क्या आपको पता है, एक संभोग में कोई एक करोड़ जीव—कोष गर्भ में प्रवेश करते हैं! उनमें से एक, वह भी कभी—कभी, शरीर ग्रहण कर पाता है। बायोलाजिस्ट कहते हैं कि दौड़ संघर्ष की वहीं शुरू हो जाती है, संभोग के क्षण में। जैसे ही पुरुष का वीर्य प्रवेश करता है स्त्री में, एक करोड़ कम से कम, ज्यादा से ज्यादा दस करोड़, एक संभोग के क्षण में इतने जीव—कण स्त्री में छिपे हुए अंडे की तरफ दौड़ना शुरू करते हैं।

यह दौड़ बड़ी लंबी है; उनके हिसाब से बहुत लंबी है। क्योंकि जीव—क्या बहुत छोटा है; खाली आख से दिखाई नहीं पड़ सकता। उतने छोटे जीव—क्या के लिए कोई थोड़े से इंचों की दौड़ उतनी ही है कि अगर जीव को आपके बराबर कर दिया जाए अनुपात में, तो दो मील का फासला है। उस अनुपात में वीर्य—कण को करीब—करीब दो मील का फासला पार करना पड़ रहा है, स्त्री के अंडे तक पहुंचने में। अगर वीर्य—कण आपके बराबर हों, तो फासला दो मील के बराबर होगा।

छ: घंटे के बीच उस छोटे—से जीवाणु को.। और भयंकर संघर्ष है, क्योंकि एक करोड़ जीवाणु भी भाग रहे हैं। आपकी सड़क पर ट्रैफिक में वैसा जाम नहीं है। वे सभी एक करोड़ जीव—कोष उतनी ही कोशिश कर रहे हैं कि अंडे तक पहुंच जाएं। क्योंकि उस अंडे में छिपा है शरीर, जहां से व्यक्ति पैदा होगा और यंत्र उपलब्ध हो जाएगा।

बायोलाजिस्ट कहते हैं कि इस दुनिया में जो प्रतियोगिता दिखाई पड़ रही है, वह कुछ भी नहीं है। जिसको बाजार में गलाघोंट प्रतियोगिता कहते हैं, थोट कट कांपिटीशन, वह कुछ भी नहीं है। क्योंकि एक करोड़ में से एक पहुंच पाएगा अंडे तक। जो पहले पहुंच जाएगा, वह प्रवेश कर लेगा। और अंडा कुछ इस भांति का है कि जैसे ही एक जीव—कोष प्रवेश करता है, अंडे के द्वार बंद हो जाते हैं। फिर दूसरा प्रवेश नहीं कर सकता।

इसीलिए कभी—कभी दो बच्चे एक साथ पैदा हो जाते हैं, अगर दो जीव—कोष बिलकुल एक साथ पहुंच जाएं अंडे के द्वार पर, तो दोनों प्रवेश कर जाते हैं। लेकिन ऐसा मुश्किल से होता है। दोनों बिलकुल एक साथ, युगपत—स्व क्षण के हजारवें हिस्से का भी फासला न हो—तो दो; या तीन भी कभी हो जाते हैं, चार भी कभी हो जाते हैं।

एक व्यक्ति जीवन में कोई चार हजार संभोग करता है। चार हजार संभोग में, कोई अगर पुराने ढंग का भारतीय हो, तो ज्यादा से ज्यादा बीस बच्चे पैदा कर सकता है। चार हजार संभोग में बीस मौके हैं कुल, और प्रत्येक संभोग में कोई एक करोड़ से दस करोड़ तक जीवाणु यात्रा करेंगे।

जितने लोग इस समय पृथ्वी पर हैं, कोई चार अरब, एक—एक व्यक्ति के भीतर चार अरब जीव—कोष हैं। एक व्यक्ति इतनी पूरी पृथ्वी को पैदा कर सकता है। लेकिन पैदा होंगे दस बच्चे, बीस बच्चे ज्यादा से ज्यादा। दो—चार बच्चे सामान्यतया।

इतना भयंकर संघर्ष है। इतना भयंकर युद्ध है। वहा भी क्यू है! इतनी आत्माएं दौड़ती हैं, एक शरीर को पकड़ने को। बड़ी वासना होगी।

बायोलाजिस्ट चकित हैं कि छोटा—सा जीव—क्या इतनी स्पर्धा से दौड़ता है, इतनी त्वरा से दौडता है, इतनी तेजी से दौड़ता है। सब तरह से कोशिश करता है कि दूसरों को पीछे छोड़ दे और आगे निकल जाए। उससे पता लगता है कि आत्माएं कितने जोर से शरीर को पकड़ने की चेष्टाएं कर रही होंगी। कितनी विराट वासना भीतर धक्के नहीं दे रही होगी!

साधारणत: सिद्ध पुरुष इस गर्भ में पैदा होना, जन्म को लेना और मृत्यु से तो छूट ही जाता है।

लेकिन जब पूरी सृष्टि भी इसी भांति विलीन होती है, जैसे हर व्यक्ति मरता है..। हर वस्तु मरती है, ऐसा पूरी सृष्टि भी मरती है। क्योंकि पूरी सृष्टि का प्रारंभ होता है, तो अंत भी होता है। पूरी सृष्टि के प्रारंभ में और अंत के क्षण में भी, जब सब जन्मता है फिर से, सब ताजा होता है फिर से, तब भी सिद्ध पुरुष डांवाडोल नहीं होता। क्योंकि यहा भी कुछ पाने को नहीं है।

पूरी सृष्टि फिर से बन रही है, फिर से जीवन जग रहा है, फिर सूरज और चांद—तारे पैदा हो रहे हैं; फिर पृथ्वियां बसेंगी, फिर सारे खेल का विस्तार होगा। इस विराट सृष्टि के कम में भी वह दूर खड़ा रह जाता है, अपनी जगह तृप्त। यह विराट आयोजन भी उसे बुला नहीं सकता, इसका भी कोई निमंत्रण कारगर नहीं है। उसे अब कोई नहीं हिला सकता।

और जब पूरी सृष्टि भी नष्ट होगी, प्रलय होगा और भयंकर पीड़ा होगी...। क्योंकि एक—एक व्यक्ति के मरने पर हम समझते हैं, कितनी पीड़ा और कितना दुख और कितना संताप है। जब पूरी सृष्टि अंतिम क्षण में प्रलय में लीन होती है, भयंकर हाहाकार; उससे बड़े हाहाकार की हम कोई कल्पना नहीं कर सकते। दुख अपनी चरम अवस्था पर होगा। उस क्षण में भी, कृष्ण कहते हैं, प्रलयकाल में भी सिद्ध पुरुष व्याकुल नहीं होता है।

जिसकी कोई वासना नहीं है, उसकी कोई पीड़ा भी नहीं है। जिसकी कोई वासना नहीं है, दूसरे की भी पीड़ा देखकर उसको दया आ सकती है, व्याकुलता नहीं होती। इस फर्क को समझ लेना चाहिए।

अगर बुद्ध के सामने आप मर रहे हों, तो बुद्ध व्याकुल नहीं होते। दया आ सकती है। दया आपकी मूढ़ता पर आती है। क्योंकि दुख आपका सृजित किया हुआ है। ऐसे जैसे एक बच्चा रो रहा है, क्योंकि उसकी गुडिया की टांग टूट गई है। रोने में कोई भेद नहीं है। रोना वास्तविक है। टांग चाहे गुड़िया की हो, चाहे पत्नी की हो। टल असली हो कि नकली हो, यह दूसरी बात है, लेकिन बच्चे के आसुरों में तो कोई झूठ नहीं है।

एक बच्चे की गुड़िया की टल टूट गई है, बच्चा रो रहा है आपके सामने। आप दुखी होते हैं या दया से भरते हैं? आप व्याकुल होते हैं या करुणा से भरते हैं? या आपको बच्चे पर दया आती है कि बेचारा! इसे कुछ पता नहीं है कि यह गुड़िया मरी ही हुई है। इसमें कुछ टूटने का मामला नहीं है। यह टल टूटी ही हुई थी।

इस बच्चे को आप खिलाते हैं, हंसाते हैं; डुलाते हैं, दूसरी गुड़िया पकड़ाते हैं। लेकिन आप गंभीर नहीं हैं। यह एक खेल था, जिसको बच्चे ने ज्यादा गंभीरता से ले लिया, इसलिए दुखी हो रहा है। बच्चा गुड़िया के कारण दुखी नहीं हो रहा है, अपनी गंभीरता और मूढ़ता के कारण दुखी हो रहा है।

बुद्ध जब आपको पीड़ा में देखते हैं, तब वे जानते हैं कि आपकी पीड़ा भी बचकानी है।

किसी का घर जल गया है, जो उसका था ही नहीं। किसी की पत्नी मर गई है। कौन किसका हो सकता है? किसी का पति खो गया है। जो कभी अपना नहीं था, वह खो कैसे सकता है? किसी का धन चोरी चला गया है। इस जगत में कोई मालकियत सच नहीं है, चोरी कैसे हो सकती है? यहां मालिक झूठे हैं, चोर झूठे हैं। चोर इसलिए हैं कि मालिक हैं। एक झूठ दूसरे झूठ को पैदा करता है। तो बुद्ध दया कर सकते हैं। और अगर आप बहुत ही रोएं—गाएं, तो वे आपको समझा—बुझा भी सकते हैं। लेकिन वह समझाना—बुझाना सिर्फ दयावश है। इसमें कोई व्याकुलता नहीं है। ' जिस दिन पूरी सृष्टि भी विनष्ट हो रही हो, उस दिन भी सिद्ध पुरुष, कृष्ण कहते हैं, व्याकुल नहीं होता। और अर्जुन व्याकुल हो रहा है, जरा—सा युद्ध खड़ा है उससे। पूरी सृष्टि के हिसाब से वह युद्ध ना—कुछ है। गुड़ियों का खेल है। बड़ा व्याकुल हो रहा है।

कृष्ण कहते हैं, मैं तुझे वह ज्ञान कहूंगा, फिर से कहूंगा, जिससे प्रलयकाल में भी सिद्ध पुरुष व्याकुल नहीं होते। यह युद्ध तो बिलकुल खेल है।

हे अर्जुन, मेरी महत ब्रह्मरूप प्रकृति अर्थात त्रिगुणमयी माया संपूर्ण भूतों की योनि है अर्थात गर्भाधान का स्थान है। और मैं उस योनि में चैतन्यरूप बीज को स्थापन करता हूं। उस जड़ु—चेतन के संयोग से सब भूतों की उत्पत्ति होती है।

त्रिगुणमयी माया संपूर्ण भूतों की योनि है।

कृष्ण कहते हैं कि सारा जगत एक गहन स्वप्न से पैदा होता है। जिस जगत को हम देखते हैं, वह वास्तविक कम, स्वप्नमय ज्यादा है। वह पदार्थ से कम बना है और वासना से ज्यादा बना है। उसका निर्माण इच्छाओं के सघनभूत रूप से हुआ है।

इसलिए भारत ने एक शब्द चुना है, जो है माया। यह माया शब्द बहुत अदभुत है। और ऐसा शब्द दुनिया की किसी भाषा में खोजना आसान नहीं है। क्योंकि ऐसी दृष्टि, ऐसे तत्व के संबंध में खोज किसी और संस्कृति में पैदा नहीं हुई। पश्चिम में जो शब्द है मैटर, पदार्थ, वह माया का ही एक विकृत रूप है। मूल धातु संस्कृत की ' वही है मैटर की भी, मात्र, जो माया की है।

लेकिन पश्चिम का विज्ञान कहता है कि जगत मैटर से, पदार्थ से बना है। लेकिन अब पदार्थ की खोज जैसे—जैसे गहरी हुई, वैसे—वैसे उनको पता चला, पदार्थ तो है ही नहीं, बिलकुल माया है पदार्थ। जैसे ही खोज करके वे इलेक्ट्रास पर पहुंचे, वैसे उनको पता चला कि वहां तो पदार्थ है ही नहीं। सिर्फ दिखता था, है नहीं। मौलिक जो आधारभूत तत्व है विद्‌युत, वह तो अदृश्य है। उसे अब तक किसी ने देखा नहीं। उसे कोई कभी देख भी नहीं सकेगा। वह है भी या नहीं, इसको हम निश्चित रूप से नहीं कह सकते। पदार्थ दिखाई पड़ता है। और पदार्थ नहीं है, उसका आण्विक रूप, अदृश्य, वही है।

पश्चिम में मैटर का भी अर्थ अब माया ही करना चाहिए। अब कोई फर्क नहीं रहा। मूल धातु वही है। लेकिन अब तो मैटर शब्द का अर्थ भी माया ही हो गया है। माया का अर्थ है, जो दिखाई पड़ती है और है नहीं। जो सब भांति प्रतीत होती है कि है, और है नहीं। तो ध्यान रहे, भारतीय मनीषा की खोज तीन हैं।

एक, सत्य—जो है और दिखाई नहीं पड़ता। उसे हम ब्रह्म कहें, ईश्वर कहें, परमात्मा कहें, जो भी नाम देना चाहें। परम सत्य, जो है और दिखाई नहीं पड़ता।

दूसरा, परम असत्य—जो नहीं है। और नहीं है इसलिए दिखाई पड़ने का कोई कारण ही नहीं है।

और दोनों के मध्य में, माया—जो दिखाई पड़ती है और नहीं है। , ये तीन तल हैं। माया मध्यवर्ती तल है। माया दिखाई पड़ती है ऐसे, जैसे ब्रह्म दिखाई पड़ना चाहिए, जो है, वास्तविक। और माया नहीं है वैसे, जैसे कि असत्य, जो कि है ही नहीं। माया मध्यवर्ती तत्व है। भास, एपियरेंस, सिर्फ प्रतीति।

आपकी वासनाएं प्रतीतिया हैं। हैं नहीं; सिर्फ भाव हैं; सिर्फ स्वप्न हैं। और जब तक आप उनको सत्य मानते हैं, तब तक बड़े सत्य मालूम होते हैं। जैसे ही आप जागते हैं, सब असत्य हो जाते हैं।

जिब्रान की एक छोटी—सी कहानी है। एक आदमी एक अजनबी देश में आया। वह उस देश की भाषा नहीं जानता है। एक बड़े महल में उसने लोगों को आते—जाते देखा, तो वह भी भीतर प्रविष्ट हो गया। द्वारपालों ने झुक—झुककर नमस्कार किया, तो उसने समझा कि कोई महाभोज है।

वह एक बहुत बड़ी होटल थी। लोग खा रहे थे। आ रहे थे, जा रहे थे, पी रहे थे। टेबलें भरी थीं। वह भी एक खाली टेबल पर जाकर बैठ गया। एक बैरा आया, सामने उसने भोजन रखा। वह बहुत चकित हुआ। उसने सोचा कि कोई महाभोज है। वह बहुत खुश भी हुआ। उसने सोचा कि यह गांव बड़ा अतिथियों का प्रेमी है। मैं अजनबी, अनजान आदमी, भाषा नहीं जानता, मेरा इतना स्वागत किया जा रहा है!

फिर बैरा ने उसको, जब भोजन पूरा हो गया, तो उसका बिल लाकर दिया। तो वह सोचा कि गजब के लोग हैं! न केवल भोजन देते हैं, बल्कि लिखित धन्यवाद भी देते हैं। तब अड़चन शुरू हुई, क्योंकि बैरा उससे कहने लगा कि वह पैसे चुकाए और वह झुक—झुककर धन्यवाद करने लगा। वे दोनों एक—दूसरे की भाषा समझने में असमर्थ हैं।

आखिर बैरा उसे मैनेजर के पास ले आया। उसने कहा, धन्य मेरे भाग। न केवल महल के नौकर—चाकर सेवा करते हैं, मालिक खुद! वह झूक—झूककर नमस्कार करता, बहुत—बहुत धन्यवाद देता। और मैनेजर ने कहा कि या तो आदमी पागल है और या हद दर्जे का धूर्त है। इसे अदालत ले जाओ।

उसे एक गाड़ी में बैठाकर अदालत ले जाने लगे। उसने सोचा कि ऐसा लगता है कि ये सब इतने प्रसन्न हो गए हैं कि मुझे नगर का जो सम्राट है, उसके पास ले जा रहे हैं। और अदालत बड़ा भवन था, और मजिस्ट्रेट सजा— धजा बैठा हुआ था। बड़ी शानदार रौनक थी। तो वह जाकर झुक—झुककर नमस्कार किया। उसने बहुत धन्यवाद दिए।

मजिस्ट्रेट ने कहा कि यह आदमी कुछ समझ में नहीं आता। इसको कुछ भी कहो, सुनता भी नहीं। वह अपनी ही लगाए हुए है। क्या कह रहा है, इसका भी कुछ पता नहीं चलता। लेकिन इस तरह की घटना दुबारा नहीं घटनी चाहिए। तो उस गांव का रिवाज था, तो उस आदमी को दंड दिया गया कि उसे गधे पर उलटा बैठा दिया जाए और उसकी छाती पर एक तख्ती लटका दी जाए कि यह आदमी धूर्त है। इससे सावधान! नगर में कोई इसका भरोसा न करे।

जब वह गधे पर बैठाया गया उलटा और उसके गले में तख्ती टांगी गई, तब तो उसकी प्रसन्नता की कोई सीमा न रही। उसने कहा, न केवल वे प्रसन्न हैं, बल्कि पूरे गांव में घुमाकर लोगों को दिखाना चाहते हैं कि देखो, कैसा अतिथि हमारे गाव में आया है। अभी तक पता भी नहीं था।

वह बड़ा प्रसन्न था। वह बिलकुल अकड़कर बैठा हुआ था। उसकी अकड़ू, उसकी प्रसन्नता में जरा भी असत्य नहीं है। जो हो रहा है, उसका उसे कुछ पता नहीं है। लेकिन जो वह सोच रहा है, उसका उसे पक्का भरोसा है। वह बहुत खुश है। और उसकी खुशी का कोई अंत नहीं था।

लेकिन एक ही पीड़ा थी कि काश, उसके गांव के लोग भी उसकी यह शान—शौकत—एक भी आदमी देख लेता, उसके घर तक खबर पहुंच जाती कि किस तरह.। जिसके गाव के लोगों ने कभी चिंता न की जिसकी, आज उसका कैसा विराट भव्य स्वागत—समारंभ हो रहा है!

तभी उसे भीड़ में..। बच्चे दौड़ रहे हैं, लोग चल रहे हैं; आस—पास भीड़ इकट्ठी हो गई है, लोग मजा ले रहे हैं। लोग खुश हैं। वह भी बड़ा खुश है और बड़ा प्रसन्न है। तभी उसे एक आदमी दिखाई पड़ा, जो उसके गांव का रहने वाला है, जिसने बहुत साल पहले गांव को छोड़ दिया था। उसे देखकर उसकी छाती फूल गई। उसने कहा, देखो, मेरे भाई.।

लेकिन वह आदमी नीचे सिर झूकाकर भीड़ में सरक गया। क्योंकि वह भाषा समझता था। वह अनेक दिन से वहां था। उसने देखा कि यह कैसा अपमान हो रहा है। लेकिन गधे पर बैठे हुए आदमी ने सोचा, आश्चर्य; ईर्ष्या की भी सीमा होती है! ईर्ष्यावश, कि उसका स्वागत नहीं हुआ और मेरा स्वागत हुआ। तो यह सिर झूकाकर भीड़ में नदारद हो गया।

वह आदमी आनंदित ही घर लौटा। उसने यह कहानी अपने गांव में सब लोगों को कही। जहां तक इसके भीतर के सोचने का संबंध है, सभी कुछ सही जैसा है। लेकिन जहां तक सत्य से संबंध है, कोई भी संबंध नहीं है।

आप जिस जगत में रह रहे हैं, कृष्ण उसको माया कहते हैं। और वे कहते हैं, सारा जन्म इस माया से होता है। माया को वे कहते हैं कि प्रकृति अर्थात त्रिगुणमयी माया संपूर्ण भूतों की योनि है, समस्त भूतों का गर्भस्थल है। वहा से सब पैदा होते हैं। उसी स्वप्न में, उसी वासना में, उसी इच्छा में, कुछ होने, कुछ पाने की दौड में एक विराट स्वप्न का जन्म होता है।

मैं उस योनि में चेतनरूप बीज को स्थापन करता हूं। उस जड—चेतन के संयोग से सब भूतों की उत्पत्ति होती है।

माया तो जड़ है, वासना का जगत तो जड़ है। वह पदार्थ है। मेरा अंश उसमें चेतन रूप से प्रविष्ट होता है और जीवन की उत्पत्ति होती है।

इसे हम विस्तार से धीरे— धीरे समझेंगे।

इसमें दो बातें खयाल में ले लेनी चाहिए। हमारा शरीर दो तत्वों का जोड़ है। एक माया, जिसको हम पदार्थ कहें। और एक चेतन, जिसको हम परमात्मा कहें। मनुष्य दो चीजों का जोड़ है। मनुष्य एक संयोग है, पदार्थ का और परमात्मा का।

मृत्यु में पदार्थ और परमात्मा अलग होते हैं। न तो कोई मरता, न कोई विनष्ट होता। क्योंकि पदार्थ मरा ही हुआ है, उसके मरने का कोई उपाय नहीं। परमात्मा अमृत है, उसके मरने का कोई उपाय नहीं। सिर्फ संयोग टूटता है।

कृष्ण यह कह रहे हैं, वासना के माध्यम से पदार्थ और चेतना में संयोग जुड़ता है—माया के माध्यम से। और ज्ञान के माध्यम से संयोग स्पष्ट हो जाता है कि संयोग है। मृत्यु में संयोग टूटता है।

जन्म में जुड़ता है, मृत्यु में टूटता है। अज्ञान में लगता है कि मैं शरीर हूं; ज्ञान में लगता है, मैं पृथक हूं।

जैसे ही यह बोध किसी व्यक्ति को हो जाता है कि मैं पृथक हूं और शरीर पृथक है; चैतन्य और जड़ अलग—अलग हैं, माया और ब्रह्म अलग—अलग हैं, जैसे ही यह बोध साफ हो जाता है, इस सारे जगत का खेल सिर्फ आभास रह जाता है। युद्धों का होना, लोगों का पैदा होना या मरना, महामारियां, जीवन या मृत्यु, सब एक बड़े नाटक के हिस्से हो जाते हैं। क्योंकि मृत्यु असंभव है। केवल संयोग टूटते हैं, कुछ मरता नहीं। कुछ मर सकता नहीं।

कृष्ण अर्जुन को एक ही बात का बोध दिलाने की कोशिश कर रहे हैं। वह मृत्यु को देखकर भयभीत है। वह सोच रहा है, मृत्यु होगी। कृष्ण कहते हैं, मृत्यु एक असत्य है, वह माया का एक आभास है। जन्म भी एक असत्य है; वह भी सिर्फ माया का आभास है।

लेकिन जब तक हम माया में होते हैं, तब तक हमें सत्य मालूम होता है। ठीक जैसे रात सपना देखते हैं। सपने के क्षण में तो सपना बिलकुल ही सच मालूम होता है—।

यह जगत एक विराटतर सपना है। कहें कि यह ईश्वर के चित्त में चल रहा सपना है। हमारे सपने निजी होते हैं, यह सपना विराट है। जैसे हम अपने सपने से सुबह जागते हैं और सपना फिजूल हो जाता है, ऐसे ही ज्ञानी पुरुष इस सपने से जाग जाता है, इस विराट सपने से, और यह सपना व्यर्थ हो जाता है।

सुबह जागकर आप रोते नहीं हैं कि रात मैंने एक आदमी की हत्या कर दी। न सुबह जागकर आप गाव में ढिंढोरी पीटते हैं कि रात मैंने एक भूखे आदमी को सपने में रोटी खिला दी। सुबह आप जानते हैं कि सपना सपना था। न तो सपने की हत्या सच थी, और न सपने की सेवा सच थी। न तो पाप का भाव पैदा होता है सुबह, न पुण्य का। सपने को जानते ही कि सपना है, सब भाव खो जाते हैं।

ज्ञानी पुरुष इस विराट सपने से भी जाग जाता है। एक और जागरण है। उस जागरण का नाम ही ध्यान है, समाधि है। उस जागरण में ज्ञानी पुरुष जानता है कि वह जो उसने देखा था—युद्ध थे, शांतिया थीं; प्रेम था, घृणा थी; मित्र थे, शत्रु थे—वे सब स्वभवत खो गए।

कृष्ण कहते हैं, वह ज्ञान मैं तुझे फिर से कहूंगा, वह परम ज्ञान, जिसे जानकर व्यक्ति परम सिद्धि को उपलब्ध हो जाता है।

गीता दर्शन–(भाग–7)
अध्याय—14 (प्रवचन—दूसरा) —त्रिगुणात्मक जीवन के पार

सूत्र—
सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।
तासो ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता।।4।।
सत्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवा।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमध्ययम्।।5।।
तत्र सत्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्।
सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ ।।6।।
तथा है अर्जुन, नाना प्रकार की सब योनियों में गिनी मूर्तियां अर्थात शरीर उत्पन्न होते है, उन सकी त्रिगुणमयी माया तो गर्भ को धारण करने वाली माता है और मैं बीज को स्थापन करने वाला बिता हूं।

हे अर्जुन, सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण, ऐसे यह प्रकृति से उत्पन्न हुए तीनों गुण हम अविनाशी जीवात्मा को शरीर में बांधते हैं।

हे निष्पाप, उन तीनों गुणों में प्रकाश करने वाला निर्विकार सत्वगुण तो निर्मल होने के कारण सुख की आसक्ति ले और ज्ञान की आसक्ति से अर्थात ज्ञान के अभिमान से बांधता है।

सूत्र के पहले थोड़े—से प्रश्न।
पहला प्रश्न :
पांडवों में ज्येष्ठ युधिष्ठिर को धर्मराज कहा गया है, लेकिन कृष्ण ने धर्मराज को छोड्कर अर्जुन को गीता कही। ऐसा क्यों? क्या धर्मराज पात्र न थे?
इस संबंध में बहुत सी बातें समझनी जरूरी हैं। पहली बात, धर्म को जानना शास्त्र से, परंपरा से, एक बात है। धर्म को जानना जीवन से, बिलकुल दूसरी बात है। और जीवन से केवल वे ही जान सकते हैं, जिनके ऊपर शास्त्रों का, परंपरा का बोझ न हो।

जिनके ऊपर शास्त्रों का बोझ है, उनकी जिज्ञासा कभी भी मौलिक नहीं हो पाती। उनकी जिज्ञासा भी झूठी होती है। वे प्रश्न भी पूछते हैं, तो शास्त्रों के कारण। प्रश्न भी उनके अपने नहीं होते। उनके प्रश्न सैद्धांतिक होते हैं, जीवंत नहीं। वे तत्व की चर्चा करते हैं, जैसा एक विचारक करे। लेकिन वे तत्व की वैसी खोज नहीं करते, जैसा एक साधक करे। उनके लिए तत्वचर्चा एक बौद्धिक विलास है, जीवन—मरण की समस्या नहीं।

धर्मराज परंपरा से धार्मिक हैं। शास्त्रों ने क्या कहा है, इसे वे जानते हैं। उनका अस्तित्व धार्मिक नहीं है। उन्होंने अस्तित्वगत रूप से धर्म को खोजा नहीं। उसके जीवन में भी उसके स्पष्ट लक्षण मिलेंगे।

परंपरागत रूप से जो आदमी धार्मिक है, उस आदमी के पास कोई निज की चेतना नहीं होती। वह स्वयं नहीं सोचता। नियम के अनुसार चलता है। नियम अगर गलत हो, तो वह गलत चलता है। नियम अगर सही हो, तो वह सही चलता है। समाज जिसे भी ठीक कहता है, उसे वह मानता है, चाहे वह गलत ही क्यों न हो।

महाभारत के उन दिनों में जुए को अनैतिक नहीं माना जाता था, वह अधार्मिक भी नहीं था। सिर्फ एक खेल था। जैसे कोई आज फुटबाल खेल रहा है, वालीबाल खेल रहा है, और उस खेल में कोई अनैतिकता नहीं है। ऐसा ही जुआ भी खेल था, एक क्रीड़ा थी। उसमें कोई अनीति नहीं थी। तो समाज में कोई जुए के विपरीत भाव नहीं था।

युधिष्ठिर जुआ खेल सकते हैं। उन्हें इसमें जरा भी अड़चन नहीं हुई। धर्मराज होने मात्र से जुआ खेलने में उन्हें कोई पीड़ा, कोई विचार नहीं उठा। और जुआ ही नहीं खेल सकते, अपनी स्त्री को दाव पर भी लगा सकते हैं। क्योंकि उस समाज में स्त्री पुरुष की संपत्ति थी, स्त्री— धन! उन दिनों तक समाज की चेतना इस जगह नहीं थी कि स्त्री को हम

स्वतंत्र व्यक्तित्व दिए होते। वह पुरुष की संपत्ति थी, पति की संपदा थी। तो जब मैं अपना धन लगा सकता हूं तो अपनी पत्नी भी लगा सकता हूं। क्योंकि पत्नी मेरा पजेशन थी, मेरा परिग्रह थी।

युधिष्ठिर द्रौपदी को दाव पर लगा सकते हैं। उनकी चेतना को जरा भी चोट नहीं हुई। उन्हें ऐसा नहीं लगा कि मैं यह क्या कर रहा हूं! कोई व्यक्ति किसी की संपत्ति कैसे हो सकता है? वस्तु संपत्ति नहीं हो सकती वस्तुत: तो; तो व्यक्ति तो संपत्ति कैसे हो सकता है? व्यक्ति पर कोई मालकियत नहीं हो सकती। और व्यक्तियों को जुए के दाव पर नहीं लगाया जा सकता। लेकिन वह समाज, उन दिनों की परंपरा स्त्री को संपदा मानती थी, पुरुष उसे जुए पर दाव पर लगा सकता था।

तो युधिष्ठिर को कोई अपनी चेतना नहीं है। न अपना कोई विचार है, न अपनी कोई जिज्ञासा है। वे परंपरागत रूप से धार्मिक व्यक्ति हैं। गीता उनसे नहीं कही जा सकती।

कृष्ण जैसे व्यक्तित्व का संपर्क परंपरागत चेतना से नहीं हो सकता। कृष्ण को तो वही समझ पाएगा, जो परंपरागत नहीं है। जो शास्त्र से बंधा नहीं है, और जिसकी जिज्ञासा आंतरिक है।

अर्जुन की जिज्ञासा में बड़ा फर्क है। अर्जुन के लिए यह जीवन—मरण की समस्या है। युद्ध के इस क्षण में वह कोई शास्त्र का विवेचन नहीं उठा रहा है। युद्ध के इस क्षण में उसकी चेतना में ही यह पीड़ा खड़ी हो गई है, एक अंतर्द्वंद्व उठ खड़ा हुआ है, कि जो मैं कर रहा हूं, क्या वह करने योग्य है?

वस्तुत: सच तो यह है कि शास्त्र तो कहते हैं, क्षत्रिय का धर्म है कि लड़े। क्षत्रिय को युद्ध में कुछ भी पाप नहीं है। क्षत्रिय काटे, इसमें कुछ पाप नहीं है। वह उसके क्षत्रिय होने का हिस्सा है। लेकिन अर्जुन को एक अस्तित्वगत, एक्सिस्टेंशियल सवाल खड़ा हो गया है। वह यह कि अगर मैंने इन सब को मार ही डाला और इनको मारकर मैं इस राज्य का मालिक भी हो गया, तो क्या वह राज्य, वह मालकियत इतनी कीमत की है कि इतने जीवन नष्ट किए जाएं? क्या मुझे यह हक है कि मैं इतने जीवन नष्ट करूं? सिर्फ इस सुख को पाने के लिए कि मैं सम्राट हो गया! क्या सम्राट होने का इतना अर्थ है? इतना मूल्य है? इतने जीवन के विनाश का कोई कारण है?

अर्जुन का सवाल उसकी निजता से उठा है। वह किसी शास्त्र से नहीं आया है। अगर अर्जुन भी शास्त्रीय होता, तो गीता का सवाल ही नहीं उठता। युधिष्ठिर यह सवाल नहीं पूछते। युधिष्ठिर जुआ खेलते वक्त नहीं पूछे; पत्नी को दाव लगाते वक्त नहीं पूछे। युद्ध के क्षण में भी क्यों पूछते! सदा से क्षत्रिय लड़ता रहा है। और अपनी रक्षा के लिए और अपनी संपदा के लिए और अपनी सीमा और राज्य के लिए लड़ना उसका कर्तव्य है। यह बात उठती नहीं थी। अर्जुन को उठी।

अर्जुन बड़ी आधुनिक चेतना है, एक अर्थ में। यह केवल उसी व्यक्ति को उठ सकता है, ऐसी संकट की स्थिति, जो परंपरा से बंधा हुआ नहीं है, युवा है; जीवंत है; जीवन को जी रहा है और जीवन में समस्याएं हैं, उनको हल करना चाहता है।

इसलिए गीता जैसा जीवंत शास्त्र जगत में दूसरा नहीं है। क्योंकि गीता जैसी जीवंत स्थिति किसी शास्त्र के जन्म में कारणभूत नहीं बनी।

युद्ध अत्यंत संकट का क्षण है। जहां मृत्यु निकट, वहा जीवन अपनी पूरी ज्योति में जलता है। जितनी घनी होती है मृत्यु, जितना अंधकार मृत्यु का सघन होता है, उतनी ही जीवन की बिजली जोर से चमकती है। मृत्यु के क्षण में ही जीवन का सवाल उठता है कि जीवन क्या है।

कुरान है, बाइबिल है, महावीर के वचन हैं, बुद्ध के वचन हैं, बड़े बहुमूल्य। लेकिन उनकी परिस्थिति इतनी जीवंत नहीं है। जीवन के इतने घनेपन में, जहां मृत्यु चारों तरफ खड़ी हो, जहां निर्णय बड़ा मूल्यवान होने वाला है; लाखों लोगों का जीवन निर्भर करेगा अर्जुन के निर्णय पर। अर्जुन भाग जाता है तो, अर्जुन लड़ता है तो, अर्जुन के ऊपर भाग्य—निर्धारण है लाखों लोगों के जीवन का।

अगर महावीर के पास कोई कुछ पूछने आया है, तो उसके जीवन का निर्धारण होगा, उसकी अपनी निजी बात होगी। लेकिन अर्जुन का सवाल बड़ा गहन है। उसके साथ लाखों जीवन बुझेंगे, जलेंगे। वह जो पूछ रहा है, बड़ा शाश्वत है।

अर्जुन को ही गीता कही जा सकती है, धर्मराज युधिष्ठिर को नहीं। और अर्जुन कोई धार्मिक व्यक्ति नहीं है, यह ध्यान रखें। इसीलिए प्रश्न उठ सका। धार्मिक व्यक्ति होता, तो प्रश्न उठता ही नहीं। अगर वह धार्मिक होता, परंपरा के अनुसार हिंदू होता, तो वह लड़ता। क्योंकि क्षत्रिय का धर्म है लड़ना। कोई शास्त्र नहीं कहता हिंदुओं का कि क्षत्रिय न लड़े। लड़ना उसका धर्म है। वह क्षत्रिय होने के भीतर है।

अगर अर्जुन जैन होता जन्म से, तो लड़ने का सवाल ही नहीं उठता था। लड़ना पाप है। युद्ध का मौका ही नहीं आता। वह कभी का संन्यस्थ हो गया होता, वह कभी का जंगल चला गया होता। अगर अर्जुन जैन या बौद्ध होता, तो कभी का जा चुका होता। अगर हिंदू होता, परंपरागत, तो लड़ता। यह कोई सवाल नहीं था।

अर्जुन धार्मिक नहीं है, इसीलिए उसकी चितना मौलिक है। वह किसी शास्त्र से, किसी विधि से बंधा हुआ नहीं है। वह किसी को मानकर चल नहीं रहा है। जीवन सवाल उठा रहा है, वह अपना उत्तर खोज रहा है। इस खोज से ही कृष्ण उससे संबंध जोड़ पाए।। कृष्ण जैसे व्यक्ति केवल उन्हीं लोगों से संबंध जोड़ पा सकते हैं, जो बंधे हुए लीक से, किसी लकीर से जुड़े हुए नहीं हैं, जो मुक्त हैं और जिनके प्रश्न अपने हैं।

मेरे पास जैन आते हैं। वे पूछते हैं, निगोद क्या है? जैनों के सिवाय कोई मुझसे कभी नहीं पूछा कि निगोद क्या है। क्योंकि किसी के शास्त्र में निगोद का वर्णन नहीं है। वह जैनों के शास्त्र में हैं। वह जैनों का अपना पारिभाषिक शब्द है। आपके मन में तो सवाल ही नहीं उठ सकता कि निगोद क्या है। यह शब्द ही व्यर्थ है। लेकिन जैन के मन में उठता है। इसलिए नहीं कि उसके जीवन की समस्या है। उसने किताब में पढा है। पढा है, तो सवाल उठता है। बौद्ध कभी नहीं पूछते कि परमात्मा कहा है, क्योंकि उनके शास्त्र में लिखा है, परमात्मा है ही नहीं। हिंदू पूछते हैं, परमात्मा कहां है? उसका रूप क्या है? उसने सृष्टि क्यों बनाई? जैन कभी नहीं पूछता कि परमात्मा ने सृष्टि क्यों बनाई! क्योंकि जैन मानता ही नहीं कि सृष्टि बनाई गई है। वह मानता है, सृष्टि शब्द ही गलत है। इसका कभी सृजन हुआ नहीं है। अस्तित्व सदा से है। असृष्ट है। इसकी कोई सृष्टि कभी नहीं हुई। इसलिए बनाने वाले का तो कोई सवाल नहीं है।

लेकिन ये सब सवाल शास्त्रीय हैं। ये आपने कहीं पढ़ लिए, पढ़ने से आपके मन में पैदा हुए हैं। ये उधार हैं। आपने ही जीवन में इनको नहीं खोजा है। शब्द आपके भीतर गए, और शब्दों से नए शब्द पैदा हो गए हैं। शब्दों की संतान हैं।

लेकिन हिंदू मेरे पास आता है, वह पूछता है, क्रोध से कैसे मुक्त होऊं? जैन आता है, वह भी पूछता है, क्रोध से कैसे मुक्त होऊं? बौद्ध आता है, वह भी पूछता है, क्रोध से कैसे मुक्त होऊं? यह सवाल शास्त्र से नहीं आ रहा है, यह जीवन से आ रहा है। शास्त्र के सवाल तीनों के अलग हैं। जीवन का सवाल तीनों का एक है। और जब भी कोई व्यक्ति जीवन से उठने लगेगा, पूछने लगेगा, तो प्रश्न एक हो जाएगा। क्योंकि हर मनुष्य की कठिनाई एक है। शास्त्र अलग हैं, आदमी एक है। शास्त्र भिन्न—भिन्न हैं; आदमी का स्वभाव एक है।

इसलिए गीता अनूठा है शास्त्र। और इसलिए गीता हिंदू के भी काम आ सकता है, मुसलमान के भी काम आ सकता है, जैन के भी काम आ सकता है। क्योंकि जिस समस्या से वह उठा है, वह समस्या सबकी समस्या है। जब मैं कहता हूं सबकी समस्या है, तो आपको थोड़ी हैरानी होगी, क्योंकि आप कोई महाभारत के युद्ध में खड़े हुए नहीं हैं। फिर से सोचें तो आप पाएंगे कि आप महाभारत के युद्ध में ही खड़े हुए हैं।

हर मनुष्य युद्ध में खड़ा हुआ है। प्रतिपल युद्ध है। किसी न किसी से लड़ ही रहे हैं। और जब लड़ रहे हैं, तो किसी न किसी की मृत्यु और जीवन आपके हाथ में है। चाहे इंच—इंच किसी को मिटा रहे हों, चाहे इकट्ठा मिटा रहे हों, लेकिन किसी को आप मिटा रहे हैं, मिटाना चाह रहे हैं। किसी को समाप्त कर देना चाहते हैं। किसी की जगह खुद हो जाना चाहते हैं। और जहां—जहां संघर्ष है, प्रतिस्पर्धा है, युद्ध है, वहां—वहा सवाल है, क्या इसका कोई मूल्य है?

एक राजनीतिज्ञ कभी नहीं पूछता कि मैं इतनी दौड़— धूप कर रहा हूं? इतने लोगों को खींचकर पीछे करूंगा, आगे जाऊंगा, क्या इसका सच में कोई मूल्य है कि इतना उपद्रव लिया जाए?

धन की खोज में दौड़ने वाला कभी नहीं सोचता कि मेरे धन की तलाश से कितने लोग निर्धन हो जाएंगे! क्या धन का इतना मूल्य है कि इतने लोग दुखी और पीड़ित हो जाएं? मेरी तिजोरी भर जाएगी, लेकिन कितने पेट खाली हो जाएंगे! क्या तिजोरी को भरने में इतनी कोई सार्थकता है?

तराजू पर अगर तौले कोई भी, तो जो भी आप कर रहे हैं, आपको पूछना ही पड़ेगा कि यह करने योग्य है? इसके करने का परिणाम जो चारों तरफ हो रहा है, उतना मूल्य चुकाया जाए, ऐसी यह मंजिल है? इतनी यात्रा की जाए और पहुंचें कहीं भी न......।

प्रत्येक व्यक्ति महाभारत में खड़ा है। और प्रत्येक व्यक्ति के सामने यही सवाल है, मैं दूसरे को मिटाऊं अपने होने के लिए?

अर्जुन के सामने सवाल है कि अपने को बचाने के लिए इन सबको मिटाऊं? उसके सामने सवाल है कि इनमें मेरे मित्र भी हैं, मेरे संबंधी भी हैं। खुद अर्जुन का गुरु सामने दुश्मन के दल में खड़ा है। जिससे मैंने सब सीखा, जो मैंने सीखा है जिससे, उसको ही मिटाने के काम में लाऊं? प्रियजन हैं, संबंधी हैं। घर का ही झगड़ा है, पारिवारिक युद्ध है।

ध्यान रहे, सारे युद्ध पारिवारिक हैं, क्योंकि मनुष्यता परिवार है। आप किसी से भी लड़ रहे हों, आपके ही भाई से लड़ रहे हैं। वह भाई कितने पीछे आपसे जुड़ा है, यह दूसरी बात है। लेकिन अगर आप पीछे जाएंगे, तो कहीं न कहीं पाएंगे कि आपके दोनों का पिता कहीं न कहीं पीछे एक था।

ईसाई कहते हैं कि एक आदमी आदम और महिला ईव, उन दोनों से ही सारी मनुष्यता पैदा हुई है। वह ठीक ही है। कहानी ठीक ही है। हम आज कितने ही दूर हों। वृक्ष की शाखाएं एक—दूसरी शाखाओं से बहुत दूर निकल जाती हैं। उपशाखाएं पहचान भी नहीं सकतीं। लेकिन नीचे जड़ में एक वृक्ष से जुडी हैं।

सारी मनुष्यता एक वृक्ष है। और सारा संघर्ष पारिवारिक है। और जब भी आप किसी को मिटा रहे हैं, तो अपने ही किसी को मिटा रहे हैं। कितना ही अपरिचय हो गया हो, लेकिन जहां भी कोई मनुष्य है, वह मुझसे जुडा है। मनुष्य होने के कारण हम एक परिवार के हिस्से हैं।

अर्जुन की समस्या आपकी भी 'समस्या है, हर आदमी की समस्या है। और जब आप लड़ेंगे, तो जिसको आप दुश्मन मान रहे हैं, जिनको आप दुश्मन मान रहे हैं, अगर थोड़ा पहचानेंगे, गौर करेंगे, तो पाएंगे, सगे—संबंधी उस तरफ भी खड़े हैं। अन्यथा हो भी नहीं सकता।

इसलिए मैं कहता हूं कि ठीक से सोचने पर पाएंगे कि प्रत्येक व्यक्ति महाभारत के युद्ध में है। और थोड़ा होश हो, तो आप भी यही पूछेंगे, जो अर्जुन पूछ रहा है। और थोड़ा होश हो, तो आप भी कृष्ण को खोजेंगे, जैसा अर्जुन ने खोज लिया है। और गीता आपके लिए भी सार्थक हो सकती है।

धर्मराज मूल्य के नहीं हैं, उनका बहुत मूल्य नहीं है। अर्जुन मूल्यवान है। और ऐसा सदा होता है। आज भी पंडित हैं, धर्मगुरु हैं, पोप हैं, शंकराचार्य हैं, मठाधीश हैं, साधु हैं परंपरागत, संन्यासी हैं, उनका धर्म से कोई संबंध नहीं है। वे सब धर्मराज हैं। उनकी खोज वास्तविक नहीं है। उनके लिए धर्म भी एक लकीर है, सुविधापूर्ण है, कनवीनिएंट है। उसके साथ जीने में उन्हें आराम है, सांत्वना है। और ऐसा सदा हो जाता है।

एक तरफ जीसस है, जो सूली पर लटकता है और एक तरफ वेटिकन का पोप है। क्या संबंध है? इतना ही संबंध है कि सूली पर जीसस लटकता है, वेटिकन का पोप सोने की एक सूली अपने गले में लटकाए है। क्या संबंध है? सूलियों में गले लटकाए जाते हैं, गले में सूलियां नहीं लटकाई जातीं! और फिर सोने की सूली का क्या अर्थ है? ये धर्मराज हैं।

पोप को आप अधार्मिक नहीं कह सकते। नियम से जीते हैं। समय पर प्रार्थना करते हैं। समय पर बाइबिल पढ़ते हैं। जीवन को आंचरण में बांध रखा है। कोई चोर नहीं हैं, बेईमान नहीं हैं, व्यभिचारी नहीं हैं। जो दस आज्ञाएं बाइबिल में

हैं, शायद उनको पूरी तरह पालन करते हैं। लेकिन फिर भी धार्मिक नहीं हैं। फिर भी जीवन में वह ज्योति नहीं है, जो जीसस के जीवन में है।

जीसस की खोज अपनी है। प्राणों को दाव पर लगाया है, तो खोजा है। पोप की खोज अपनी नहीं है, एक परंपरपात व्यवस्था है। पोप एक पद है। जीसस कोई पद नहीं है। और जीसस होने में कठिनाई है, पोप होने में सुविधा है। सभी पोप होना चाहेंगे। जितने ईसाई पादरी हैं, सभी प्रतिस्पर्धा में हैं कि वे कब पोप के पद तक पहुंच जाएं। लाखों में एक पहुंच पाएगा। बारह लाख कैथोलिक पादरी हैं सारी दुनिया में। बड़ा साम्राज्य है। बारह लाख पुरोहित, छोटा—मोटा साम्राज्य नहीं है! फिर इन बारह लाख में से एक आदमी पोप पाल तक पहुंच पाता है। इसके चुनाव हैं, सीढ़ियां हैं, उनको पार करते—करते कोई एक आदमी पहुंच पाता है। तीस वर्ष अंदाजन, तीस—चालीस वर्ष में कोई एक आदमी पोप हो पाता है।

जीसस मर गए तैंतीस वर्ष में। पोप होते—होते कोई भी आदमी पचास साल पार कर जाता है, साठ पार कर जाता है। का ही आदमी पोप हो सकता है। क्योंकि यह जो पदों की परंपरा है, एक—एक सीडी चढ़ना है। अगर जीसस होते, कभी पोप नहीं हो पाते, क्योंकि तैंतीस साल में कोई पोप हो ही नहीं सकता। उसका तो एक ढांचा है। और तैंतीस साल के आदमी पर भरोसा भी नहीं किया जा सकता। कोई परंपरा भरोसा नहीं कर सकती कि उसको पोप बनाए। तैंतीस साल का आदमी खतरनाक है।

अमेरिका में हिप्पी युवकों का एक नारा है कि तीस साल के ऊपर जो हो, उसका भरोसा मत करो। क्योंकि तीस साल के बाद मुश्किल है कि आदमी बेईमान न हो जाए। अनुभव आदमी को बेईमान बनाना शुरू कर देता है। और वह जितना अनुभवी होने लगता है, उतनी ही क्रांति क्षीण हो जाती है।

इसके विपरीत मैं अभी एक लेख पढ़ रहा था। जिसमें एक के आदमी ने लेख लिखा है और उसने कहा है कि तीस साल से कम आदमी का कोई भरोसा मत करो। उसकी भी दलीलें हैं। वह कहता है, तीस साल के पहले आदमी का अनुभव ही नहीं है। और जिसका कोई अनुभव नहीं, उसकी बातों का कोई भरोसा नहीं है। उसे मनुष्य जाति के इतिहास का कोई खयाल नहीं है।

जो भूलें हजार बार हो चुकी हैं, जवान हमेशा उन्हीं को दोहराता है, क्योंकि उसके पास कोई अनुभव नहीं है। का कभी भूलें नहीं दोहराता। लेकिन का कभी कोई नया काम ही नहीं करता, भूलें दोहराने का कोई कारण नहीं है। भूल तो उससे होती है, जो नया काम करता है।

जीसस पोप नहीं हो सकते। अगर आदि शंकराचार्य पैदा हों, तो किसी मठ के शंकराचार्य नहीं हो सकते। तैंतीस साल में शंकराचार्य समाप्त हो गए।

कुछ कारण हैं। एक तो परंपरागत सिंहासन है। उन पर पहुंचता ही वह है, जो बिलकुल मुर्दा होता है। नहीं तो गुजर नहीं सकता है। बीच की जो सीढ़ियां हैं, उनसे कभी का हटा दिया जाएगा। अगर जरा—सी भी बगावत का लक्षण है, जरा—सा भी स्वयं के सोचने का ढंग है, तो वह कभी का अलग छांट दिया जाएगा। वहा तक तो वही पहुंचेगा, जो बिलकुल लकीर का फकीर है। जिसने पच्चीसों वर्ष तक प्रमाण दे दिए' हैं, कि न मैं सोचता हूं, न मैं विचारता हूं मैं सिर्फ दोहराता हूं। मैं सिर्फ एक ग्रामोफोन रिकार्ड हूं। वह आदमी पोप तक पहुंच पाएगा। वह धर्मराज होगा। लेकिन गीता उससे नहीं

कही जा सकती।

इसलिए अर्जुन पात्र है, और धर्मराज पात्र नहीं हैं।

दूसरा प्रश्न :
युद्ध की पार्श्वभूमि में मृत्यु का क्षण अर्जुन के रूपांतरण में सहायक सिद्ध हुआ। क्या अर्जुन अन्यत्र रूपांतरित न हो पाता? और क्या हमें भी अनिवार्यतः मृत्यु के क्षण जैसी स्थिति रूपांतरण के लिए आवश्यक है?

निश्चय ही, जब तक किसी व्यक्ति को मृत्यु का ठीक—ठीक बोध नहीं होता, जब तक मृत्यु का तीर आपके हृदय में ठीक—ठीक चुभन पैदा नहीं करता, तब तक आप जीवन के संबंध में सोचना शुरू नहीं करेंगे।

मृत्यु ही सवाल उठाती है कि जीवन क्या है। अगर मृत्यु न हो, तो जीवन के संबंध में कोई सवाल न उठेगा। अगर मृत्यु न हो, तो धर्म के जन्म का कोई उपाय नहीं है।

मृत्यु ही हिलाती है। मृत्यु ही जगाती है। मृत्यु ही प्रश्न बनाती है कि जिस जीवन को तुम जी रहे हो, अगर वह कल मिट ही जाने वाला है, तो उसका मूल्य क्या? उसमें अर्थ क्या है? जिसके लिए तुम आज इतने बेचैन हो और वह कल ऐसे मिट जाएगा, जैसे पानी पर खींची गई लकीर, तो खींचने के लिए इतनी आतुरता क्या है? जिन हस्ताक्षरों को करने में तुम इतनी पीड़ा उठा रहे हो कि जीवन उन्हें याद रखे, वे रेत पर बनाए गए हस्ताक्षर हैं। तुम पूरे भी न कर पाओगे कि हवा का झोंका उन्हें पोंछ जाएगा। तो जीवन में इतना ज्यादा रस व्यर्थ मालूम होगा।

मृत्यु ही बताएगी कि जिसे तुम जीवन समझ रहे हो, वह जीवन नहीं है। और मृत्यु ही तुम्हें धक्का देगी कि तुम उस जीवन की खोज करो, जिसे मृत्यु न मिटा सके। क्योंकि वही जीवन है, जो अमृत है; और जहां कोई मृत्यु न होगी, कोई अंत न होगा।

अगर ऐसा कोई जीवन नहीं है, तो जिसे हम जीवन कह रहे हैं, यह नितांत मूढ़ता है। यह नितांत असंगत, एक दुखस्वप्न, एक नाइटमेयर है। अगर कोई ऐसा जीवन हो सकता हो, जिसका अंत न हो, तो ही इस जीवन में भी कोई सार हो सकता है। क्योंकि तब हम इस जीवन को उस जीवन में जाने की परिस्थिति बना सकते हैं। तब हम इस जीवन को उस जीवन में प्रवेश की साधना बना सकते हैं। तब हम इस जीवन को एक द्वार की तरह, एक शिक्षण की तरह उपयोग कर सकते हैं और परम जीवन में प्रवेश कर सकते हैं। इस जीवन का एक ही उपयोग हो सकता है कि यह किसी महत्तर जीवन में जाने का साधन बन जाए।

मृत्यु ही बताती है कि यह अंत नहीं है। अंत कहीं और खोजना होगा। मृत्यु ही बताती है कि यह यात्रा—पथ भला हो, मंजिल नहीं है। मंजिल कहीं और खोजनी होगी।

अर्जुन को ही नहीं, किसी को भी मृत्यु ही जगाती है। अगर कोई समझदार हो अर्जुन जैसा, तो दूसरे की मृत्यु भी जगाने वाली बन जाती है। अगर कोई मूढ़ हो, तो दूसरे की मृत्यु का उससे कोई संबंध नहीं जुड़ता।

हेनरिक हेन, एक जर्मन कवि ने लिखा है।

जिस गांव में हेनरिक हेन था, उस गाव की परंपरा थी कि जब भी कोई गांव में मर जाए, तो चर्च की घंटी बजे। चर्च का घंटा बजे, ताकि पूरे गांव को खबर हो जाए कि कोई मर गया है। और लोग पूछने भेज दें चर्च में कि कौन मर गया है।

हेनरिक ने अपनी डायरी में लिखा है, डोंट सेड एनीबडी टु आस्क, फार ह्य दि बेल टाल्स, इट टाल्स फार दी! मत भेजो किसी को पूछने कि चर्च का घंटा किसके लिए बज रहा है। यह घंटा तुम्हारे लिए बज रहा है। कोई भी मरे, तुम्हारी मौत का ही इशारा है।

हर मौत खबर है कि तुम भी मरोगे। हर मौत किसी अंश में तुम्हारी मौत है। जब भी कोई मरता है, कुछ हिस्सा तुम्हारा मर जाता है। और तुम्हारी मौत तुम्हें घेर लेती है क्षणभर को।

अर्जुन को दूसरे की मृत्यु भी प्रतीक हुई जा रही है। वह सिर्फ यही नहीं पूछ रहा है कि इनको मैं क्यों मारूं, वह यह पूछ रहा है कि अगर यह मारना ही सब कुछ है, तो जीवन का मूल्य क्या है? अगर इस मृत्यु से जीवन मिलता हो, तो ऐसे जीवन का मैं त्याग करता हूं। वह यह कह रहा है कि अगर मृत्यु के माध्यम से जीवन मिलता हो, तो मैं ऐसे जीवन का त्याग करता हूं। इससे तो बेहतर है, मैं भाग जाऊं जंगल। इससे तो बेहतर है, मैं मर जाऊं मारने की बजाए।

जब भी आप किसी और की मृत्यु देख रहे हैं, तब अगर आप थोड़े भी विचारपूर्ण हैं, तो आप तत्क्षण सजग हो जाएंगे कि आपकी मौत भी करीब है। और जिस क्यू में यह आदमी गिर गया है, उसी क्यू में आप भी खड़े हैं। थोड़े फासले पर खड़े होंगे। यह नंबर एक था, इसका वक्त आ गया। लेकिन इसके आने से एक नंबर आप भी आगे सरक गए हैं। क्यू में आप थोड़े आगे आ गए हैं। जहां मौत घटने वाली है, उस बिंदु के आप करीब सरक रहे हैं। हर क्यू में गिरने वाला आदमी आपको करीब ला रहा है। हर रास्ते से निकलती लाश आपकी मौत को करीब ला रही है। हर लाश एक सीढ़ी है, जो आपको मौत तक पहुंचा देगी।

मृत्यु का बोध बुद्ध को संन्यस्थ जीवन में ले गया। मृत्यु का बोध ही किसी भी मनुष्य को कभी भी धार्मिक होने की प्रेरणा दिया है। मृत्यु का परम वरदान है। मृत्यु है, इसलिए आप सोचते हैं।

कोई भी जानवर धार्मिक नहीं है। न होने का कारण कुल इतना है कि कोई भी जानवर अपनी मृत्यु के संबंध में नहीं सोच पाता। मृत्यु उसके लिए कभी भी विचारणीय नहीं बनती। इतना भविष्य में पशु का मन नहीं सोच सकता। और अगर कोई मर भी जाए, तो पशु यह नहीं सोच सकता कि मैं मरूंगा। यह एक दुर्घटना है। इस पर कोई सोच—विचार भी नहीं होता। अगर पशुओं को भी खयाल आ जाए कि उनकी मृत्यु करीब है, तो वे भी अपना धर्म निर्मित कर लें।

धर्म वस्तुत: मृत्यु के पार जाने का उपाय है। इसलिए जिस व्यक्ति को भी वस्तुत: धार्मिक रूपांतरण से गुजरना हो, उसे अपनी मृत्यु के प्रति बहुत सघन रूप से सचेत हो जाना चाहिए।

मृत्यु के प्रति सचेत होने का अर्थ मृत्यु से भयभीत होना नहीं है। सच तो यह है, जो सचेत नहीं होते, वे ही भयभीत होते हैं। जो सचेत होते हैं, वे तो उसके पार जाने का उपाय करने लगते हैं। उनका मृत्यु का भय नष्ट हो जाता है।

मृत्यु का बोध, कांशसनेस आफ डेथ चाहिए, कि मृत्यु है, और उससे हम आंख न चुराए। और हमारे आंख चुराने से हम बचेंगे नहीं। आंख चुराना शुतुरमुर्गी है। शुतुरमुर्ग छिपा लेता है अपनी गर्दन को रेत में, कोई दुश्मन को देखता है तो। आंख बंद हो जाती है, रेत में गर्दन छिप जाती है; शुतुरमुर्ग सोचता है, जो दुश्मन दिखाई नहीं पड़ता, वह नहीं है। यह तर्क शुतुरमुर्गी है। हम भी यही तर्क का उपयोग करते हैं। जिस चीज से हम डरते हैं, उसको हम देखते नहीं हैं। और सोचते हैं, न दिखाई पड़ने से हम बच जाएंगे।

असल में जिससे भी भय हो, उसकी तरफ आंख गड़ाकर ही देख लेना उपाय है। क्योंकि तब कुछ किया जा सकता है।

मौत के प्रति ध्यान जरूरी है। हम उससे भाग न सकेंगे। हम कहीं भी भागें, हम उसी में पहुंच जाएंगे। हमारी सब भाग—दौड़ मृत्यु में ले जाएगी। उससे बचने का कोई भी उपाय नहीं है। सिर्फ एक ही उपाय है कि हम मृत्यु को देखें, समझें, और अपने भीतर किसी ऐसे तत्व को खोज लें, जो नहीं मर सकता है। फिर मृत्यु व्यर्थ हो जाती है। फिर कोई हंस सकता है। फिर कोई मृत्यु के साथ खेल सकता है।

कृष्ण भी अर्जुन को यही इशारा दे रहे हैं। वे यही समझाने की। कोशिश कर रहे हैं कि मृत्यु वास्तविक नहीं है! क्योंकि जो भीतर छिपा है, वह कभी भी नहीं मरता। न उसे हम जला सकते हैं जलाने से; न उसे डुबा सकते हैं, न गला सकते हैं; न उसमें छिद्र किए जा सकते हैं शस्त्रों से, न उसे आग जलाती है। जब कोई मार भी डाला जाए, तो भी वह नहीं मरता है।

अर्जुन मृत्यु के प्रति सचेत हो गया है। कृष्ण उसे अमृत के प्रति सचेत करने की कोशिश कर रहे हैं। लेकिन ध्यान रहे, अमृत के प्रति उसी की आंखें उठ सकती हैं, जो मृत्यु को देखने में ठीक—ठीक सफल हो गया। क्योंकि मृत्यु के पार अमृत है।

पहले तो मृत्यु को देखना ही पड़ेगा। और आंख इतनी गहरी चाहिए कि मृत्यु के आर—पार प्रवेश कर जाए और छिपे हुए अमृत को खोज ले।

जो मृत्यु से बचेगा, वह आत्मा से भी बच जाएगा। जो मृत्यु से आंख चुराएगा, अमृत से भी उसके संबंध जुड़ नहीं पाएंगे। यह उलटा मालूम होगा, पैराडाक्सिकल लगेगा, विरोधाभासी, कि जो मृत्यु से बचता है, वही मरता है। और जो मृत्यु का साक्षात कर लेता है, उसकी कोई मृत्यु नहीं है।

धर्म मृत्यु के साक्षात्कार की प्रक्रिया है।

तीसरा प्रश्न :
ज्ञानों में भी अति उत्तम परम ज्ञान, ऐसा कृष्ण ने कहा। क्या ज्ञान में भी श्रेणी—क्रम है?
ज्ञान में तो कोई श्रेणी—क्रम नहीं है, लेकिन व्यक्ति भिन्न—भिन्न हैं, इसलिए एक ज्ञान आपके लिए परम ज्ञान हो सकता है और दूसरा ज्ञान आपके लिए परम ज्ञान न हो। परम ज्ञान से प्रयोजन है, जिस ज्ञान से आपकी मुक्ति हो जाए। जिस साधना—विधि से आप सिद्ध हो जाएंगे, वह आपके लिए परम है।

हजार साधना—विधियां हैं। उनमें कोई श्रेणी—क्रम नहीं है। वे सभी श्रेष्ठ हैं। लेकिन वे सभी आपके लिए श्रेष्ठ नहीं हैं। कोई और उनसे पहुंच सकता है।

व्यक्ति भिन्न—भिन्न हैं। सभी रास्ते वहां पहुंचा देते हैं। जो रास्ता आपको पहुंचा देता है, वह परम है आपके लिए। जो रास्ता मुझे पहुंचा देता है, वह परम है मेरे लिए। आपका रास्ता मेरे लिए दो कौड़ी का है। मेरा रास्ता आपके लिए दो कौड़ी का है। उसका कोई भी मूल्य नहीं।

यह जो परम शब्द का कृष्ण उपयोग कर रहे हैं, यह दो रास्तों में तौलने के कारण नहीं है। हजार रास्ते हैं। लेकिन एक व्यक्ति को एक ही रास्ता पहुंचाएगा। और अपने रास्ते को खोज लेना परम को खोज लेना है।

इसे थोड़ा ठीक से समझ लें। यह तुलना रास्तों को नीचा—ऊंचा करने की नहीं है। इसलिए कृष्ण को समझने में कई बार' कठिनाई होती है। जब वे भक्ति की बात करते हैं, तब वे कहते हैं, परम। जब वे ज्ञान की बात करते हैं, तब वे कहते हैं, परम। इसलिए इतनी टीकाएं कृष्ण की गीता पर हो सकीं। और सभी टीकाकार गलती करते हुए भी ऐसा नहीं मालूम पड़ते कि गलती करते हैं। क्योंकि उनके मन की बात भी कृष्ण ने कहीं कही है। वे उसकी ऊपर उठा लेते हैं।

जैसे रामानुज, भक्त हैं और मानते हैं कि भक्ति ही मार्ग है। तो कृष्ण के वचन हैं, जिसमें उन्होंने कहा है कि भक्ति परम है, सर्वश्रेष्ठ भक्त है। तो बस, उसको रामानुज चुन लेंगे, उसको बिंदु बना लेंगे, आधार। और उसके आधार पर पूरी गीता की व्याख्या कर देंगे। जो गलत है। क्योंकि कई जगह कृष्ण ज्ञान को परम कह रहे हैं कि ज्ञानी परम श्रेष्ठ है। तब रामानुज उसकी ऐसी व्याख्या करेंगे कि जिससे वह भक्ति श्रेष्ठ रहे और यह ज्ञान नंबर दो का हो जाए। कैसे वे व्याख्या करेंगे?

आदमी शब्दों के साथ खेल कर सकता है। खेल यह है कि वे कहते हैं, परम ज्ञानी वही है, जिसको भक्ति का ज्ञान है। हल हो गया। अड़चन हल हो गई।

शंकर ज्ञान को श्रेष्ठ मानते हैं। वचन हैं गीता में, यही वचन है कि मैं तुझसे परम ज्ञान कहता हूं। तो शंकर क्या करेंगे जहां भक्ति श्रेष्ठ है? शंकर करेंगे कि भक्ति भी ज्ञान तक पहुंचने का एक मार्ग है। लेकिन ज्ञान ही है अंत। भक्ति भी एक मार्ग है ज्ञान तक पहुंचने का। लेकिन वह मार्ग कमजोरों के लिए है। जो सबल हैं, वे सीधा ज्ञान का मार्ग ले लेते हैं। जो भावाविष्ट हैं, भावुक हैं, स्त्रैण हैं, वे भक्ति का मार्ग लेंगे—। वह भी एक मार्ग है। उसको भी बरदाश्त किया जा सकता है।

कृष्ण कहीं कर्म को श्रेष्ठ कहते हैं। कहते हैं, कर्मयोगी ही श्रेष्ठ है। तो तिलक उसको पकड़ लेते हैं, और गीता की पूरी व्याख्या कर्मयोग कर देते हैं। तब ज्ञान भी तभी सार्थक है, जब कर्म में उतरे। और भक्ति भी तभी सार्थक है, जब वह तुम्हारा कर्म और सेवा बन जाए। फिर तिलक के पीछे चलकर गांधी और विनोबा कर्म का विस्तार किए चले जाते हैं।

गीता की हजार व्याख्याएं संभव हैं। हजार व्याख्याएं हुई हैं। होने का कारण यह है कि कृष्ण पाथिक नहीं हैं। वे किसी एक पंथ की बात नहीं कह रहे हैं। वे सभी दृष्टियों की बात कर रहे हैं। और सभी दृष्टियों में जब वे जिस दृष्टि की बात करते हैं, उसमें जो श्रेष्ठतम है, उसको खींचकर ऊपर लाते हैं। और जब वे उस दृष्टि की बात करते हैं, तो उसके साथ तत्सम हो जाते हैं, एक हो जाते हैं। फिर वे भूल जाते हैं कि और भी दृष्टियां हैं। और तभी ऐसा हो सकता है, नहीं तो उस दृष्टि का पूरा गहन विश्लेषण भी नहीं हो सकता। कृष्ण दूर खड़े होकर विश्लेषण नहीं करते हैं। जब वे भक्ति की बात अर्जुन से कह रहे हैं, तब वे भक्त ही हो जाते हैं। और तब वे उसका गुणगान करते हैं जितना हो सकता है। उस गुणगान में वे कंजूसी नहीं करते। और उस गुणगान में यह खयाल नहीं रखते कि पहले मैंने क्या कहा है। क्योंकि वह तो सिर्फ चालाक आदमियों का हिसाब है कि पहले मैंने क्या कहा था। वे इसका भी हिसाब नहीं रखते कि कल मैं क्या कहूंगा। क्योंकि वे कोई दुकानदार नहीं हैं। कल, कल देखा जाएगा।

और जब वे गुलाब के फूल की प्रशंसा करेंगे, तो सब फूल भूल जाएंगे। और जब वे कमल के फूल की प्रशंसा करेंगे, तो सब फूल भूल जाएंगे। तब कमल का फूल ही सारे फूलों का सार हो जाएगा। लेकिन यह दृष्टि समझनी कठिन है, क्योंकि तब कृष्ण बेबूझ हो जाते हैं। और संप्रदाय वाले लोग फिर उनसे अपना—अपना मतलब निकालते हैं।

इसलिए सभी ने कृष्ण के साथ ज्यादती की है। ज्यादती करनी ही पड़ेगी, क्योंकि इतना विराट हृदय है! कृष्ण जैसा हृदय बहुत मुश्किल है, जहां सब समा जाएं।

नसरुद्दीन गांव का न्यायाधीश हो गया था। पहला ही मुकदमा उसकी अदालत में आया। पक्ष के वकील ने कुछ कहा, अपना वक्तव्य दिया। नसरुद्दीन ने कहा, बिलकुल ठीक। जो कोर्ट का क्लर्क था, जो नीचे ही नसरुद्दीन के बैठा था, वह थोड़ा घबड़ाया। जज को ऐसा निर्णय नहीं देना चाहिए। अभी दूसरे पक्ष की बात सुनी ही नहीं गई।

उसने झुककर नसरुद्दीन को कहा कि शायद आपको पता नहीं अदालत के नियम। आप चुप रहें। निर्णय आखिर में। और अगर आप अभी कह देते हैं कि बिलकुल ठीक, तो फिर दूसरे विपक्षी को कहने का क्या मौका रहा! नसरुद्दीन ने कहा, बिलकुल ठीक। उस क्लर्क से कहा।

फिर विपक्षी की बात सुनी। और जब विपक्षी अपना पूरा वक्तव्य दे चुका, तो नसरुद्दीन ने कहा, बिलकुल ठीक। क्लर्क झुका और उसने कहा, अब हद हो गई। पक्ष भी ठीक; मैंने विरोध किया, वह भी ठीक, अब यह विरोधी जो कह रहे हैं, यह भी ठीक! आपका मतलब क्या है? ये सब ठीक नहीं हो सकते! नसरुद्दीन ने कहा कि बिलकुल ठीक।

इस भाव—दशा को समझना थोड़ा कठिन है। या तो मूढ़ में हो सकती है यह भाव—दशा, या परम शानी में। या तो मूढ़ ऐसी मूढ़ता कर सकता है कि सभी को ठीक कह दे। और या फिर परम शानी ऐसे ज्ञान की बात कर सकता है कि सभी को ठीक कहे। मध्य में तो हमें सदा ऐसा लगेगा कि कुछ ठीक और कुछ गलत। अगर एक पक्ष ठीक है, तो विपक्ष गलत होगा ही।

हम सब अरस्तु के तर्क से जीते हैं। जहां विपरीत बातें, दोनों सही नहीं हो सकतीं। दोनों गलत हो भी सकती हैं, लेकिन दोनों सही नहीं हो सकतीं। सही तो एक ही हो सकती है।

लेकिन कृष्ण जैसे व्यक्ति अरस्तू के तर्क से नहीं जीते हैं। कृष्ण जैसे व्यक्ति विराट हैं। उनमें सब समाया हुआ है। और जब भी वे किसी एक बात की चर्चा करते हैं, तो पूरे उसमें तल्लीन हो जाते हैं। उस तल्लीनता के कारण वे जगह—जगह कभी भक्ति को श्रेष्ठ कहते हैं, कभी ज्ञान को श्रेष्ठ कहते हैं, कभी कर्म को श्रेष्ठ कहते हैं।

आप क्या करें? आप उलझन में पड़ जाएंगे। क्योंकि अगर वे एक को श्रेष्ठ कह दें, तो आप आंख बंद करके चल पड़े। लेकिन शायद उचित ही है कि वे आपको आंख बंद करने का मौका नहीं देते। वे आपसे यह कह रहे हैं कि मैं तो सबको श्रेष्ठ कह रहा हूं लेकिन तुम्हारे लिए क्या श्रेष्ठ है, वह तुम्हें खोजना पड़ेगा। तुमसे किस चीज का तालमेल बैठ जाता है, तुम्हारे हृदय में कौन—सी चीज अनुगूंज पैदा करती है, तुम्हारी धड़कनें किस बात के साथ नाचने लगती हैं, तुम किससे अपना तारतम्य पाते हो, वही तुम्हारे लिए श्रेष्ठ है।

इसे खयाल रखें, अन्यथा कृष्ण बहुत असंगत मालूम होंगे। सभी महापुरुष असंगत होते हैं, सिर्फ क्षुद्र व्यक्तित्व असंगत नहीं होते। क्योंकि उनमें विपरीत समाया होता है। वे अपने से भिन्न को भी अपने भीतर समा लेते हैं।

चौथा प्रश्न :
कृष्ण, बुद्ध, महावीर जानते हैं कि संसार माया है, एक स्वप्न है, तो भी वे अपने शिष्यों के साथ इतना श्रम क्यों करते हैं? क्या उनका श्रम भी, शिष्यों को साधना करवाना भी माया के ही अंतर्गत नहीं है?
निश्चित ही माया के अंतर्गत है। जैसे कोई सोया हो, स्वप्न देख रहा हो कि उसके घर में आग लग गई है। और तड़फ रहा हो, नींद में हाथ—पैर मार रहा हो, चिल्ला रहा हो, आग! आग! आप जागे हुए बैठे हैं। और आप जानते हैं, कहीं आग नहीं लगी है। आप जानते हैं कि वह स्वप्न देख रहा है। उसके माथे पर जो पसीना बह रहा है, वह स्वप्न की आग से पैदा हुआ है। उसके मुंह से जो चिल्लाहट निकल रही है, आग, मर गए; लुट गए; वह स्वप्न की आग से निकल रही है। आप उसको जगाने की कोशिश करेंगे, जाग जाओ। हिलाके, उससे कहेंगे, यह स्वप्न है।

स्वप्न को तोड्ने की क्या जरूरत? स्वप्न स्वप्न है ही। स्वप्न को तोड्ने के लिए आप परेशान क्यों हो रहे हैं? अगर स्वप्न स्वप्न ही है, तो इतनी परेशानी आपको क्या है! इसको चिल्लाने दो, रोने दो, चीखने दो। स्वप्न ही है। लेकिन फिर भी आप कोशिश करेंगे। माना कि जो यह देख रहा है, वह तो स्वप्न है, लेकिन जो यह भोग रहा है, वह सत्य है।

इस फर्क को ठीक से समझ लें।

जो यह देख रहा है कि आग लगी है, वह तो स्वप्न है, लेकिन जो यह भोग रहा है, जो पीड़ा, वह सत्य है। उस पीड़ा में कोई फर्क नहीं पड़ता। वस्तुत: घर में आग लगी हो, तो भी इतनी ही पीड़ा होती है, और सपने में आग लगी हो, तो भी इतनी ही पीड़ा हो रही है। या कि कोई फर्क पड़ता है?

पीड़ा वास्तविक है। संसार असत्य है, लेकिन संसार में भोगा गया दुख वास्तविक है। यह संसार सत्य हो या असत्य हो, इससे फर्क नहीं पडता; आप दुख भोग रहे हैं, यह सवाल है। और बुद्ध और महावीर और कृष्ण जानते हैं कि तुम्हारा दुख असत्य से पैदा हो रहा है, लेकिन तुम दुखी हो, यह निश्चित है।

इतना भर कह देने से कि यह सब माया है, सपना है; छोड़ो, इसमें कुछ रखा नहीं है, तुम्हारा दुख नहीं मिटेगा। तुम्हें जगाना पड़ेगा।

साधना पद्धति का अर्थ होता है, जगाने की कोई व्यवस्था। और यह नींद ऐसी गहरी है, यह नींद साधारण नींद नहीं है। साधारण नींद में तो दूसरा आदमी आपको हिलाकर उठा दे। यह नींद ऐसी गहरी है कि जब तक आप ही अपने को हिलाना न शुरू करें, कोई कृष्ण, कोई बुद्ध आपको हिलाकर नहीं उठा सकते हैं।

इसलिए कृष्ण, बुद्ध और महावीर इतना ही कर सकते हैं कि आपको कुछ विधियां दें, जिनके माध्यम से आप अपने को हिलाना शुरू करें और किसी दिन जाग जाएं। जागकर आप भी पाएंगे कि स्वप्न था। जागकर आप भी पाएंगे कि जो मैं देख रहा था, वह वास्तविक नहीं था। लेकिन फिर भी आप बुद्ध के चरणों में सिर रखकर धन्यवाद देंगे। क्योंकि जो आप भोग रहे थे, वह काफी वास्तविक था।

झूठी चीजों से भी सत्य भोग भोगा जा सकता है। एक आदमी रास्ते पर देखता है, रस्सी पड़ी है अंधेरे में और सांप दिखाई पड़ती है; वह भाग खड़ा होता है। उसकी छाती कम धड़केगी, क्योंकि वहां रस्सी है, सांप नहीं? सांप होता तो ज्यादा धड़कती?

इस आदमी के लिए तो सांप है ही। यह भाग रहा है। इसकी घबड़ाहट तो वास्तविक है। इसकी पीड़ा वास्तविक है। इसका हार्ट फेल हो सकता है। और आप यह न कह सकेंगे कि गलत है तुम्हारा हार्ट फेल। क्योंकि तुमने जो देखा, वह सांप नहीं था, रस्सी थी। वापस लौटो। यह बिलकुल ठीक नहीं है। यह जायज नहीं है।

मगर आपके कहने से कोई वापस लौटने वाला नहीं है। जायज—नाजायज कौन पूछेगा? यह हृदय की धड़कन बंद हो सकती है झूठे सांप को देखकर। वास्तविक हृदय की धड़कन बंद हो सकती है झूठे सांप को देखकर!

आप दुख तो भोग ही रहे हैं। इस दुख से बाहर आने की व्यवस्था साधना है।

और महावीर, बुद्ध और कृष्ण इतना श्रम लेते हैं, वह श्रम भी आपको श्रम मालूम पड़ रहा है। शायद आपको कभी—कभी तो पागलपन भी मालूम पड़ता होगा। क्योंकि श्रम में भी कोई पुरस्कार तो दिखाई पड़ता नहीं। श्रम भी आदमी करता है, तो कुछ पाने को। इनको मिलता क्या है? कभी—कभी जीसस जैसे व्यक्ति को सूली मिल जाती है, और तो कुछ मिलता नहीं। कभी सुकरात को जहर मिल जाता है, और तो कुछ मिलता नहीं। यह—पुरस्कार है!

मिलता क्या है? श्रम ही दिखाई पड़ता है। किसलिए श्रम कर रहे हैं? आपको ऐसा लगता है कि श्रम कर रहे हैं, उनकी तरफ से श्रम नहीं है। उनकी तरफ से सहज आनंद है। उनकी तरफ कोई मेहनत नहीं हो रही है। जो उन्होंने जाना है, उसे दूसरे को भी जना देना एक आनंद है। जो उन्होंने पाया है, वह दूसरा भी पा ले, उस दूसरे के पाने में भी बड़ा आनंद है।

यह श्रम किसी पुरस्कार को पाने के लिए नहीं है। यह श्रम अपने में ही पुरस्कार है। इसके पार और कुछ पाने का सवाल नहीं है। यह श्रम प्रेम का एक हिस्सा है। यह एक करुणा है।

अब हम सूत्र लें।
हे अर्जुन, नाना प्रकार की सब योनियों में जितनी मूर्तियां अर्थात शरीर उत्पन्न होते हैं, उन सबकी त्रिगुणमयी माया तो गर्भ को धारण करने वाली माता है और मैं बीज को स्थापन करने वाला पिता हूं। हे अर्जुन, सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण, ऐसे यह प्रकृति से उत्पन्न हुए तीनों गुण इस अविनाशी जीवात्मा को शरीर में बांधते हैं। हे निष्पाप, उन तीनों गुणों में प्रकाश करने वाला निर्विकार सत्वगुण तो निर्मल होने के कारण सुख की आसक्ति से और ज्ञान की आसक्ति से अर्थात ज्ञान के अभिमान से बांधता है।

पहली बात, गीता के अनुसार और वस्तुत: सांख्य के अनुसार प्रकृति तीन तत्वों का मेल है, सत्व, रज, तम।

यह आश्चर्य की बात है कि जगत में जहां भी किसी ने विश्लेषण किया है जीवन का, अंतिम विश्लेषण हमेशा तीन पर टूट जाता है। प्रतीकों में, धारणाओं में, सिद्धांतों में अस्तित्व तीन हिस्सों में टूट जाता है।

ईसाइयत ट्रिनिटी में विश्वास करती है कि ईश्वर के तीन रूप हैं। और उनसे ही सारा जगत निर्मित होता है। हिंदू त्रिमूर्ति में विश्वास करते हैं कि परमात्मा के तीन चेहरे हैं, ब्रह्मा, विष्णु, महेश। उन तीन चेहरों से ही सारा जगत, उन तीन व्यक्तित्वों से ही सारा जगत निर्मित है।

सांख्य अति वैज्ञानिक है। वह ट्रिनिटी और त्रिमूर्ति की बात नहीं करता, तीन चेहरों की बात नहीं करता, वह तीन तत्वों की बात करता है, सत्य, रज, तम। ' सत्व, रज, तम, तीनों के तीन गुण हैं। और उन तीनों गुणों के मेल से सारा अस्तित्व गतिमान है।

तम स्थिति—स्थापक है। तम का अर्थ है, आलस्य की, विश्राम की दशा, ठहरी हुई दशा, अवरोधक। एक पत्थर आप फेंकते हैं। अगर आप न फेंकते, तो पत्थर अपनी जगह पड़ा रहता। अपनी जगह पड़ा रहना तम है। जब तक कि कोई बाहरी चीज धक्का न दे, सभी चीजें अपनी जगह पड़ी रहेंगी। तम का अर्थ है, अपनी जगह ठहरे रहना, हटना नहीं। और जब आप पत्थर को फेंकते हैं, तब भी आपको ताकत लगानी पड़ती है। वह ताकत इसीलिए लगानी पड़ती है, क्योंकि पत्थर अपनी जगह रहना चाहता है। उसको जगह से हटाने में आपको संघर्ष करना पड़ता है।

फिर आप पत्थर को फेंक भी देते हैं, अगर तम जैसी कोई चीज न होती, तो पत्थर फिर कभी रुकता ही नहीं। वह चलता ही चला जाता। लेकिन पत्थर लड़ रहा है रुकने के लिए। आपने फेंक दिया, तो आपने थोडी—सी ऊर्जा उसको

दी, शक्ति दी अपने शरीर की। वह शक्ति जैसे ही चुक जाएगी, पत्थर वापस जमीन पर गिर जाएगा। विज्ञान जिसको ग्रेविटेशन कहता है, सांख्य उसको तम कहता है, ठहरने की, प्रतिरोध की, रुकने की, स्थिति में बने रहने की। अगर दुनिया में तम न हो, तो फिर कोई भी चीज ठहरेगी नहीं। बड़ा मुश्किल हो जाएगा। सभी चीजें गति में रहेंगी। और गति इतनी विक्षिप्त हो जाएगी कि उसके ठहरने का कोई उपाय नहीं रह जाएगा। अकेली गति काफी नहीं है। ठहरने का तत्व कहीं प्रकृति में गहन होना चाहिए।

तम है स्थिति का, ठहरने का तत्व, कहें मृत्यु का तत्व। क्योंकि मृत्यु ठहरा लेती है। मर जाने के बाद फिर कोई गति नहीं है। इसलिए तामसिक व्यक्ति हम उसको कहते हैं, जो मरा—मरा जीता है। जिसमें तम इतना है, कि जिसमें गति है ही नहीं। जो चलता ही नहीं, उठता ही नहीं। जिसके भीतर कोई क्रांति, कोई परिवर्तन, कोई नया नहीं होता; कुछ रूपांतरण नहीं होता। जो पत्थर की तरह पड़ा हुआ है।

देखें, हम प्रकृति में भी इसी तरह हिसाब लगाते हैं विकास का। जितना ज्यादा तम हो, उतनी अविकसित चीज मानी जाएगी। जितना कम तम हो, उतनी विकसित। आदमी सबसे ज्यादा गतिमान है। पत्थर सबसे ज्यादा गतिहीन है। पौधों में थोड़ी गति है। पशुओं में और ज्यादा। मनुष्य में बहुत।

मनुष्य पानी में भी गति करे, जमीन पर भी, हवा में, आकाश में भी, चांद—तारों तक भी जाए। उसे रोकने का उपाय नहीं, सब तरफ भागता है। इसलिए मनुष्य सर्वाधिक विकसित है। उसने अपने तम की या अपने भीतर की मृत्यु पर सर्वाधिक विजय पा ली है। वह बदल सकता है।

समाज में भी वही समाज सबसे ज्यादा प्रगतिशील होगा, जिसने तम को तोड़ दिया है। पश्चिम के समाज अपने तम को तोड़ने में काफी सफल हुए हैं। विकास तीव्र हो गया है। लेकिन किन्हीं सीमाओं में विकास इतना ज्यादा हो गया है कि ठहरने की उन्हें कला ही भूली जा रही है। तो भी घबड़ा गए हैं।

क्योंकि एक आदमी चल पड़े और रुकना न जाने, रुकना भूल जाए! मंजिल पर पहुंचने को चला था, लेकिन मंजिल पर रुकना पड़ेगा; और वह रुकना भूल जाए! और चलना ऐसा हो जाए कि वह रुकना भी चाहे, तो रुक न सके। मंजिल भी आ जाए, तो क्या करे? मंजिल पीछे छूट जाएगी। वह आदमी चलता ही रहेगा।

तम ठहरने वाली, ठहराने वाली, रोकने वाली। रज गति देने वाली, तीव्रता देने वाली। रज शक्ति है, ऊर्जा है प्रवाहमान, जैसे नदी, विद्युत।

यह सारा जगत गतिमान है। अगर चीजें ठहरी ही रहें, तो जगत नहीं हो सकता। उसमें चलना, उसमें बढ़ना।

बच्चा पैदा होता है, बढ़ेगा। मौत अगर तम है, तो जीवन रज है, जन्म रज है। जन्म के क्षण में बच्चे में रज का तत्व ज्यादा होता है, तम का कम। के में तम बढ़ जाता है और रज कम हो जाता है। जिस दिन रज और तम दोनों समान होते हैं, उस दिन व्यक्ति जवान होता है; उस दिन उसमें गति और ठहराव बराबर होते हैं। उस दिन संतुलन होता है। उस दिन एक बैलेंस होता है। इसीलिए जवानी में एक सौंदर्य है।

बच्चे में एक त्वरा होती है, चंचलता होती है, क्योंकि रज तेज होता है, तम कम होता है। तुम उसे कहो कि बैठो शात, तो वह शात नहीं बैठ सकता। को को बहुत अखरता है कि बच्चे शात नहीं बैठ सकते। उनको अखरने का कारण है। क्योंकि वे चंचल नहीं हो सकते।

लेकिन उनको पता नहीं है कि बच्चे के नहीं हैं, इसलिए उनसे ठहरने की आकांक्षा करनी गलत है। अगर उन्हें ठहराना भी हो, तो एक ही उपाय है कि उन्हें काफी दौड़ाओ कि वे थक जाएं। उनका रज थक जाए। उनका रज थक जाए, तो तम ज्यादा हो जाएगा। फिर वे बैठ जाएंगे। उनके विश्राम का एक ही उपाय है कि वे काफी दौड़ लें।

बुढ़े के दौड़ने का एक ही उपाय है कि काफी विश्राम कर ले, तो थोड़ा दौड़ सकता है। उसका तम थक जाए विश्राम कर—करके, तो रज थोड़ा गतिमान हो सकता है।

और जवानी एक संतुलन है। और जब पूरी तरह संतुलित होती है गति की क्षमता और ठहरने की क्षमता, तो सौंदर्य प्रकट होता है। क्योंकि दोनों विपरीत बिलकुल मिल जाते हैं। दोनों में जरा भी भेद नहीं रह जाता। दोनों तनाव एक जगह पर आ जाते हैं। उस तनाव का नाम जवानी है, उस टेंशन का नाम, जहां दोनों विपरीत शक्तियां बराबर मात्रा की हो जाती हैं।

सत्व न तो गति का तत्व है, न ठहरने का। सत्व है संतुलन। सत्य वहीं प्रकट होता है, जहां दोनों तत्व संतुलित हो जाते हैं। सत्व है बैलेंस। इसलिए जब भी आप जीवन की किसी भी दिशा में संतुलन को पाते हैं, तो सत्व प्रकट होता है।

साधु का अर्थ है, जो संतुलन को उपलब्ध हुआ, सात्विक हुआ। सत्व है संयम, विपरीत के बीच संयम। दोनों विपरीत टूट गए। दोनों विपरीत एक—दूसरे को साध दिए। दो विरोधी स्वरों से एक संगीत पैदा हो गया। इस संगीत का नाम है सत्य।

रज और तम शक्ति, दौड़, ठहरने के नियम हैं। और दोनों के बीच जब कोई संतुलन पैदा होता है, तो जो तत्व पैदा होता है, वह है सत्य। इन तीन तत्वों से मिलकर प्रकृति बनी है।

प्रकृति में जहां भी सौंदर्य दिखाई पड़ता है, वहां समझना कि सत्य पैदा हो गया। हम भगवान के मंदिर में मूर्ति पर फूल ले जाकर चढ़ाते हैं। वह फूल सत्व का प्रतीक है। वह फूल सौंदर्य का प्रतीक है। वृक्ष के जीवन में, प्राणों में, फूल तभी खिलता है, जब एक गहन संतुलन पैदा हो जाता है। उस संतुलन को हम परमात्मा के चरणों में चढ़ाते हैं। वह प्रतीक है। ऐसा संतुलन, ऐसा फूल हमारे जीवन में खिले और हम उसे मंदिर में चढ़ा सकें, वह उसकी आकांक्षा है, वह उस दिशा की तरफ हमारा भाव है।

बुद्ध में जो संतुलन दिखाई पड़ता है, वह सत्य है। महान, महानतम व्यक्तियों में भी, पृथ्वी पर जो हम देख सकते हैं ज्यादा से ज्यादा, वह सत्व है।

इन तीनों के पार भी एक अवस्था है, जिसको कृष्ण बाद में बताएंगे, जिसे वे गुणातीत कहते हैं। पर उस अवस्था को देखा नहीं जा सकता। बुद्ध में वह पैदा होती है, कृष्ण में पैदा होती है, पर उसको हम देख नहीं सकते हैं। वह तो हममें ही जब पैदा हो, तभी हम उसका अनुभव कर सकते हैं।

बुद्ध को भी हम ज्यादा से ज्यादा सत्व में देख सकते हैं, क्योंकि आंखें सत्य को देख सकती हैं। आंखें प्रकृति की हैं। वे भी तीन तत्वों से बनी हैं। उनमें भी रज है, तम है और सत्व है। इसलिए जो हमारी आंखों में छिपा है, उसे हम पहचान सकते हैं, ज्यादा से ज्यादा। वह भी सभी लोग नहीं पहचान सकेंगे।

बुद्ध के पास अगर कोई तामसी जाएगा, तो बुद्ध को बिलकुल नहीं पहचान पाएगा। वह समझेगा कि कोई ढोंगी है, वह समझेगा कि लोगों को धोखा दे रहा है। इससे सावधान रहना, कहीं रात सो गए, जेब न काट ले! वह बुद्ध के पास भी अपनी जेब पर हाथ रखेगा कि क्या भरोसा! देखने में तो भोला लगता है, लेकिन भोलापन हमेशा खतरनाक होता है। पता नहीं बनकर भोला बैठा हो यह आदमी। कोई तरकीब हो। कोई इसके पीछे हिसाब जरूर होगा, नहीं तो कोई क्यों भोला बैठेगा!

बुद्ध के पास अगर कोई रज से भरा हुआ, भाग—दौड़ से भरा हुआ, चंचल व्यक्ति पहुंचेगा, तो वह मुर्दा समझेगा बुद्ध को। कि यह क्या जीवन है? यह भी कोई जीवन है! पलायनवादी, एस्केपिस्ट है यह आदमी। यह भाग गया। इसमें कुछ कमी है। यह लड़ न सका। कायर है, कमजोर है।

लोगों ने ऐसा कहा है। कहने वाले का कारण है। क्योंकि वह चंचलता में जीवन देखता है, भाग—दौड़ में जीवन देखता है। ऊर्जा नाचती हो, वहां जीवन देखता है।

यहां बुद्ध में सब शात है। यहां जैसे कोई तरंग भी नहीं हिलती। तो वह कहेगा, यह भी कोई जीवन है! यह तो मरने का एक ढंग हुआ। यह आदमी तो मर चुका। मैदान में आओ जिंदगी के। वहा तुम्हारा पता चलेगा। भगोड़े हो।

बुद्ध को भी वही पहचान पाएगा, जिसमें सत्व का थोड़ा उदय हुआ हो। क्योंकि हम वही पहचान सकते हैं, जो हमारे भीतर है। अन्यथा को पहचानने का कोई उपाय नहीं है। वही देख सकते हैं, जो हमारी आंख में भी आ गया हो। वही हमारे हृदय को भी छू सकता है, जो हमारे हृदय में भी कंपित हो रहा हो। समान समान से मिल जाते हैं। समान समान को पहचान लेते हैं।

तो सात्विक व्यक्ति ही बुद्ध को पहचान पाएगा कि कौन—सी महान घटना घटी है। इस व्यक्ति के भीतर कौन—सा फूल खिला है। इसलिए बुद्ध के पास वे ही लोग इकट्ठे हो पाएंगे, जो सात्विक हैं, जो सरल हैं, जो संतुलित हैं, जो संयमी हैं, और जिन्होंने एक भीतरी हारमनी, एक लयबद्धता को पा लिया है। बहुत लोग पास से गुजरेंगे, उन बहुतों में से बहुत थोड़े लोग ही बुद्ध के पास रुक पाएंगे।

सांख्य ने इन तीन तत्वों को खोजा। ये तत्व बड़े अदभुत हैं। और इन तीन तत्वों के आधार पर मनुष्य का, प्रकृति का सारा व्यवहार समझा जा सकता है।

फिर आधुनिक विज्ञान ने भी तीन तत्वों की खोज की है, और परमाणु के विस्फोट पर उनको पता चला कि परमाणु भी तीन तत्वों से ही निर्मित है। एक को वे कहते हैं इलेक्ट्रान, एक को पाजिट्रान, एक को न्यूट्रान। और उन तीनों के भी लक्षण करीब—करीब वही हैं, जो सत्व, रज और तम के हैं। उनमें से एक स्थिति को पकड़ने वाला है, एक गति देने वाला है, और एक संतुलन है।

निश्चित ही, कहीं गहराई में विज्ञान भी उसी तत्व को छू रहा है, जिसको सांख्यों ने छुआ था, जिसकी कृष्ण इन सूत्रों में बात कर रहे हैं। और ये तीन तत्व वही हैं, जिनको हिंदू मिथ में हमने ब्रह्मा, विष्णु, महेश कहा है। तीनों के लक्षण भी यही हैं उनके। ब्रह्मा पैदा करता है, वह रज है। विष्णु सम्हालते हैं, संतुलन देते हैं, वे सत्व हैं। शिव तम हैं; विनष्ट करते हैं। सब चीजें शात हो जाती हैं वापस।

इसलिए अक्सर तामसी जो लोग हैं, शिव की पूजा करते दिखाई पड़ते हैं। शिव उनको रसपूर्ण मालूम होते हैं। शिव विध्वंसक हैं, वे मृत्यु के प्रतीक हैं। इसलिए शिव के पीछे अगर चरस, गांजा, अफीम तेजी से चल पड़ा, उसका कारण है। क्योंकि ये सभी तत्व मृत्यु के तत्व हैं। सभी विध्वंसक हैं। सभी आपको नष्ट कर देंगे। इनके विनाश में जो रस आ सकता है, वह तामसी वृत्ति को आ सकता है।

पश्चिम में एल .एस डी., मेस्केलीन, मारिजुआना तेज गति पर है। और पश्चिम के ये भक्त—मारिजुआना के भक्त, एल एस डी के भक्त—उनके मन में भी शिव के प्रति बड़ा प्रेम पैदा हो रहा है। हिप्पी आता है, तो काशी जाता है। काशी शिव की नगरी है। वहा जाकर वह शिव के दर्शन करता है। वह नेपाल जाता है। क्योंकि वहा शिव के बड़े प्राचीन मंदिर हैं, शिव— भक्तों की बड़ी पुरानी धारा है। अमेरिका की हिप्पी बस्तियों में भी बम भोले, जय भोले की आवाज सुनाई पड़ने लगी है।

जहर मौत का प्रतीक है। और जहर आपके भीतर चीजों को ठंडा कर देता है, गति छीन लेता है। इसलिए नशे का इतना रस है। क्योंकि आप इतने तनाव में रहते हैं, इतनी भाग—दौड़ में रहते हैं, कि थोड़ी शराब पी लेते हैं, तो थोड़ा तनाव कम हो जाता है, भाग—दौड़ कम हो जाती है। पड़ जाते हैं, बेहोशी में पड़ जाते हैं, लेकिन रुक जाते हैं।

सभी मादक द्रव्य तमस पैदा करते हैं। वे आपके भीतर दौड़ को रोक देते हैं। इसलिए बहुत दौड़ने वाले लोग शराब से नहीं बच सकते। क्योंकि उनकी दौड़ इतनी ज्यादा है कि उनको इस दौड़ को रोकने के लिए किसी न किसी तरह की बेहोशी चाहिए। वे बेहोश होंगे, तभी रुक पाएंगे, नहीं तो रुक नहीं सकते। रात नींद में भी दौड़ते रहेंगे।

पश्चिम में शराब का मूल्य बढ़ता चला गया है, क्योंकि पश्चिम दौड़ रहा है, उसने रज पर भरोसा कर लिया है। रज पर अगर आप भरोसा करेंगे, तो तम को भी आपको साथ में लाना पड़ेगा। नहीं तो रज घातक हो जाएगा, आप विक्षिप्त हो जाएंगे।

पश्चिम में अधिकतम लोग पागल हो रहे हैं, वह रज का परिणाम है। ज्यादा दौड़ेंगे, तो विक्षिप्त हो जाएंगे। ठहरना भी उतना ही जरूरी है। और जो व्यक्ति जानता है—जैसा ताओ ने कहा है, कहां ठहर जाना—जो जानता है, कहां ठहर जाना, वह कभी संकट में नहीं पड़ता।

दौड़ना भी जरूरी है, ठहरना भी जरूरी है। दौड़ने और ठहरने में जो संतुलन को पैदा कर लेता है, वह सत्व को उपलब्ध हो जाता है, वह साधु है।

साधुता का अर्थ है, भीतर एक लयबद्धता पैदा हो जाए। न तो दौड़ हो और न मूर्च्छा हो। मूर्च्छा हो तो तम होता है; दौड़ हो तो पागलपन होता है। दौड़ और रुकने की क्षमता दोनों मिल जाएं और एक तीसरा तत्व पैदा हो जाए। उस तत्व को कृष्ण ने सत्व, सांख्य ने सत्व कहा है।

यह तत्व भी आखिरी नहीं है। इस संसार में श्रेष्ठतम है। इससे ही कोई मुक्त नहीं हो जाएगा, लेकिन इससे मुक्ति की संभावना बनती है।

ध्यान रहे, कोई सात्विक होकर मुक्त नहीं हो जाएगा। सात्विक होकर भी संसार का ही हिस्सा रहेगा। इसलिए साधु मुक्त नहीं होता। संत को हम मुक्त कहते हैं, साधु को नहीं। लेकिन साधु में संत होने की क्षमता हो जाती है। चाहे तो साधु संत हो सकता है।

साधुता में सिर्फ पूर्व— भूमिका है। संतुलन पैदा हो गया है। अब चाहे तो समाधि भी आ सकती है। लेकिन संतुलन ही समाधि नहीं है। ये तीन तत्व तो प्रकृति के ही हैं। इसमें तम मूर्च्छा में ले जाता है। इसमें रज गति और विकास, त्वरा में ले जाता है। इसमें सत्य शाति में ले जाता है। लेकिन ये तीनों तत्व जगत के भीतर हैं।

सत्य के भी पार जाना जरूरी है। तब गुणातीत अवस्था पैदा होती है, जो तीनों गुणों के पार है। और जो तीनों गुणों के पार है, वह प्रकृति के पार है। वही परमात्मा है। तीन गुण प्रकृति के; और तीनों गुणों के जो पार निकल जाए, वह परमात्मा है, वह पुरुष है, वह मुक्त की दशा है।

लेकिन सत्व द्वार बन जाता है। पर अगर आप नासमझी करें, तो सत्व ही बाधा भी बन सकता है। क्योंकि अगर साधुता का अभिमान आ जाए, जो कि आ सकता है। शांति का अभिमान आ जाए, जो कि आ सकता है। सत्व में ज्ञान का अभिमान आ जाए, जो कि आ सकता है। सात्विक होने की अहंमन्यता आ जाए, जो कि बड़ी सरल है।

इसलिए साधु से ज्यादा अहंकारी आदमी दूसरे नहीं पाए जाते। उनके पास अहंकार करने को कुछ है भी। और जब कुछ अहंकार करने को हो, तब बड़ी कठिनाई हो जाती है। संसार में तो ऐसे लोग भी अहंकार में पड़े हैं, जिनके पास अहंकार करने को कुछ भी नहीं है। उनका अहंकार जस्टीफाइड भी नहीं है। वे भी अहंकार कर रहे हैं। लेकिन साधु का अहंकार न्यायसंगत भी मालूम पड़ सकता है। उसके पीछे तर्क है, आधार भी है। वह शात है। वह सत्व में ठहरा हुआ है। वह एक तरह का सुख पा रहा है।

सत्य एक सुख देता है, जिसका अंतिम दर्जा स्वर्ग है। सत्व की जो आखिरी दशा है, वह स्वर्ग है, मोक्ष नहीं, स्वर्ग। सुख की बड़ी गहन क्षमता है।

उसके पास कुछ है। और जब हम ना—कुछ के अभिमानी हो जाते हैं, तो जिनके पास कुछ है, उनको अहंकार पकड़ ले, इसमें आश्चर्य नहीं है। वही खतरा है। उनको अहंकार से छुड़ाना बहुत मुश्किल है। संसारी को अहंकार से छुड़ाना

बहुत आसान है, साधु को अहंकार से छुड़ाना बहुत मुश्किल है। क्योंकि उसको लगता है कि अहंकार का कुछ कारण है। वह ऐसे ही अहंकार नहीं कर रहा है, कुछ वजह है। वह वजह बाधा बन जाती है।

अब हम इस सूत्र को देखें।

हे अर्जुन, नाना प्रकार की सब योनियों में जितनी मूर्तियां, जितने शरीर, जितने रूप उत्पन्न होते हैं, उन सबकी त्रिगुणमयी माया को तो गर्भ धारण करने वाली माता समझो। यह जो प्रकृति है तीन गुणों से भरी हुई, इसे तुम मां समझो, गर्भ समझो। और मैं बीज को स्थापन करने वाला पिता हूं।

तो शरीर और रूप तो इन तीन गुणों से मिलता है। मन, शरीर, रूप इन तीन गुणों से मिलता है। चेतना परमात्मा से आती, इन तीनों गुणों के पार से आती है। चेतना इन तीनों गुणों के भिन्न जगत से आती है। और इन तीन के भीतर आवास करती है।

लेकिन इन तीनों में से किसी न किसी में जकड़ जाने का डर है। या तो आलस्य में उलझ जाती है, तम में पड़ जाती है। या तो विक्षिप्तता में, चंचलता में, दौड़ में पड जाती है। और या फिर सत्व के अहंकार में पड़ जाती है। और इन तीनों में से किसी एक से भी जुड़ जाए, तो अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं पहचान पाती, क्योंकि वास्तविक स्वरूप तीनों के पार से आता है।

यह इसका अर्थ है। तीन गुण तो मां है, और मैं बीज को स्थापन करने वाला पिता हूं। मैं से अर्थ है, ब्रह्म। मैं से अर्थ है, इस जगत की परम चेतना।

हे अर्जुन, सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण, ऐसे यह प्रकृति से उत्पन्न हुए तीनों गुण इस अविनाशी जीवात्मा को शरीर में बांधते हैं। ये तीन जीवात्मा के लिए बंधन निर्मित करते हैं। इन तीनों के बिना जीवात्मा शरीर में नहीं हो सकती। तम चाहिए, जो ठहराव की शक्ति दे। रज चाहिए, जो गति दे और जीवन दे। सत्व चाहिए, जो संतुलन दे, सुख दे। अगर इन तीनों में से एक भी कम है, तो आप टिक न पाएंगे।

अगर सुख बिलकुल न रह जाए, तो आप आत्महत्या कर लेते। क्यों? किसलिए जीएं? सुख की थोड़ी झलक तो चाहिए। असाधु में भी थोड़ी—सी तो सुख की झलक चाहिए ही। आज नहीं कल, कल नहीं परसों, कहीं सुख मिलेगा, इसका थोड़ा आसरा चाहिए। उतना भी काफी है बांधने के लिए। अगर सुख के सब सेतु टूट जाएं, साफ हो जाए, कोई सुख नहीं, आप इसी क्षण मर जाएंगे। ये तीनों चाहिए। ये तीन शरीर को बांधते हैं।

हे निष्पाप, उन तीनों गुणों में प्रकाश करने वाला निर्विकार सत्वगुण है। इन तीनों गुणों में सबसे ज्यादा प्रकाशित, सबसे ज्यादा निर्मल, निर्विकार सत्वगुण है। निर्मल होने के कारण सुख की आसक्ति से और ज्ञान की आसक्ति से अर्थात ज्ञान के अभिमान से बांधता है।

चूंकि सत्वगुण निर्मल है, शात है, शुद्ध है, सुख देता है, ज्ञान भी देता है। क्योंकि एक क्लैरिटी, एक स्वच्छता आंखों में आ जाती है, देखने की एक क्षमता आ जाती है, चीजों को आर—पार पहचानने की कला आ जाती है। सुख भी देता है भीतर और साथ में एक जानकारी, जीवन में प्रवेश करने की, ज्ञान की क्षमता देता है। पर इन दोनों से अभिमान पैदा होता है।

ज्ञान से भी अभिमान पैदा होता है कि मैं जानता हूं। सुख से भी अभिमान पैदा होता है कि मैं सुखी हूं। और वह जो मैं का भाव इन दोनों से पैदा हो जाता है, तो सत्वगुण भी फिर संसार में ही रखने का कारण बनता है।

जिस दिन ये दोनों बातें भी छोड़ दी जाती हैं, न तो कोई सुख से बंधता है और न कोई ज्ञान से.।

इसे थोड़ा हम समझ लें।

हम तो दुख से भी बंधे हुए हैं। दुख को भी कहते हैं, मेरा दुख, मेरा सिरदर्द, मेरी बीमारी। उसके साथ भी हम मैं को जोड़ते हैं। अज्ञान के साथ भी हम मैं को जोड़ते हैं, तो ज्ञान के साथ तो हम मैं को जोड़ेंगे ही। सुख के साथ तो हम कैसे बचेंगे बिना जोड़े!

इसलिए अगर स्वर्ग के देवता मुक्त होने से वंचित रह जाते हैं, तो उसका कारण है। सत्व के साथ बंधे हुए लोग हैं। सुख बहुत है। और जहां सुख ज्यादा हो, वहा तादात्म्य तोड्ने का मन भी पैदा नहीं होता। दुख से तो तदात्मय तोड्ने का मन भी पैदा होता है कि कोई समझा दे कि दुख अलग है और मैं अलग हूं। कोई बता दे कि अज्ञान अलग है और मैं अलग हूं इसकी थोड़ी आकांक्षा होती है। क्योंकि दुख कोई भी चाहता नहीं है, अज्ञान कोई भी चाहता नहीं है।

लेकिन जब आप सुख में हों और कोई बताए कि तुम अलग और सुख अलग, तो आप उसको मित्र न समझेंगे, शत्रु समझेंगे। उससे कहेंगे, जाओ, कहीं और समझाओ। कोई आपसे कहे, तुम्हारा ज्ञान अलग, तुम अलग, यह ज्ञान कचरा है। तुम ज्ञान नहीं हो। यह सुख व्यर्थ है। तुम सुख नहीं हो, तुम दूर अलग हो।

इसलिए संतों ने कहा है, दुख अभिशाप नहीं, वरदान है। क्योंकि दुख में दुख से टूटने की कामना पैदा होती है।

सूफी फकीर जुन्नैद बीमार रहता था। उसके भक्तों ने उससे कहा कि तुम एक दफा प्रार्थना करो परमात्मा से, तो तुम्हारी सब बीमारी दूर हो जाए।

जुन्नैद हंसने लगा। कहा, प्रार्थना तो हम करते हैं। उन्होंने कहा, अगर तुम प्रार्थना करते हो, तो बीमारी दूर क्यों नहीं होती? उसने कहा, प्रार्थना ही हम यह करते हैं कि बीमारी बनी रहे। क्योंकि मुझे अच्छी तरह याद है, जब भी बीमारी मिट जाती है, मैं परमात्मा को भूल जाता हूं। यह उसकी बड़ी कृपा है। बीमारी बनी रहती है, तो मैं सोचता रहता हूं मैं शरीर नहीं हूं। यह बीमारी शरीर को है, मैं अलग हूं। और जैसे ही बीमारी हटती है, सुख हो जाता है, मैं भूल ही जाता हूं कि यह शरीर मैं नहीं हूं।

दुख भी साधना बन जाता है। दुख जब साधना बन जाता है, तो उसे हमने तपश्चर्या कहा है। तपश्चर्या का मतलब यह है कि दुख से हम अपने को अलग कर रहे हैं। इसलिए साधक सामान्य दुखों से अपने को तोड़ता ही है, अगर जरूरत पड़े तो विशेष दुख भी अपने लिए पैदा कर लेता है, जिनकी वजह से वह अपने को तोड़ सके।

आपने देखा है, सुना है, कोई साधु कीटों पर लेटा हुआ है। कोई साधु दिन—रात आग को जलाकर बैठा रहता है। भयंकर गर्मी है और वह आग को जलाकर बैठा है। पसीने—पसीने होता रहता है। शरीर सूखता है। इसमें वस्तुत: जो जानता है रहस्य को.....।

जरूरी नहीं कि ऐसा करने वाले सभी जानते हों। उसमें कई तरह के लोग हैं। उसमें कई तो सिर्फ दुखवादी हैं, जो खुद को सताने में मजा ले रहे हैं। उसमें कई सिर्फ एक्झिबीशनिस्ट हैं, प्रदर्शनवादी हैं, जो दूसरों को अपना दुख दिखाकर मजा ले रहे हैं। क्योंकि दूसरे उनको पूजते हैं सिर्फ इसीलिए कि वे काटो पर लेटे हुए हैं।

लेकिन इसमें से कुछ हैं, जो इस तपश्चर्या को कर रहे हैं। उनकी तपश्चर्या क्या है? उनकी तपश्चर्या यह है कि सारे शरीर पर कांटे चुभ रहे हैं, तब वे भीतर अपने को इस स्मृति से भर रहे हैं कि मैं शरीर नहीं हूं। ये कांटे मुझे नहीं छू रहे हैं। ये काटे शरीर को छू रहे हैं। और वे तब तक काटो पर लेटे रहेंगे, जब तक कि काटे बिलकुल ही विस्मृत न हो जाएं। शरीर को ही छुए, उनको जरा भी न चुभे। जब चेतना काटो से बिलकुल अलग हो जाएगी, तभी वे इस काटो की सेज से उठेंगे।

तो साधक अपने आस—पास आयोजित दुख भी कर सकता है, जिससे अपने को तोड़े।

सुख की आसक्ति से और ज्ञान की आसक्ति से! सत्य भी जान के अभिमान से बांधता है।

तम और रज तो बांधते ही हैं, सत्व भी बांधता है। बुरा तो बांधता ही है, जिसे हम अच्छा कहते हैं, वह भी बांधता है। शुभ भी बांधता है। यहां जंजीरें सिर्फ लोहे की ही नहीं हैं, सोने की भी हैं। कुछ लोहे की जंजीरों से बंधते हैं, कुछ सोने की जंजीरों से बंध जाते हैं। के लेकिन बंधते दोनों हैं। और जबतक बंधन है, तब तक संसा रहे।

इन तीन गुणों के बंधन के पार जो उठ जाए, वही व्यक्ति उस परम ज्ञान को अनुभव कर पाता है, कृष्ण कह रहे हैं, जिसे मैं तुझे फिर से कहूंगा।

गीता दर्शन–(भाग–7)
अध्याय—14 (प्रवचन—तीसरा) — हे निष्पाप अर्जुन

सूत्र:
रजो रागत्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम्।
तन्न्िबध्नति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम्।।7।।
तमस्थ्यानजं विद्धि मोहन सर्वदेहिनाम्।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत।।8।।
सत्यं सुखे संजयीत रजः कर्मणि भारत।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयन्वत।।9।।
हे अर्जुन, रागरूय रजोगुण को कामना और आसक्ति से उत्पन्न हुआ जान। वह हम जीवात्मा को कर्मों की और उनके फल की आसक्ति से बांधता है।

और हे अर्जुन, सर्व देहाभिमानियों के मोहने वाले तमोगुण को अज्ञान से उत्पन्न हुआ जान। वह हस जीवात्मा को प्रमाद, आलस्य और निद्रा के द्वारा बांधता है।

क्योंकि हे अर्जुन, सत्वगुण सुख में लगाता है और रजोगुण कर्म में लगाता है तथा तमोगुण तो ज्ञान को आच्छादन करके अर्थात ढंककर प्रमाद में भी लगाता है।

सूत्र के पहले थोड़े प्रश्न।

पहला प्रश्न :
परम जीवन और परम आनंद की बात जो आप बार—बार करते हैं, उसका तो कोई अनुभव मुझे हुआ नहीं है, लेकिन इस मार्ग पर चलने में भी आनंद आता है। तो क्या मंजिल तक पहुंचने के पहले यात्रा में भी आनंद हो सकता है?
हमारी आदत है सभी चीजों को बांटकर देखने की, इसलिए हम मार्ग और मंजिल को भी बांट लेते हैं। बिना बांटे हमारा मन मानता नहीं। मन सभी चीजों को तोड़ता है। और वस्तुत: कुछ भी टूटा हुआ नहीं है। मार्ग का ही अंतिम हिस्सा मंजिल है। और मंजिल का पहला चरण मार्ग है। ऐसी कोई जगह नहीं, जहां मार्ग समाप्त होता हो और मंजिल शुरू होती हो।

मार्ग और मंजिल दो नहीं हैं, वे एक ही हैं। अगर वे दो होते, तो मार्ग से चलकर आप मंजिल तक पहुंचते कैसे? अगर उनके बीच रत्तीभर भी फासला होता, तो आप मार्ग पर ही रह जाते, मंजिल पर कैसे पहुंचते?

मार्ग मंजिल से जुड़ा है। इसलिए मार्ग मंजिल में ले जाता है। साधन और साध्य भिन्न नहीं हैं। और जो उन्हें भिन्न मानता है, बड़ी भूल करता है। क्योंकि जैसे ही हमें यह खयाल आ गया कि साधन और साध्य भिन्न हैं, मार्ग और मंजिल अलग हैं, वैसे ही हम मंजिल की तो चिंता करते हैं और मार्ग से बचने की कोशिश शुरू हो जाती है। फिर हमारा मन कहता है, अगर बिना मार्ग के भी मंजिल मिलती हो, तो हम मार्ग को छोड़ दें और मंजिल पर पहुंच जाएं। शार्टकट की खोज बेईमानी का हिस्सा है।

फिर हम सोचते हैं, मार्ग जितना कम हो जाए; क्योंकि मार्ग कोई मंजिल तो नहीं है। और किसी चालाकी से, किसी तरकीब से अगर हम बिना मार्ग पर चले मंजिल तक पहुंच जाएं, तो हम जरूर पहुंचना चाहेंगे। हमारी दृष्टि फिर भविष्य में हो जाती है। और वर्तमान से जो बचता है, उसका भविष्य बिलकुल अंधकारपूर्ण है। क्योंकि सभी भविष्य वर्तमान से ही पैदा होगा; कल आज से पैदा होगा।

मार्ग तो आज है; मंजिल कल है। और जो आज से बचेगा, वह कल से वंचित रह जाएगा। क्योंकि कल जो भी होने वाला है, वह आज से ही जन्मेगा; आज के ही गर्भ में छिपा है।

ऐसा समझ लें कि मार्ग है गर्भ और मंजिल है जन्म। बांटें मत। और तब यह बात समझ में आ जाएगी।

परम आनंद तो मंजिल पर मिलेगा। मंजिल का मतलब है, मार्ग जहां पूरा हो जाएगा, जहां मार्ग पूर्णता पर पहुंच जाएगा। जहां जाने के लिए और कोई आगे जगह न रहेगी, परम आनंद तो वहां मिलेगा। लेकिन आनंद की पहली घटना तो पहले कदम पर ही घट जाएगी। मार्ग पर चलने का खयाल भी आनंद से भर देगा। चलना तो दूर, सिर्फ यह संकल्प कि मैं मार्ग पर चलूंगा, खोजूंगा, इस संकल्प से भी मन एक नई झलक आनंद की ले लेगा।

एक कदम भी जो रखेगा, एक कदम के योग्य मंजिल तो मिल ही गई। समझें कि अगर मंजिल हजार कदमों पर मिलेगी, तो एक बटा हजार मंजिल तो पहले कदम पर ही मिल गई। उतने आनंद के हम हकदार हो गए।

और ध्यान रहे, यह आनंद ऐसा नहीं है कुछ जो अंत में मिलेगा फल की तरह, यह प्रतिपल बढ़ेगा; यह जीवन है। प्रतिपल मिलेगा और प्रतिपल बढ़ता रहेगा।

मार्ग पर जो चलता है, वह मंजिल पर पहुंचने ही लगा। मार्ग पर जो खड़ा हो गया, उसने दूर सही, लेकिन मंजिल पर हाथ रख लिया। झलकें आनी शुरू हो जाएंगी। निर्णय लेते ही चलने का, पहला कदम उठाते ही मन हल्का होने लगेगा, शात होने लगेगा, प्रसन्न होने लगेगा।

जैसे बगीचा कितनी ही दूर हो, हम उसकी तरफ चलने लगें, ठंडी हवाएं आनी शुरू हो जाएंगी। जैसे—जैसे हम करीब पहुंचेंगे, फूलों की सुगंध भी हवाओं में आने लगेगी। शीतलता बढ़ेगी। हवा ताजी होने लगेगी। मन प्रफुल्लित और नाचने को होने लगेगा। एक वसंत हमारे भीतर भी खिलने लगेगा। ठीक ऐसा ही होगा।

और ध्यान रखें, मंजिल की फिक्र छोड़ दें। मार्ग की ही फिक्र करें। जिसने मार्ग को सम्हाल लिया, उसे मंजिल तो मिल ही जाती है। मंजिल को बिलकुल भी भूल जाएं, तो कुछ हर्ज नहीं। मार्ग को पूरा सम्हाल लें। क्योंकि जितना मन आपका मंजिल में लगता है, उतना ही मन मार्ग में लगने से छूट जाता है।

सारा मन मार्ग पर लगा दें। जिस क्षण आपका सारा मन मार्ग पर लग जाएगा, उसी क्षण मार्ग मंजिल हो जाता है। यह दूरी कोई स्थान की दूरी नहीं है। यह दूरी इंटेंसिटी की, तीव्रता की दूरी है। अगर पूरा मन मेरा इसी क्षण मार्ग पर लग जाए, तो इसी क्षण मंजिल घट जाएगी। जितना कम मन लगता है, उतनी मंजिल दूर है। जितना मेरा मन अधूरा—अधूरा है, उतना ही ज्यादा फासला है।

और फासला कोई चलकर पूरा होने वाला नहीं है। संकल्प से ही पूरा हो जाता है। चलना तो सिर्फ संकल्प को बढ़ाने का बहाना है। जो जानते हैं, वे बिना इंचभर चले मंजिल पर पहुंच जाते हैं। जो नहीं जानते, वे बहुत चलते हैं, बहुत भटकते हैं, और कहीं भी नहीं पहुंचते हैं।

ध्यान रखें, मंजिल को तो छोड़ दें। मंजिल की तो बात मत उठाएं। क्योंकि मंजिल की बात उठाने का मतलब है, फल की इच्छा हो गई। मंजिल का विचार करने का मतलब है, हम छलांग लगाने

लगे आगे; आज को भूलने लगे, कल को याद करने लगे। और श्रम करना है आज।

आज में जीएं, अभी और यहीं। और जो भी घट सकता है, वह सब घट जाएगा। इसी क्षण में घट सकता है। आप पूरी तीव्रता से, अपने पूरे प्राणों से, सारी श्वासों को समर्पित कर के साधना में लग जाएं, चलने में लग जाएं।

और उचित ही है कि आनंद अभी मिल रहा हो, उसे पूरा जीएं। उसका पूरा रस निचोड़ लें। क्योंकि ध्यान रहे, जितना आप आनंद को लेने में समर्थ हो जाएंगे, उतने ही ज्यादा आनंद के द्वार आपके लिए खुलने लगेंगे।

प्रकृति की गहरी व्यवस्था है। आपको वही मिल सकता है, जिसे आप झेल सकते हैं। आप यह मत सोचना कि परम आनंद आपको मिल जाए, तो आप झेल लेंगे। अगर आप आनंद के आदी नहीं हो गए हैं, तो परम आनंद घातक हो जाएगा, मृत्यु हो जाएगी। उतने बड़े विस्फोट को आप न झेल पाएंगे।

जैसे कोई अंधेरे से अचानक सूर्य के सामने आ जाए, तो आंखें बंद हो जाएंगी, चौंधिया जाएंगी। अंधकार ही हो जाएगा। आंखें सूर्य को देख ही न पाएंगी। सूर्य को देखने के लिए आंखों को धीरे— धीरे तैयार करना होगा। मिट्टी का दीया भी सूरज का ही हिस्सा है। उसे देखने से तैयारी करें। नहीं तो आंखें अंधी हो जाती हैं। तो प्रकृति की व्यवस्था है। उसी को मिलता है, जो झेल सकता है। साधना सिर्फ पाने की ही खोज नहीं है, झेलने की तैयारी भी है। अगर आप पर एकदम आकाश टूट पड़े, तो आप मिट जाएंगे, विक्षिप्त हो जाएंगे। आप फिर लौटकर भूलकर भी उस रास्ते पर नहीं जाएंगे। आप आनंद चाहते हैं, इससे आप यह मत सोचना कि आप आनंद को झेलने के लिए तैयार भी हैं।

छोटा—सा दुख कठिनाई देता है, छोटा—सा सुख कठिनाई देता है। छोटा—सा सुख आ जाए, तो रात नींद नहीं आती। सुख उत्तेजित कर देता है, दुख उत्तेजित कर देता है। आनंद तो बहुत विचलित कर देगा। रत्ती—रत्ती उसका अभ्यास करना होगा। बूंद—बूंद पीकर तैयार होना पडेगा। और बूंद—बूंद पीकर कोई तैयार हो—चाहे दुख भी बूंद—बूंद पीकर कोई तैयार हो, तो नरक से भी गुजर सकता है बिना विचलित हुए।

आपने सुना होगा, पुराने दिनों में भारत के सम्राट विषकन्याएं तैयार करते थे। सुंदर युवतियां, बचपन से ही रोज थोडा— थोड़ा जहर पिलाकर तैयार की जाती थीं। जहर की मात्रा इतनी कम होती थी रोज कि युवती मर नहीं पाती थी। और धीरे—धीरे जहर उसके रोएं—रोएं, रग—रग में प्रवेश कर जाता था। जवान होते—होते, सोलह—अठारह वर्ष की होते—होते उसका पूरा खून जहर हो जाता था।

तब ऐसी सुंदर युवतियों को शत्रुओं के पास भेज दिया जाता था। एक चुंबन जो भी उनका लेगा, वह तत्क्षण मर जाएगा। उनका चुंबन विषाक्त हो जाता था। उनसे जो संभोग करेगा, जिंदा नहीं बचेगा; संभोग से जिंदा नहीं लौटेगा। उनका पूरा शरीर जहर था। इस तरह की कन्याओं को विषकन्याएं कहा गया।

लेकिन बड़े आश्चर्य की बात है कि जिनके चुंबन से दूसरा मर जाएगा, वे जिंदा हैं! धीरे— धीरे एक—एक बूंद जहर की देकर उन्हें तैयार किया गया है। उन्हें सांप काट ले, तो सांप मर जाएगा। उन्हें बेहोश करने का कोई उपाय नहीं है। कोई शराब उन्हें बेहोश न कर सकेगी।

बूंद—बूंद दुख की आप झेलते रहें, तो आप नरक से भी बिना विचलित हुए गुजर जाएंगे। तपश्चर्या का यही अर्थ है, दुख को झेलने की तैयारी। लेकिन जो दुख के संबंध में सच है, वही सुख के संबंध में भी सच है। वह भी बूंद—बूंद ही झेला जा सकता है। और आनंद तो बड़ी घटना है। वह महासुख है।

अगर मंजिल आपको मिल भी जाए, तो पहली तो बात आप उसे पहचान न सकेंगे। आपकी आंखें बहुत छोटी हैं और मंजिल बहुत बड़ी होगी। उसे आपकी आंखें नहीं देख पाएंगी। मंजिल सामने भी हो—सामने है ही—तो भी आप पहचान न पाएंगे। क्योंकि उसको पहचानने के लिए आंखों का एक प्रशिक्षण चाहिए। और दुर्भाग्य से अगर मंजिल आपको मिल भी जाए, आप पहचान भी लें, तो का वरदान सिद्ध नहीं होगी, अभिशाप सिद्ध होगी। क्योंकि उतना आनंद आप झेल न पाएंगे। वह आनंद महाघातक होगा।

तो साधना बहुत—सी तैयारियों का नाम है। मंजिल तक पहुंचना है। मंजिल को देख सकें, इसके लिए आंखों को प्रशिक्षित करना है। मंजिल को अनुभव कर सकें, इसलिए आनंद की एक—एक लहर को धीरे—धीरे आत्मसात

करना है। मंजिल को झेल सकें, वह महाआनद जब बरसे तब आप विक्षिप्त न हो जाएं, होश में रहें, मूर्च्छित न हो जाएं, गिर न पड़े, मिट न जाएं, उसके लिए भी हृदय के पात्र को तैयार करना जरूरी है।

मंजिल को छोड़ ही दें। मंजिल की बात ही मत उठाएं। मार्ग की फिक्र करें। और एक—एक इंच मार्ग को मंजिल ही समझकर चलें। बहुत आनंद मिलेगा। बहुत आनंद बढ़ेगा। और एक दिन अचानक किसी भी क्षण वह घटना घट सकती है। जिस क्षण भी टयूनिंग पूरी हो जाएगी, जिस क्षण भी हृदय की वीणा बजने को बिलकुल तैयार होगी, उसी क्षण मंजिल सामने होगी।

और तब आप हंसेंगे, क्योंकि तब आप यह भी पाएंगे कि यह मंजिल सदा से सामने थी। मैं ही तैयार नहीं था, मंजिल सदा तैयार थी। मैं द्वार पर ही खड़ा था, शायद पीठ किए था। शायद मुड़ने भर की जरूरत थी। थोड़ा—सा ध्यान मोडने की जरूरत थी। और जिसे मैं तलाश रहा था, वह बिलकुल पास था।

उपनिषद कहते हैं, वह परम सत्य दूर से दूर और पास से भी पास है। दूर से दूर, आपके कारण; पास से पास, उसके कारण। आप जैसे हैं, उस हिसाब से बहुत दूर। वह जैसा है, उस हिसाब से बिलकुल पास।

परमात्मा की तरफ हमें चलना पड़ता है, इसलिए नहीं कि परमात्मा दूर है। परमात्मा की तरफ हमें चलना पड़ता है, क्योंकि हम अयोग्य हैं। हमारी अयोग्यता ही उसकी दूरी बन गई है।

उचित है, मार्ग पर आनंद मिलता हो; आह्लादित हों, अनुगृहीत अनुभव करें। गहरे अहोभाव से भरें और उस आनंद को भोगें। जैसे—जैसे भोगेंगे, वैसे—वैसे आपकी भोगने की क्षमता बढ़ती जाएगी। परमात्मा परम भोग है। उसके लिए तैयार होना होगा। उसके लिए विराट आकाश जैसा हृदय चाहिए। विराट को हम बुलाते हैं क्षुद्र में, यह असंभव है। जिसे हम बुलाते हैं, उसके योग्य हमारे पास स्थान भी चाहिए।

परमात्मा को बहुत लोग पुकारते हैं, बिना इसकी फिक्र किए कि कहां है वह घर, जहां उसे ठहराएंगे? कहां है वह आसन, जहां उसे बिठाएंगे? आतिथ्य का सामान कहा है? किन फूलों से करेंगे उसकी पूजा? वह मस्तक कहां, जो उसके चरणों में रखेंगे? और अचानक वह सामने आ जाए, तो बड़ी बिगचन हो जाएगी, बड़ी अड़चन हो जाएगी। हम पागल होकर दौड़ेंगे, कुछ भी न मिलेगा कि क्या करें, क्या न करें। शायद हम ऐसी अड़चन में न पड़े, इसलिए परमात्मा तब तक प्रतीक्षा करता है।

दूसरा प्रश्न :
कृष्ण अर्जुन को पिछले तेरह अध्यायों में समझा चुके हैं। फिर भी अर्जुन के मन में प्रश्न, शंकाएं और संशय उठते ही चले जाते हैं। आप भी हमें अनेक वर्षों से लगातार समझा रहे हैं, लेकिन फिर भी हमारे मन में प्रश्न, शंकाएं और अविश्वास उठते ही चले जाते हैं। इसके क्या कारण हैं और इसका क्या समाधान है?
कृष्ण के समझाने से अर्जुन नहीं समझेगा। अर्जुन के समझने से ही समझेगा। अगर कृष्ण के हाथ में यह बात होती कि अर्जुन उनके समझाने से समझता होता, तो पृथ्वी पर कोई अज्ञानी अब तक न बचता। बहुत कृष्ण हो चुके; अर्जुन बाकी हैं।

अर्जुन के समझने से घटना घटेगी। कृष्ण जो मेहनत कर रहे हैं, वह समझाने के लिए नहीं कर रहे हैं। अगर ठीक से समझें, तो वे ऐसी परिस्थिति पैदा कर रहे हैं, जहां अर्जुन समझने के लिए तैयार हो जाए जहां अर्जुन समझ सके। वे अर्जुन को धक्का दे रहे हैं। किसी तरफ इशारा कर रहे हैं। आंख तो अर्जुन को ही उठानी पड़ेगी। और अगर अर्जुन आंख उठाने को राजी न हो, तो कृष्ण के जीतने का कोई भी उपाय नहीं है।

लेकिन कृष्ण आयोजन कर रहे हैं पूरा। इन तेरह अध्यायों में अलग—अलग मोर्चों से कृष्ण अर्जुन पर हमला कर रहे हैं। कई तरफ से चोट कर रहे हैं। शायद किसी चोट में अर्जुन सजग हो जाए। लेकिन यह बात शायद है। इसमें अर्जुन का सहयोग जरूरी है। और अगर अर्जुन सहयोग न दे, तो कृष्ण की कोई सामर्थ्य नहीं है।

इसे थोड़ा ठीक से समझ लें। क्योंकि हम में से बहुतों को यह खयाल रहता है, गुरु—कृपा से हो जाएगा। अगर गुरु—कृपा से होता, तो इतनी बड़ी गीता बिलकुल फिजूल है। कृष्ण नासमझ नहीं हैं। अगर यह घटना कृपा से घटनी होती, तो कृष्ण जैसा कृपा करने वाला और अर्जुन जैसा कृपा को पाने वाले पात्र को दुबारा खोजने की कहां सुविधा है! दोनों मौजूद थे।

कृष्ण कृपा कर सकते थे और अर्जुन कृपा का आकांक्षी था और पात्र था। और क्या पात्रता चाहिए? इतनी आत्मीयता थी, इतनी निकटता थी कि जो बात कृपा से हो सकती, उसके लिए कृष्ण क्यों इतनी लंबी गीता में जाते! इतने लंबे आयोजन की कोई भी जरूरत नहीं थी।

नहीं; वह घटना कृपा से नहीं होने वाली। कृपा भी तभी घट सकती है, जब अर्जुन खुला हो, राजी हो, तैयार हो, सहयोग करे। यह कृपा ही है कि कृष्ण उसे समझा रहे हैं, यह जानते हुए भी कि समझाने से ही कोई समझ नहीं जाता। यह कृपा का हिस्सा है। लेकिन इस चेष्टा से संभावना है कि अर्जुन बच न पाए।

अर्जुन सारी कोशिश करेगा बचने की। अर्जुन सवाल उठाएगा, समस्याएं खड़ी करेगा। संशय—संदेह, ये सब चेष्टाएं हैं आत्मरक्षा की। अर्जुन कोशिश कर रहा है अपने को बचाने की। अर्जुन कोशिश कर रहा है कि तुम दिखा रहे हो, लेकिन हम न देखेंगे। इसको थोड़ा समझें।

अर्जुन की ये सारी शंकाएं, ये सारे संदेह इस बात की कोशिश है कि तुम दिखा रहे हो, वह ठीक, लेकिन हम न देखेंगे। हम और सवाल उठाते हैं। हम और धुंआ पैदा करते हैं। तुम जिस तरफ इशारा करते हो, हम उसको धुंधला कर देते हैं। यह आत्मरक्षा है गहरी। जैसे हम अपने शरीर को बचाना चाहते हैं, वैसे ही अपने मन को भी बचाना चाहते हैं।

जैसे कोई आपके शरीर पर हमला करे, तो आप आत्मरक्षा के लिए कुछ आयोजन करेंगे। गुरु का हमला और भी गहरा है। वह आपके मन को मिटाने के लिए तत्पर हो गया है। शरीर को जो मिटाते हैं, उनका मिटाना बहुत गहरा नहीं है। क्योंकि वासना आपकी मौजूद है। आप फिर शरीर ग्रहण कर लेंगे। वे आपसे वस्त्र छीन रहे हैं। लेकिन जो मन को मिटाने की कोशिश कर रहा है, वह आपसे सब कुछ छीन रहा है। फिर आप चाहें तो भी शरीर ग्रहण न कर सकेंगे। अगर मन समाप्त हो गया, तो जन्म की सारी व्यवस्था खो गई। मृत्यु परम हो गई।

इसलिए ध्यान महासमाधि है। महासमाधि शब्द का उपयोग हम मृत्यु के लिए भी करते हैं। वह ठीक है। क्योंकि समाधि एक भीतरी मृत्यु है। आप वस्तुत: मर जाएंगे।

तो जैसे कोई शरीर पर हमला करे तलवार से, और आप अपनी ढाल से रक्षा करें, ऐसा जब भी कोई गुरु आपके मन को तोड़ने के लिए हमला करेगा, तब शंकाओं से, संदेहों से, सवालों से आप अपनी रक्षा करेंगे। वे ढाल हैं। वह आप बचा रहे हैं। आप कह रहे हैं, करो कोशिश। शायद यह सचेतन नहीं है, यह अचेतन है।

यह वैसा ही अचेतन है, जैसा आपकी आंख के सामने कोई जोर से हाथ करे, तो आपको सोचना भी नहीं पड़ता आंख झपकने के लिए, आंख झपक जाती है। आंख झपकती है अचेतन से। आपको सोचना नहीं पड़ता। मैं आपकी आंख के सामने हाथ करूं, तो ऐसा नहीं कि आप पहले सोचते हैं कि हाथ आ रहा है, अब मैं अपने को बचाऊं, तो आंख बंद कर लूं। इतना सोचने में तो आंख फूट जाएगी। इतना समय नहीं है। और विचार में समय लगता है।

इसलिए मनुष्य के मन की दोहरी व्यवस्था है। जिन चीजों में समय की सुविधा है, उनमें हम विचार करते हैं। और जिनमें समय की सुविधा नहीं है, उनमें हम अचेतन से प्रतिकार करते हैं। आंख पर कोई हमला करे, तो तत्क्षण आंख बंद हो जाती है। इसकी अनकांशस, अचेतन व्यवस्था है। नींद में भी कीड़ा आपके पैर पर चले, तो पैर आप झटक देते हैं। उसके लिए होश की जरूरत नहीं है।

ठीक ऐसे ही मन भी अपनी आंतरिक रक्षा करता है। और गुरु के पास मन जितना परेशान हो जाता है, उतना कहीं और नहीं होता। क्योंकि वहा मौत निकट है। अगर ज्यादा गुरु के आस—पास रहे, तो मरना ही पड़ेगा। उससे बचने के लिए आप अपने चारों तरफ सुरक्षा की दीवार खड़ी करते हैं। वह कवच है।

अर्जुन यह कह रहा है कि समझाओ। लेकिन मुझे समझ में ही नहीं आ रहा है। जब समझ में ही नहीं आ रहा है, तो बदलने की कोई जरूरत नहीं है। मैं जैसा हूं वैसा ही रहूंगा। जब तक समझ में न आ जाए, जब तक मेरी सब शंकाएं न मिट जाएं, तब तक मैं जैसा हूं? वैसा ही रहूंगा। और इसमें दोष मेरा नहीं है। तुम नहीं समझा पा रहे हो, तो दोष तुम्हारा है।

इस भीतरी मन की कुशलता को अगर समझ लेंगे, तो दोनों बातें खयाल में आ जाएंगी कि क्यों अर्जुन सवाल उठाए चला जा रहा है और क्यों कृष्ण जवाब दिए जा रहे हैं।

यह एक खेल है। जिस खेल में अर्जुन अपनी व्यवस्था कर रहा है और कृष्ण अपनी व्यवस्था कर रहे हैं। एक जगह अर्जुन ढाल रख लेता है, कृष्ण दूसरी तरफ से हमला करते हैं, जहां उसने अभी ढाल नहीं रखी। वे उसे थका ही डालेंगे। वह ढाल रखते—रखते थक जाएगा। न केवल थक जाएगा, बल्कि ढाल रखते—रखते उसे समझ में भी आ जाएगा कि मैं क्या कर रहा हूं? मैं किससे बच रहा हूं? जो मुझे महाजीवन दे सकता है, उससे मैं बचने की कोशिश कर रहा हूं! मैं किसके संबंध में संदेह उठा रहा हूं? किसलिए उठा रहा हूं? यह उसे धीरे— धीरे खयाल में आएगा। और यह वर्षों में भी खयाल आ जाए, तो भी जल्दी है। जन्मों में भी खयाल आ जाए, तो भी जल्दी है।

इसलिए कृष्ण कितना समझाते हैं, यह बड़ा सवाल नहीं है। कितना ही समझाएं, थोड़ा ही है। और अर्जुन कितनी ही देर लगाए, तो भी जल्दी है। क्योंकि मन सब तरह के आयोजन कर लेगा, थकेगा। जब बिलकुल क्लांत हो जाएगा, जब सब संदेह उठा चुकेगा और संदेह उठाना भी व्यर्थ मालूम पड़ने लगेगा, और जब संदेह भी बासे और उधार मालूम पड़ने लगेंगे, कि यह मैं उठा चुका, उठा चुका, बहुत बार कह चुका, इनसे कुछ हल नहीं होता, तभी शायद वह किरण ध्यान की उस तरफ जाएगी जहां कृष्ण ले जाना चाह रहे हैं।

यह सदा ऐसा ही हुआ है। इससे निराश होने की कोई भी जरूरत नहीं है। इस श्रम में लगे ही रहना है।

और ध्यान रहे, उचित यही है कि आप अपनी सारी शंकाएं और सारे संदेह सामने ले आएं, क्योंकि सामने आ जाएंगे, तो मिटने की सुविधा है। भीतर छिपे रहेंगे, तो उनके मिटने का कोई उपाय नहीं है। अर्जुन ईमानदार है। उतना ही ईमानदार होना जरूरी है। वह सवाल उठाए ही चला जा रहा है। बेशर्मी से उठाए चला जा रहा है। उसमें जरा भी संकोच नहीं कर रहा है। किसी को भी संकोच आने लगता कि अब ठहर जाऊं। लेकिन वह संकोच खतरनाक होगा। भीतर उठते चले जाएंगे, अगर बाहर ठहर गए। तो फिर कृष्ण नहीं जीत सकते हैं।

उठाए ही चले जाएं। वह घड़ी जल्दी ही आ जाएगी, जब संदेह उठने बंद हो जाएंगे। हर चीज की सीमा है।

इस जगत में परमात्मा को छोड्कर और कुछ भी असीम नहीं है। आपका मन तो निश्चित ही असीम नहीं है। आप उठाए चले जाएं, किनारा जल्दी ही आ जाएगा। किनारा आता नहीं दिखाई पड़ता, क्योंकि आप बेईमान हैं। ठीक से उठाते ही नहीं। जिस दिन किनारा आ जाएगा, उसी दिन छलांग लग सकती है।

तीसरा प्रश्न :
अर्जुन को अभी गीता कही जा रही है। वह अभी ज्ञान को उपलब्ध नहीं हुआ। फिर भी कृष्ण उसे संबोधित करते हैं, हे निष्पाप! ऐसा क्यों?
क्योंकि कृष्ण उस अर्जुन को संबोधित नहीं करते, जो प्रश्न उठा रहा है। कृष्ण उस अर्जुन को संबोधित करते हैं, जो प्रश्नों के पीछे खड़ा है। कृष्ण उस अर्जुन को संबोधित नहीं करते हैं, जो सामने दिख रहा है हड्डी, मांस, मज्जा का बना हुआ। कृष्ण उस अर्जुन को संबोधित करते हैं, जो इसके पीछे छिपा हुआ चिन्मय, जो परम चैतन्य है। वह निष्पाप है।

और कृष्ण क्यों कहते हैं बार—बार, हे निष्पाप! ताकि अर्जुन का ध्यान उस तरफ जा सके कि वह जहां से सवाल उठा रहा है, कृष्ण वहां जवाब नहीं दे रहे हैं। कृष्ण कहीं और गहरे में जवाब ले जा रहे हैं।

यह तो अर्जुन को भी साफ होगा कि निष्पाप वह नहीं है। इसे बताने की कोई जरूरत नहीं, यह तो वह भी जानता है। लेकिन कृष्ण उससे बार—बार कह रहे हैं, हे निष्पाप! वे चोट कर रहे हैं बार—बार इस बात पर कि तेरे भीतर जो छिपा है, वहां कोई पाप कभी प्रवेश नहीं किया और न प्रवेश कर सकता है। सब पाप ऊपर—ऊपर हैं, सब पुण्य भी ऊपर—ऊपर हैं।

आप निष्पाप का मतलब यह मत समझाना कि हे पुण्यधर्मा! निष्पाप का अर्थ है, जहां कोई विकार नहीं। न पुण्य का कोई विकार है, न पाप का कोई विकार है। हे निर्विकार। जहां कुछ भी नहीं पहुंचता है। जहां तेरा शुद्ध होना है। जहां बाहर से आए हुए कोई भी संस्कार गति नहीं करते। सब परिधि पर इकट्ठे हो जाते हैं, भीतर तो कुछ जाता नहीं। उस भीतर का जो केंद्र है, वह सदा निष्पाप है। वह सदा शुद्ध है। वह सदा निर्दोष, कुंवारा है।

उस कुंवारेपन में कभी आंच नहीं लगती। आप कितने ही पाप करें और कितने ही पुण्य करें, उस कुंवारेपन पर कभी भी कोई बासापन नहीं आता। वह कुंवारापन हमारा स्वभाव है।

अर्जुन को जगाने की चेष्टा है उस शब्द में भी। सदगुरु एक शब्द भी व्यर्थ नहीं बोलते हैं। वे जो भी बोलते हैं, कोई गहरा कारण है। आप भी निष्पाप हैं। अस्तित्व सदा निष्पाप है। और अगर पाप और पुण्य आपके ऊपर हैं, तो वैसे ही जैसे कोई यात्री राह से गुजरे और धूल इकट्ठी हो जाए, ऊपर—ऊपर। एक डुबकी लगा ले नदी में, धूल बह जाए।

हमने तीर्थ बनाए थे, वे प्रतीक थे। फिर लेकिन प्रतीक सब गलत हो जाते हैं गलत आदमियों के हाथों में। हमारे प्रतीक थे तीर्थ कि हम कहते थे, वहां जाकर स्नान कर लो, सब पाप से छुटकारा हो जाता है। कोई तीर्थ में जाकर स्नान करने से पाप का छुटकारा नहीं होता। इतना आसान होता, तो जितने तीर्थ हमारे मुल्क में हैं और जितने पापी स्नान कर रहे हैं, इस मुल्क में पाप होता ही नहीं।

तीर्थ में स्नान करने से पाप से कोई छुटकारा नहीं होता। लेकिन बात बड़े मूल्य की है। बात असल में यह है कि पाप और पुण्य धूल से ज्यादा नहीं हैं। और जैसे धूल स्नान करने से बह जाती है और धूल कोई आपकी आत्मा में नहीं चली जाती है, बस आपकी परिधि पर होती है, ऐसे पुण्य और पाप हैं। जो जान ले तरकीब स्नान करने की, वह इनसे भी ऐसे ही मुक्त हो जाएगा, जैसे धूल से मुक्त हो जाता है।

तो तीर्थ प्रतीक थे।

रामकृष्ण से कोई पूछा है कि मैं गंगा जा रहा हूं। कहते हैं कि गंगा में स्नान करने से पाप धुल जाएंगे। रामकृष्ण थोड़ी अड़चन में पड़े। रामकृष्ण को लगा कि कहूं कि ऐसा ठीक नहीं है, तो गलत होगा। यह ठीक है कि कोई स्नान करने की कला जान ले और गंगा को खोज ले, तो पाप धुल जाते हैं। इस बात में कहीं भूल—चूक नहीं है। लेकिन गंगा यह नहीं है, जो बाहर बहती दिखाई पड़ती है। और स्नान की कला शरीर पर पानी डालने की नहीं है, मन पर ध्यान डालने की है।

तो बात तो ठीक ही है। प्रतीक काव्यात्मक है, लेकिन बात ठीक है। और कठिन बातें कविता में ही कही जा सकती हैं। उनके लिए गणित के फार्मूले नहीं हो सकते। क्योंकि बड़े सूक्ष्म और नाजुक इशारे हैं। पत्थर जैसे नहीं हैं, फूल जैसे हैं। उन्हें बहुत सम्हालकर काव्य में संजोकर ही बचाया जा सकता है।

तो बात तो ठीक है। लेकिन फिर भी गलत हो गई। क्योंकि लोग गंगा में स्नान करके घर लौट आते हैं, इस खयाल से कि बात खतम हो गई, फिर से पाप शुरू करो। और दिक्कत क्या है? कितने ही पाप करो, वापस गंगा में जाकर स्नान से धुल सकते हैं।

तो रामकृष्ण ने कहा, तू जा जरूर, लेकिन तुझे पता है, गंगा के किनारे बड़े वृक्ष लगे हैं, वे किसलिए लगे हैं? उस आदमी ने कहा, यह तो कहीं शास्त्रों में इसका कोई उल्लेख नहीं है। तो उन्होंने कहा कि वही असली महत्वपूर्ण बात है। जब तू गंगा में डूबेगा, तो गंगा में पाप बाहर निकल जाते हैं। क्योंकि गंगा पवित्र है। पर वे जो बड़े वृक्ष हैं, पाप उन पर बैठ जाते हैं। तो तू डूबा रहेगा कि लौटेगा? लौटेगा कि वे पाप फिर झाड़ों से उतरकर तेरे सिर पर सवार हो जाएंगे। तो गंगा तो धो देगी, लेकिन तू इस भ्रम में मत पड़ना कि खाली होकर लौट आया। वे झाड़ इसीलिए खड़े हैं!

सारे प्रतीक व्यर्थ हो जाते हैं। व्यर्थ इसलिए हो जाते हैं कि हम प्रतीकों की गरदन दबा लेते हैं। उनका निचोड़ देते हैं प्राण ही बाहर। पाप बाहर हैं, धूल से ज्यादा नहीं। झड़ाए जा सकते हैं। कोई आदमी ठीक से निर्णय भी कर ले झड़ाने का, तो झड जाते हैं। क्योंकि आपके ही निर्णय से वे पकडे गए हैं। सच तो यह है कि उन्होंने आपको पकड़ा है, यह कहना ही गलत है। आप उनको पकड़े हैं और सम्हाले हैं। जिस दिन आप छोड़ देंगे, वे गिर जाएंगे। और वह जो पकड़े हुए है, वह सदा निष्पाप है।

मनुष्य की अंतरात्मा पापी नहीं हो सकती। और अगर अंतरात्मा पापी हो जाए, तो फिर उसे शुद्ध करने का कोई भी उपाय नहीं है। फिर उसे कैसे शुद्ध करिएगा? फिर कौन उसे शुद्ध करेगा? फिर आत्मा से भी शुद्ध तत्व कोई हो, तो ही शुद्ध कर पाएगा।

एक स्कूल में एक शिक्षक अपने बच्चों को विज्ञान पढा रहा है। और उसने कहा कि एक नई खोज हो रही है। एक ऐसा रासायनिक द्रव्य खोजा जा रहा है, जिसमें हर चीज गल जाती है। एक छोटे—से बच्चे ने कहा, उसको रखिएगा कहां? शिक्षक भी सिर खुजलाने लगा। उसने कहा, उसकी भी खोज की जा रही है। उस छोटे बच्चे ने कहा, पहले उसकी खोज कर लेना चाहिए, पीछे इस रासायनिक द्रव्य की। अगर खोज लिया इसे पहले, तो रखिएगा कहां?

आत्मा अगर अशुद्ध हो जाए, तो फिर उसे शुद्ध करने का कोई भी उपाय नहीं है। उसे फिर किस चीज से शुद्ध करिएगा? और जिससे भी शुद्ध करिएगा, उसे तो कम से कम शुद्ध रहना ही चाहिए; उसके अशुद्ध होने का उपाय नहीं होना चाहिए।

एक तत्व इस जगत में चाहिए, जिसके अशुद्ध होने का उपाय न हो, क्योंकि उसके ही माध्यम से सब शुद्ध हो सकता है। अगर सभी चीजें अशुद्ध हो जाती हों, तो फिर शुद्धि का कोई उपाय नहीं, फिर मोक्ष की कोई संभावना नहीं है।

हम उसी तत्व को आत्मा कहते हैं, जिसके अशुद्ध होने का कोई उपाय नहीं है, जो सदा शुद्ध है। इसलिए आत्मा को शुद्ध नहीं करना होता, सिर्फ आत्मा को पहचानना काफी है। पहचानते ही पता चलता है कि मैं सदा से शुद्ध—बुद्ध हूं। वहां क्षणभर को भी कोई कालिमा प्रविष्ट नहीं हुई है।

इस महत तत्व की ओर इशारा करने के लिए अर्जुन को बार—बार कृष्ण कहे जा रहे हैं, हे निष्पाप!

चौथा प्रश्न :
जब यह सारा जगत परुष और प्रकृति का खेल है, तो हम कहां भागीदार हैं, जो इतना दुख झेल रहे हैं?
इसीलिए दुख झेल रहे हैं कि आपको भांति है कि आप भागीदार हैं। आप भागीदार न रह जाएं, दुख समाप्त हो जाएगा। दुख इसलिए नहीं है कि दुख है। दुख इसलिए है कि आप भागीदार हैं। आप सोचते हैं, मैं कुछ कर रहा हूं। मैं हिस्सा बंटा रहा हूं। मैं उत्तरदायी हूं, यह अस्मिता ही आपके दुख का कारण है। जहां भी आप भागीदार हो जाएंगे, वहीं दुख पैदा हो जाता है।

लेकिन ध्यान रहे, वह दुख हम इसीलिए पैदा करते हैं कि वही तरकीब सुख पैदा करने की भी है। जहां भी आप भागीदार होते हैं, वहा सुख पैदा हो जाता है। चूंकि हम सुख चाहते हैं, इसलिए हम भागीदार होते हैं।

समझें कि एक फिल्म आप देख रहे हैं। अगर आप बिलकुल तटस्थ रहें, तो फिल्म से आपको कोई सुख न मिल सकेगा। सिर्फ थककर आप वापस लौटेंगे। फिजूल मेहनत लगेगी। आंखें थकेंगी। सुख मिल सकता है, अगर आप भूल

जाएं अपने को और भागीदार हो जाएं। भागीदार होने का मतलब है, अपने को भूल जाना, विस्मृत कर देना। द्रष्टा न रह जाए। और आप भी जैसे एक पात्र हो गए हैं फिल्म की कथा में।

और हर व्यक्ति फिल्म की कथा में पात्र हो जाता है। किसी पात्र के साथ अपना तादात्म्य कर लेता है। फिर उस पर जो बीतता है, इस पर बीतने लगता है। फिर जब वह कष्ट में होता है, तो यह अपनी रीढ़ सीधी उठाकर कुर्सी पर बैठ जाता है। जब वह आराम में होता है, तो यह भी अपनी कुर्सी पर विश्राम करता है। इससे सुख उपलब्ध होता है। लेकिन इससे दुख भी उपलब्ध होता है।

लोग दुखांत फिल्मों में आंसू पोंछ—पोंछकर थक जाते हैं। वह तो भला है कि अंधेरा होता है, इसलिए कोई किसी दूसरे को देख नहीं सकता। सब अपने—अपने रूमालों को भीगा करते हैं।

टाल्सटाय ने लिखा है कि मेरी मां नाटक देखने की शौकीन थी। बड़े शाही परिवार के लोग थे, जार परिवार से संबंध था। तो मास्को में ऐसा कोई नाटक नहीं था, जिसमें उसकी मां न जाती हो।

और टाल्सटाय ने लिखा है कि वह इतना रोती थी, वह इतनी दयालु महिला थी कि जरा—सा दुख नाटक में कुछ हो रहा हो, तो बस, वह जार—जार हो जाती थी। लेकिन अक्सर यह होता था कि बर्फ पड़ती रहती मास्को में और बाहर जो कोचवान उसकी गाड़ी पर बैठा रहता, वह बर्फ के कारण सिकुड़कर मर जाता। जब हम नाटक देखकर बाहर निकलते, तो कोचवान मरा हुआ होता। उसे उठाकर सड़क के किनारे फेंककर दूसरा कोचवान गाडी लेकर घर की तरफ जाता। और मां अभी भी आंसू पोंछती रहती नाटक के कारण! इस कोचवान से कोई संबंध नहीं था। लेकिन नाटक में संबंध जुड़ता था।

टाल्सटाय ने लिखा है कि मेरी समझ के बाहर था कि यह क्या हो रहा है! एक जिंदा आदमी मर गया, उसकी फिर बात ही नहीं उठती थी। वह सड़क के किनारे फेंक दिया गया। उसका कोई मूल्य नहीं था, उसकी कोई कीमत नहीं थी। वह जैसे आदमी था ही नहीं; एक यंत्र का हिस्सा था। एक दूसरा यंत्र बिठा दिया गया। और मां घर तक रोती रहती। वह नाटक उसका पीछा करता।

आप भी जितने दुखी हो जाते हैं फिल्म में, उतना जिंदगी में वही घटना देखकर दुखी नहीं होते। क्योंकि जिंदगी में आप बहुत सोच—समझकर संयुक्त होते हैं। नाटक में संयुक्त होने में कोई खतरा नहीं है, कुछ हर्जा नहीं है, कुछ खर्च भी नहीं है। थोड़ी देर में नाटक के बाहर हो जाएंगे; अपने घर आ जाएंगे।

लेकिन जहां भी तादात्म्य हो जाता है, वहीं सुख—दुख मिलना शुरू हो जाता है। और जहां भी तादात्म्य टूट जाता है, वहां सुख—दुख दोनों प्रक्रियाएं बंद हो जाती हैं।

साक्षीभाव का इतना ही अर्थ है कि मैं कहीं भी तादात्म्य न बनाऊं। जो भी हो रहा हो, वह नाटक से ज्यादा न हो।

विराट नाटक चल रहा है, उसे मिटाने की कोई जरूरत भी नहीं है। उसे मिटाना अर्थपूर्ण भी नहीं है। पर उसमें भागीदार होने में भूल है। उसमें आप एक अभिनेता से ज्यादा न रहें। अभिनेता भी शायद भागीदार हो जाए। क्योंकि अभिनय जब जोश में आता है, तो अभिनेता भी भूल जाता है कि वह अभिनय कर रहा है। वह कर्ता हो जाता है। उसका कर्तापन कभी—कभी टूटता है। नहीं तो वह कर्ता ही हो जाता है।

असल में अभिनेता को अगर ठीक से अभिनय करना हो, तो उसे भूल जाना चाहिए कि वह अभिनय कर रहा है, उसे कर्ता हो जाना चाहिए। तो उसके आंसू ज्यादा वास्तविक होंगे, उसका प्रेम ज्यादा वास्तविक दिखाई पड़ेगा। उसके कृत्य, उसकी भाव— भंगिमाओं में सचाई आ जाएगी।

इसलिए कुशल अभिनेता भूलना जानता है कि वह अभिनेता है और वह कर्ता हो जाता है। लेकिन तब चीजें उसे छूने लगती हैं। छूने के कारण ही वास्तविक हो जाती हैं।

संसार में अभिनेता और द्रष्टा दोनों अगर आपके जीवन में प्रविष्ट हो जाएं..। क्योंकि यहां सिर्फ आप द्रष्टा नहीं हो सकते, क्योंकि आपको बहुत कुछ करना भी पड़ रहा है। आप हाल में नहीं बैठे हैं, मंच पर खड़े हुए हैं। यहां हाल है ही नहीं, मंच ही मंच है। यहां जहां भी आप खड़े हैं, आप मंच पर हैं।

जापान में एक नाटक होता है, नो—ड्रामा। उसमें कोई मंच नहीं होता। उसमें अभिनेता ठीक हाल में ही काम करते हैं। और नया आदमी खड़ा हो तो उसको समझना मुश्किल हो जाता है, कौन दर्शक है और कौन अभिनेता है!

यह नो—ड्रामा झेन फकीरों की ईजाद है। और इसमें पूरी पांडुलिपि तैयार नहीं होती; सिर्फ इशारे होते हैं। और इशारों पर भी कोई जिद नहीं होती कि घटना वैसी ही बहनी चाहिए। स्पाटेनियस, सहज

होने की सुविधा होती है। और कोई बैठा हुआ दर्शक अगर जोश में आ जाए और भाग लेने लगे, तो उसको भी मनाही नहीं है। और कोई अभिनेता पात्र करते—करते अपना सारा ढंग बदल दे, तो पीछे से प्रांप्ट करने का कोई उपाय नहीं है, कोई सुविधा भी नहीं है। नाटक बहता है, जैसे जिंदगी बहती है, अनजान में। क्या घटना होगी, पक्का नहीं है। निष्कर्ष पहले से तय नहीं है। बहुत रोमांचक है। और ठीक जिंदगी जैसा है।

ठीक यह पूरी जिंदगी एक बड़ा नो—ड्रामा है। यहां कहीं कोई दर्शक नहीं है, यहां सभी अभिनेता हैं। और लिखी हुई पांडुलिपि हाथ में नहीं है। परदे के पीछे से कोई कह नहीं रहा है कि यह बोलो। कुछ भी निश्चित नहीं है। प्रत्येक चीज सांयोगिक होती जा रही है। कहानी कहा खतम होगी, कहना कठिन है। सच पूछो तो कहीं कहानी खतम नहीं होती। पात्र आते हैं, चले जाते हैं, कहानी चलती रहती है।

आप कहानी की शुरुआत में थोड़े ही आए; मध्य में आए हैं। और अंत में थोड़े ही विदा होंगे; बीच में विदा हो जाएंगे। कहानी आपके पहले से चलती थी, कहानी आपके बाद भी चलती रहेगी। इस पूरे लंबे कथानक में अगर आप अभिनेता भी हों और द्रष्टा भी हों, तो आप भागीदार नहीं रहे। फिर कोई दुख नहीं है। फिर कोई सुख भी नहीं है।

जब तक सुख है, तब तक दुख भी होगा। वे दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक गिरेगा, दूसरा भी गिर जाएगा। और जब दोनों गिर जाते हैं, तब जो घटित होता है, उसको हमने आनंद कहा है। जब भागीदार मिट जाता है और सिर्फ साक्षी रह जाता है, तो जो अनुभूति जन्मती है, उसका नाम आनंद है।

अब हम सूत्र को लें।
हे अर्जुन, रागरूप रजोगुण को कामना और आसक्ति से उत्पन्न हुआ जान। वह इस जीवात्मा को कर्मों की और उनके फल की आसक्ति से बांधता है।

इनमें तीनों गुणों की, जो कि बांधने वाले तत्व हैं..।

संस्कृत में गुण शब्द का एक अर्थ रस्सी भी है, जिससे बांधा जाए। इनको गुण इसलिए भी कहा जाता है कि ये बांधते हैं। इसलिए हम परमात्मा को निर्गुण कहते हैं।

निर्गुण का यह मतलब नहीं कि उसमें कोई गुण नहीं हैं। निर्गुण का यह मतलब है कि उस पर कोई बंधन नहीं हैं। वह कहीं बंधा हुआ नहीं है। ये तीन गुण उसमें नहीं हैं, जो बांध सकते हैं। वह इन तीन के बंधन के बाहर है। उसकी निर्गुणता का अर्थ है, वह परम स्वतंत्र है। और आपके भीतर जो छिपा है, वह भी परम स्वतंत्र है। लेकिन उसके चारों तरफ बंधन है। बंधन से आपकी स्वतंत्रता नष्ट नहीं हो गई है, सिर्फ अवरुद्ध हो गई है।

कोई बंधन स्वतंत्रता को नष्ट नहीं करता। मेरे हाथों में कोई हथकड़ियां डाल दे, इससे मेरी स्वतंत्रता नष्ट नहीं होती, सिर्फ अवरुद्ध हो जाती है। मैं अपनी स्वतंत्रता का प्रयोग नहीं कर सकता। लेकिन मेरी स्वतंत्रता नष्ट नहीं होती। कल मेरी जंजीरें टूट जाएं; मेरी स्वतंत्रता मेरे पास थी, सिर्फ अवरोध हट गया।

तो कोई भी चेतना किसी भी स्थिति में स्वतंत्रता तो नहीं खोती है, लेकिन अवरोध खडे हो जाते हैं। और अगर अवरोधों से हमारा लगाव हो जाए, तब बड़ी कठिनाई हो जाती है। वही कठिनाई है। हमारे हाथ में जंजीरें नहीं हैं। और अगर जंजीरें हैं, तो हम उनको आभूषण समझे हुए हैं। और हमने उनमें हीरे, चांदी, सोना जड़ लिया है। हमने उनमें रंग—बिरंगे चित्र बना लिए हैं। अब अगर कोई हमारी जंजीर तोड़ना भी चाहे, तो हम उसको समझेंगे, यह दुश्मन है, हमारे सौंदर्य को, हमारे आभूषण को नष्ट कर रहा है।

और जब भी कोई व्यक्ति अपनी जंजीर को आभूषण समझ ले, तो उसकी स्वतंत्रता बहुत मुश्किल हो गई। अगर कोई कारागृह को अपना घर समझ ले और सजावट करने लगे, तब फिर उसके छुटकारे का कोई उपाय न रहा। छुटकारे के लिए पहली बात तो जान लेनी जरूरी है कि मैं कारागृह में हूं। और इसे सजाना नहीं है, इसे तोड़ना है। और जो मुझे बांधे हुए हैं, वे आभूषण नहीं हैं, जंजीरें हैं। उनसे गौरवान्वित नहीं होना है, उनसे छुटकारा पाना है।

हे अर्जुन, रागरूप रजोगुण को कामना और आसक्ति से उत्पन्न हुआ जान। वह इस जीवात्मा को कर्मों की और उनके फल की आसक्ति से बांधता है।

सत्वगुण को कृष्ण ने कहा कि वह सुख की आसक्ति और ज्ञान का अभिमान, इससे बांधता है।

जिसको हम पांडित्य कहें, वह सत्व से बंधा हुआ व्यक्तित्व है। जिसको हम साधुत्व कहें, वह भी सत्व से बंधा हुआ व्यक्तित्व है। उसकी दो आकांक्षाएं हैं। एक आकांक्षा है कि उसे सुख मिले। इसलिए वह स्वर्ग को खोजता है। स्वर्ग का मतलब है, जहां दुख बिलकुल न हो, सिर्फ सुख हो। वह स्वर्ग की खोज के लिए सब कुछ करने को तैयार है। तप करेगा, पूजा, यज्ञ, सब करेगा, लेकिन स्वर्ग मिले। ऐसी जगह मिल जाए, जहां सुख ही सुख हो; शुद्ध सुख हो और दुख न हो। सत्व ऐसे लोगों को बांध लेता है।

स्वर्ग भी बंधन है। देवता मुक्त नहीं हैं।

बुद्ध के जीवन में कथा है कि जब बुद्ध को परम ज्ञान हुआ, तो ब्रह्मा और अनेक देवताओं ने आकर उनके चरणों में निवेदन किया कि हमें उपदेश दें।

हिंदुओं को इस कहानी से बड़ी चोट पहुंची। उनको लगा, हमारे देवता और बुद्ध के चरणों में क्यों प्रार्थना करने जाएं? लेकिन बात बड़ी कीमती है। देवता किसी के भी हों, बुद्ध के चरणों में नमस्कार करने जाना ही होगा। बुद्ध किसी के भी नहीं हैं। देवता किसी के भी हों! लेकिन जब भी बुद्धत्व घटित होता है, तो देवता को भी चरणों में नमस्कार करने और मार्ग खोजने जाना होगा।

ब्रह्मा ने कहा कि हमें उपदेश दें, क्योंकि हम भी बंधे हैं। तुम सुख से भी मुक्त हो गए; हम सुख से बंधे हैं। सुख ही सुख है हमारे जीवन में, लेकिन दुख का डर मौजूद है। क्योंकि जो भी है, उसके खोने का डर होता है।

धनी के पास कितना ही धन हो, धन के खोने का डर तो दुख देता ही है। इसलिए हम कंपते रहते हैं कि कब हमारा सुख छिन जाए। और सुख हमने कमाया है पुण्यों से, उसकी एक मात्रा है। पुण्य चुक जाएंगे, सुख चुक जाएगा। तब हम वापस दुख में फेंक दिए जाएंगे। तो हम कंपित हैं। हम डरे हुए हैं। हम घबड़ाए हुए हैं। हमें आश्वस्त करें। आप सुख से भी मुक्त हो गए हैं। अब आपको कोई भय न रहा। अब आपको कोई कंपा नहीं सकता; क्योंकि आपसे अब कोई कुछ छीन नहीं सकता। आपके पास कुछ है ही नहीं जो छीना जा सके। आप सिर्फ आप हैं, जिसको छीनने का कोई उपाय नहीं है, चुराने का कोई उपाय नहीं है, मिटाने का कोई उपाय नहीं है। आप उस परम मुक्त अवस्था को उपलब्ध हो गए हैं, जिसके लिए देवता भी तरसते हैं, हम तरसते हैं।

सत्व देवत्व तक ले जा सकता है। वह शुद्धतम जंजीर है, सुंदरतम जंजीर है। तो जिनके मन में सुख की गहरी आकांक्षा है—सुख की, शाति की या आनंद की—जिनके मन में गहरी आकांक्षा है सुख की, आनंद की, शांति की, वे सत्व से मुक्त न हो पाएंगे। क्योंकि सत्व सुख देता है। और जो सुख देता है, उससे हम बंध जाएंगे।

जिनके मन में आसक्ति है, लगाव है, जो किसी दूसरे व्यक्ति के ऊपर निर्भर होते हैं अपने सुख लिए......। पति है, वह कहता है, पत्नी के बिना मैं नहीं जी सकता। या पत्नी है, वह कहती है, पति मरेंगे तो मैं सती हो जाऊंगी, उनकी चिता पर जल जाऊंगी। उनके बिना नहीं जी सकती।

सती आसक्ति का गहनतम प्रतीक है। मेरा जीवन किसी और के जीवन पर पूरी तरह निर्भर है, उसके बिना कोई अर्थ नहीं है, कोई सार नहीं है। फिर मर जाना उचित है। फिर मृत्यु भी हितकर मालूम होती है बजाय जीवन के।

तो जब कोई व्यक्ति आसक्ति से किसी से बंधता है, तो ऐसी आसक्ति और कामना से जो उत्पन्न होता है, वह रजोगुण है। या इस जीवात्मा के कर्मों की और उनके फल की आसक्ति जो है, उससे रजोगुण उत्पन्न होता है।

एक तो आसक्ति है, किसी से बंध जाना। ऐसा बंध जाना कि लगे कि मेरे प्राण मेरे भीतर नहीं, उसके भीतर हैं। यह व्यक्ति के साथ भी हो सकता है, वस्तु के साथ भी हो सकता है। कुछ लोग हैं कि उनके प्राण उनकी तिजोरी में हैं। आप उनको मारो, वे न मरेंगे। तिजोरी को मार दो, वे मर जाएंगे।

नसरुद्दीन एक अंधेरी गली से गुजर रहा है। और एक आदमी ने पिस्तौल उसकी छाती पर रख दी। उसने कहा, नसरुद्दीन, धन देते हो या जीवन? नसरुद्दीन ने कहा, थोड़ा सोचने दो। फिर सोचकर उसने कहा कि जीवन। उस आदमी ने कहा, क्या मतलब? नसरुद्दीन ने कहा, धन तो बुढ़ापे के लिए इकट्ठा किया है। जीवन तुम ले सकते हो। धन देकर मैं क्या करूंगा? फिर कहा बचूंगा? पुरानी कहानियां हैं, बच्चों की कहानियां हैं परियों की, राजाओं की। जिनमें कोई राजा होता है, जिसके प्राण किसी तोते में बंद हैं। राजा को मारो, आप नहीं मार सकते। तोते को मारना पड़े। पता लगाना पड़े कि राजा के प्राण कहा कैद हैं। वे कहानियां बड़ी अर्थपूर्ण हैं; वे हम सबकी कहानियां हैं।

आपको मारने में कोई सार नहीं है। पहले पक्का पता लगाना पड़े, किस तोते में आपके प्राण बंद हैं। बस, वहा मार दो, आप मर गए। आसक्त व्यक्ति का अर्थ है कि उसके प्राण उसके अपने भीतर नहीं, कहीं और हैं। ऐसा व्यक्ति तो गहन परतंत्रता में होगा, जिसके प्राण भी अपने नहीं। यह तो पूरा कारागृह है।

रजोगुण ऐसी आसक्ति से बढ़ता है, निर्मित होता है। और ऐसा व्यक्ति सदा ही फलों की आसक्ति से बंधा होता है। क्या मिलेगा अंत में? वह उसकी नजर में होता है। वह हमेशा फल को देखता है। वृक्ष की उसे चिंता नहीं होती। वह सब कर सकता है, लेकिन फल! नजर में, आंख में, प्राण में एक ही बात गूंजती रहती है, फल! ऐसा व्यक्ति सदा दुखी होगा। दुखी इसलिए होगा कि वह जो भी करेगा, उसमें तो उसे कोई रस नहीं है। रस तो फल में है। फल सदा भविष्य में है।

और ऐसे व्यक्ति की धीरे— धीरे एक व्यवस्था हो जाती है मन की कि वह वर्तमान में देख ही नहीं सकता। और जब फल भी आएगा, तब भी वह फल को नहीं देख पाएगा, क्योंकि फल तब वर्तमान हो जाएगा और उसकी आंखें फिर भविष्य में देखेंगी।

तो ऐसा व्यक्ति फल के द्वारा फिर किसी और फल को खोजने लगता है। पहले वह धन कमाता है। धन उसकी आकांक्षा होती है। फिर जब धन मिल जाता है, तो उस धन से वह और धन कमाने लगता है। फिर यही चलता है।

उसकी हालत ऐसी है कि एक रास्ते का उपयोग दूसरे रास्ते तक पहुंचने के लिए करता है। फिर दूसरे रास्ते का उपयोग तीसरे रास्ते तक पहुंचने के लिए करता है। जिंदगीभर वह रास्तों पर चलता है और मंजिल कभी नहीं आती। आएगी नहीं। क्योंकि हर साधन का उपयोग वह फिर किसी दूसरे साधन तक पहुंचने के लिए करता है। साध्य का कोई सवाल नहीं है।

और ऐसे व्यक्ति की नजर सदा साध्य पर लगी होती है। उसको दिखता है हमेशा फल। इसके पहले कि वह कुछ करे, वह अंत में देख लेता है। और अंत को देखकर ही चलता है।

इसमें बड़ी कठिनाइयां हैं। अगर वस्तुत: उसे अंत मिल भी जाए, तो भी उसकी आगे देखने की आदत उसे अंत का सुख न लेने देगी। और अंत मिलना इतना आसान भी नहीं है। क्योंकि फल आपके हाथ में नहीं है। फल हजारों कारणों के समूह पर निर्भर है। और कोई भी व्यक्ति इतना समर्थ नहीं है कि जगत के सारे कारणों को नियोजित कर सके।

आप धन कमा रहे हैं। धन कमा लेंगे, यह आप पर ही निर्भर नहीं है। यह करोडों कारणों पर निर्भर है, यह मल्टी काजल है।

समझ लें, एक क्रांति हो जाए; धन किसी का रह ही न जाए, सामूहिक संपत्ति हो जाए। संपत्ति का वितरण हो जाए। आप जब तक धन कमा पाएं, तब तक महंगाई इतनी बढ़ जाए कि धन का कोई मूल्य न रह जाए।

पिछले महायुद्ध मे चीन में ऐसी हालत थी कि एक माचिस खरीदनी हो, तो एक थैली भरकर नोट ले जाने पड़ते थे। वह हालत यहां कभी भी आ सकती है।

एक बड़ी प्रसिद्ध घटना चीन में घटी पिछले महायुद्ध में। दो भाई थे। जब बाप मरा तो आधी—आधी संपत्ति कर गया। काफी संपत्ति थी। कई लाख रुपए दोनों को मिले। एक भाई उन लाखों रुपयों को लगाकर धंधे में लग गया, कमाने में। दूसरे भाई ने उन सब लाखों रुपयों की शराब पी डाली। उस दूसरे भाई ने शराब पी डाली, लेकिन उसे शौक था एक, शराब की बोतलें इकट्ठी करने का। उसने लाखों शराब की बोतलें इकट्ठी कर लीं।

फिर महंगाई बढ़ते—बढते उस जगह पहुंची कि उसने बोतलें अपनी बेच लीं। जितने की उसने शराब पी थी, उससे कई गुना रुपया उसे बोतलों के बेचने से मिल गया। और वह जो भाई धंधे में था, वह मर गया, वह डूब गया। लोगों के पास पैसे न रहे खरीदने को उसकी चीजें। चीजें थीं; लेकिन पैसे नहीं थे लोगों के पास।

जिंदगी बड़ी जटिल है। यहां आप अकेले नहीं हैं। यहां अरबों लोग हैं। अरबों कारण काम कर रहे हैं। आप सब कुछ कर लें और माओ का दिमाग खराब हो जाए या निक्सन का, और वे एक एटम बम गिरा दें। आपने यहां सब कुछ करके इंतजाम कर लिया था, बिलकुल बस, बैंक से रुपया उठाने ही जा रहे थे। सब समाप्त हो गया।

हिरोशिमा पर जब एटम गिरा, एक लाख बीस हजार लोग मरे। पांच मिनट में सब समाप्त हो गया। उसमें आप ही जैसे लोग थे, जिनकी बड़ी योजनाएं थीं।

फलाकांक्षी बड़ी कठिनाई में है। पहले तो वह फल मिल भी जाए—जो कि असंभव जैसा है—जो फल वह चाहता है, वह मिल भी जाए, तो वह उसको भोग न सकेगा। उसकी आदत गलत है। पहले मिलना ही मुश्किल है, क्योंकि फल आपके हाथ में नहीं है। और जब आप तय करते हैं कुछ पाने का, तब इतने कारण काम कर रहे हैं कि आप उन पर कोई कब्जा नहीं कर सकते।

अगर इस स्थिति को हम ठीक से समझें, तो इसी को कृष्ण ने कहा है कि फल भगवान के हाथ में है। करोड़ों ये जो कारण हैं, अनंत जो कारण हैं, यह अनंत कारणों का ही इकट्ठा नाम भगवान है। भगवान कहीं कोई ऊपर बैठा हुआ आदमी नहीं है, जिसके हाथ में है।

ऐसा अगर हो, तब तो हम कोई तरकीब निकाल ही लें उसको प्रभावित करने की। हम उसकी स्तुति कर सकते हैं, खुशामद कर सकते हैं। उस पर काम न चले, तो उसकी पत्नी होगी, उसको प्रभावित कर सकते हैं। उसके लड़के—बच्चे होंगे, कोई नाता—रिश्ता खोज सकते हैं, कोई रास्ता बन ही सकता है। अगर कहीं भगवान है व्यक्ति की तरह, तो हम से बच नहीं सकता। हम फल को नियोजित कर सकते हैं। उसके माध्यम से हम कुछ तय कर सकते हैं।

लेकिन ऐसा भगवान नहीं है। भगवान का कुल अर्थ है, इस जगत का जो अनंत विस्तार है अनंत कारणों का, इन अनंत कारणों के जोड़ का नाम भाग्य या भगवान है—जो भी आपको पसंद हो। जब हम कहते हैं, फल भाग्य के हाथ में है, तो इसका मतलब इतना है कि मैं अकेला नहीं हूं, अरबों कारण काम कर रहे हैं।

आप अपने घर से निकले। आप बड़ी योजनाएं बनाए चले जा रहे हैं। दूसरा आदमी अपनी कार लेकर निकला। वे शराब पी गए हैं। आपको उनका बिलकुल पता नहीं है कि वे चले आ रहे हैं तेजी से आपकी तरफ कार भगाते हुए। वे कब आपको पटक देंगे सड़क पर आपकी योजनाओं के साथ, आपको कुछ पता नहीं है। उनका आपने कुछ बिगाड़ा नहीं दिखाई पड़ता ऊपर से। शराब आपने उन्हें पिलाई नहीं। मगर वह सारी जिंदगी का नक्शा बदल दे सकते हैं। प्रतिपल हजारों काम आपके आस—पास चल रहे हैं। आप असहाय हैं। आप कर क्या सकते हैं? लेकिन जो आदमी फल पर बहुत आकांक्षा बांध लेता है, वह बड़ी मुश्किल में पड़ता है, क्योंकि फल पूरे नहीं हो पाते। जब पूरे नहीं हो पाते, तो विषाद से भर जाता है।

कृष्ण कहते हैं कि यह जो फल की आसक्ति है, यह रजोगुण का स्वभाव है!

और हे अर्जुन, सर्व देह—अभिमानियो के मोहने वाले तमोगुण को अज्ञान से उत्पन्न हुआ जान। वह इस जीवात्मा को प्रमाद, आलस्य और निद्रा के द्वारा बांधता है।

सत्व, ज्ञान और सुख के द्वारा, रज, आसक्ति और फल की आकांक्षा के द्वारा; और तम, अज्ञान, मूर्च्छा, प्रमाद, आलस्य के द्वारा है।

प्रमाद शब्द को ठीक से समझ लेना चाहिए। उसमें सारा रस तम का छिपा हुआ है। प्रमाद का अर्थ है, मूर्च्छा का एक भाव, बेहोश, अजागरूक। चले जा रहे हैं, किए जा रहे हैं, लेकिन कोई सावधानी नहीं है। जो भी कर रहे हैं, ऐसे कर रहे हैं, जैसे नींद में हों। क्यों कर रहे हैं, इसका पक्का पता नहीं। करें या न करें, इसका कोई बोध नहीं। क्या कर रहे हैं, इस ठीक करते हुए क्षण में चेतना का ध्यान, चेतना का प्रवाह उस कम की तरफ नहीं।

खाना खा रहे हैं। हाथ खाना खाए जा रहे हैं, यंत्रवत, क्योंकि उनकी आदत हो गई है। मन कहीं भागा हुआ है। मन न मालूम किन लोकों की यात्राएं कर रहा है! न मालूम मन किस काम में संलग्न है। तो आप यहां नहीं हैं। आप यहां बेहोश हैं।

बुद्ध कहते हैं, बस एक ही है साधना, कि तुम जहां हो, वहां तुम्हारी चेतना भी हो। तुम्हारा पैर उठे रास्ते पर, तो तुम्हारी चेतना भी पैर के साथ उठे। तुम होशपूर्वक हो जाओ। तुम पानी पीओ, तो वह पीना यंत्रवत न हो। तुम्हारा पूरा होश पानी के साथ तुम्हारे भीतर जाए।

बुद्ध ने कहा है, तुम्हारी श्वास बाहर जाए, तो होशपूर्वक; तुम्हारी श्वास भीतर आए, तो होशपूर्वक। बुद्ध की सारी प्रक्रिया इस अनापानसती—योग पर निर्भर है।

बड़ा अनूठा प्रयोग है अनापानसती—योग का, बड़ा सरल, कि श्वास का मुझे बोध बना रहे। जब श्वास नाक को छुए, भीतर जाती श्वास, तो मुझे पता रहे कि उसने स्पर्श किया नाक का। फिर नाक के भीतरी अंतस हिस्सों का स्पर्श किया, फिर श्वास भीतर गई, फेफड़ों में भरी, पेट ऊपर उठा, फिर श्वास वापस लौटने लगी। उसका आने का मार्ग, जाने का मार्ग, दोनों का बोध हो।

बर्मा में इसे वे विपस्सना कहते हैं। विपस्सना का मतलब है, देखना। देखते रहना, ध्यानपूर्वक देखते रहना।

कोई भी एक क्रिया को ध्यानपूर्वक देखते रहने का परिणाम परम बोध हो सकता है। और कोई व्यक्ति अगर अपने दिनभर की सारी क्रियाओं को देखता रहे, तो उसका प्रमाद टूट जाएगा। जब प्रमाद टूट जाता है, तो तम का बंधन गिर जाता है।

लेकिन हम सब बेहोश जीते हैं। हम जो भी करते हैं, वह ऐसा करते हैं, जैसे हिम्नोटाइब्द हैं। कुछ होश नहीं; चले जा रहे हैं, किए जा रहे हैं, यंत्रवत।

यह यंत्रवतता, आलस्य, प्रमाद, निद्रा, ये तम की आधारशिलाए हैं। इसलिए कृष्ण गीता में कहते हैं कि योगी, जब आप सोते हैं, तब भी सोता नहीं।

आप तो जब जागते हैं, तब भी सोते ही हैं। आपका जागना भी जागना नहीं है, सिर्फ नाममात्र जागना है। आप खुद भी कोशिश करें, तो कई बार दिन में अपने को सोया हुआ पकड़ लेंगे। जरा ही चौंकाएं अपने को.।

गुरजिएफ कहता था, एक झटका देकर खड़े हो जाएं कहीं पर, तो आप अचानक पाएंगे कि अभी तक सोया था। पर वह एक झटके ही में थोडी—सी झलक आएगी, जैसे किसी ने नींद में हिला दिया हो। फिर नींद पकड़ लेगी।

योगी, कृष्ण कहते हैं, सोता है तब भी सोता नहीं। उसका कुल मतलब इतना है कि उसके तम का जो बंधन है, वह टूट गया। प्रमाद नहीं है। विश्राम करता है। लेकिन भीतर उसके कोई जागा ही रहता है, जागा ही रहता है। कोई दीया जलता ही रहता है। वहा कोई पहरेदार सदा बना ही रहता है। ऐसा कभी नहीं कि घर खाली हो और पहरेदार सोया हो। वहा कोई पहरे पर बैठा ही रहता है।

इस पहरेदार को संतों ने—कबीर ने, दादू ने, नानक ने—सुरति कहा है। सुरति का अर्थ है, कोई स्मरणपूर्वक जगा रहे। स्मृति का ही रूप है सुरति। शब्द बुद्ध का है, स्मृति। फिर बिगड़ते—बिगड़ते, कबीर तक आते—आते वह लोकवाणी में सुरति हो गया।

कबीर कहते हैं, जैसे कोई कुलवधू कोई गाव की वधू कुएं से पानी भरकर घर लौटती है, तो सिर पर तीन—तीन मटकियां रख लेती है। हाथ से पकड़ती भी नहीं। पास की सहेलियों से गपशप भी करती है, हंसी—मजाक भी करती है, गीत भी गाती है और रास्ते पर चलती है। लेकिन उसकी सुरति वहीं लगी रहती है ऊपर, कि वे घड़े गिर न जाएं! उसने हाथ भी नहीं लगाया हुआ है। सिर्फ सुरति के सहारे ही सम्हाला हुआ है। वह सब बात करती रहेगी, हंसती रहेगी, रास्ते पर चलती रहेगी, कोई घड़ा गिरने को होगा, तो तत्काल उसका हाथ पहुंच जाएगा। उसकी स्मृति का धागा पीछे बंधा हुआ है। उसका ध्यान वहीं लगा हुआ है।

आपकी क्रियाएं ध्यानपूर्वक हो जाएं, तो अप्रमाद फलित होता है। और आपकी क्रियाएं गैर— ध्यानपूर्वक हों, तो प्रमाद होता है। हे अर्जुन, सब देहाभिमानियों को मोहने वाले तमोगुण को अज्ञान से उत्पन्न हुआ जान।

और अज्ञान का अर्थ यहां जानकारी की कमी नहीं है। अज्ञान का अर्थ है, आत्म—अज्ञान, अपने को न जानना।

जो अपने को नहीं जानता, वह जागेगा भी कैसे? वह किसको जगाए? कौन जगाए? और जो जागा हुआ नहीं है, वह अपने को कभी जानेगा कैसे? वे दोनों एक—दूसरे पर निर्भर बातें हैं। जो जितना ही जागता है, उतना ही स्वयं को पहचानता है। जो जितना स्वयं को पहचानता है, उतना ही जागता चला जाता है। परम जागरण आत्मज्ञान बन जाता है।

तमोगुण अज्ञान है। रजोगुण आसक्ति है। सत्वगुण सूक्ष्म अभिमान है, शुद्ध अभिमान है। ये तीन बंधन हैं।

क्योंकि हे अर्जुन, सत्वगुण सुख में लगाता है, रजोगुण कर्म में लगाता है, तमोगुण तो ज्ञान को आच्छादन करके, ढंककर प्रमाद में लगाता है।

और तीन ही तरह के व्यक्ति हैं इस जगत में। तीनों गुण सभी के भीतर हैं। लेकिन सभी के भीतर तीनों गुण समान मात्राओं में नहीं हैं। किसी के भीतर सत्वगुण प्रमुख है, तो सत्वगुण दो को दबा देता है। इसको ठीक से समझ लें।

जिस व्यक्ति के भीतर सत्वगुण प्रमुख है, जिसे शांति, सुख, ज्ञान की तलाश है, उस व्यक्ति का रजोगुण, उस व्यक्ति का तमोगुण भी इसी तलाश में संलग्न हो जाता है। उस व्यक्ति के पास जितनी कर्मठता है, जितनी शक्ति है, जितनी ऊर्जा है रज की, वह सारी ऊर्जा वह ज्ञान की तलाश में लगा देता है। वह सारी ऊर्जा, वह सारा कर्म सुख की खोज में

लग जाता है। और उस व्यक्ति के भीतर जितना तम है, जितना आलस्य है, वह सब भी ज्ञान की तलाश में, सुख की तलाश में, विश्राम की जो जरूरत पड़ेगी, उसमें लग जाता है।

अगर किसी व्यक्ति में तम प्रमुख है, तो उसके पास छोटी—मोटी बुद्धि अगर हो, थोड़ी—बहुत समझ हो, तो वह समझ को भी अपने आलस्य को सिद्ध करने में लगाता है। वह अपनी समझ को भी इस तरह उपयोग करता है कि आलस्य का रेशनलाइजेशन हो जाए, वह बुद्धियुक्त मालूम होने लगे। वह कहेगा, करने से क्या सार है? करके क्या कर लोगे? करने से क्या मिलने वाला है?

उसके पास जो भी रजोगुण है, जो भी ऊर्जा है, शक्ति है, वह इस शक्ति को भी इस भांति नियोजित करेगा कि वह कर्म न बन पाए। वह क्रियाएं तो करेगा, लेकिन क्रियाएं ऐसी होंगी, जो उसे और आलस्य में ले जाएं। वह आदमी चलेगा, तो चलकर शराबघर पहुंच जाएगा। उसकी क्रिया चलने में लगेगी, लेकिन जाएगा वह शराबघर। अगर उसको शराब खरीदनी हो, तो वह दिन में मेहनत भी करेगा। लेकिन मेहनत करके खरीदेगा शराब।

अगर किसी व्यक्ति में रजोगुण प्रमुख हो, तो वह अपनी सारी चेतना को, सारी शक्तियों को भाग—दौड़ में लगा देगा। क्रिया प्रमुख हो जाएगी। करना ही जैसे लक्ष्य हो जाएगा। कुछ करके दिखाना है। वह अपना सुख भी छोड़ सकता है उसके लिए, अपना विश्राम भी छोड़ सकता है। लेकिन कुछ करके दिखाना है।

इतिहास ऐसे ही लोग बनाते हैं, जिनमें रजोगुण प्रमुख है। राजनेता रजोगुणी है। कुछ करके दिखाना है। नाम छोड़ जाना है। इतिहास के पृष्ठों पर लिखा जाए।

और ध्यान रहे, तायनबी ने, एक बहुत बड़े इतिहासज्ञ ने, एक बहुत मधुर बात कही है। उसने कहा है, इतिहास बनाना ज्यादा आसान है बजाय इतिहास लिखने के। क्योंकि इतिहास तो गधे भी बना सकते हैं।

इतिहास बनाने में क्या लगता है? गोडसे बनने में क्या दिक्कत है? एक पिस्तौल चाहिए एक छुरा चाहिए, एक हथगोला काफी है। कुछ भी उपद्रव तो कर ही सकते हैं। इतिहास निर्मित होना शुरू हो जाता है। अब जब तक गांधी की याददाश्त रहेगी, तब तक गोडसे को भूलने का कोई उपाय नहीं। गोडसे ने किया क्या है? करने के नाम पर बहुत ज्यादा नहीं है। उपद्रव किया जा सकता है।

जिनमें भी रजोगुण भारी है, वे किसी न किसी तरह के उपद्रव में, किसी तरह की मिस्चीफ में संलग्न होते हैं। अगर वे बुरे हो जाएं, तो डाकू हो जाएंगे। अगर बुरे न हों, भाग्य से ठीक शिक्षा—संस्कार मिल जाए, तो राजनेता हो जाएंगे। डाकुओं को थोड़ी अकल हो जाए, तो राजनेता हो जाएंगे। राजनेताओं की थोड़ी अकल खो जाए, तो डाकू हो जाएंगे। उनमें परिवर्तन जरा भी दिक्कत का नहीं है। वे करीब ही खड़े हैं। वे सगे, मौसेरे भाई— भाई हैं।

अगर छोटा—मोटा हत्यारा हो, तो हत्यारा रह जाएगा। अगर बड़ा हत्यारा हो, तो तैमूर, चंगेज और हिटलर के साथ जुड़ जाएगा। अगर छोटी—मोटी किसी की संपत्ति पर कब्जा करे, तो चोर समझा जाएगा। अगर बडे साम्राज्यों पर कब्जा कर ले, तो सम्राट हो जाएगा। और साधु उसका गुणगान करेंगे, प्रशस्ति लिखेंगे।

रजोगुणी अपनी सारी शक्ति को लगा देता है, सारी समझ को, सारे विश्राम को, एक ही काम में कि कुछ करना है। वह करना कहां ले जाएगा, उस करने का क्या अर्थ होगा, करने का कोई परिणाम शुभ होगा, अशुभ होगा, इसका बहुत प्रयोजन नहीं है।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि हिटलर बचपन में चित्रकार होना चाहता था, पेंटर होने की आकांक्षा थी। और बैठकर बड़े चित्र बनाता रहता था। लेकिन कई एकेडमी में गया वह, लेकिन सभी जगह से उसको निराश वापस लौटना पड़ा। वह कुशल चित्रकार नहीं हो सकता था। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि काश, उसको किसी एकेडमी ने जगह दे दी होती, तो वह कागज रंगने में समय बिता देता, दुनिया का इतना उपद्रव नहीं होता। हो सकता था लाल रंग से कागज रंगता, लेकिन इतने खून से जमीन न रंगता।

लेकिन वह चित्रकार नहीं हो सका। वह बेचैनी उसको रह गई। उसके कुछ कर के दिखाना था। उसे कुछ बड़ा होना था। और वह बेचैनी धीरे— धीरे राजनीति की तरफ मुड़ गई। फिर वह खतरनाक

आदमी साबित हुआ। हालांकि चित्रकला से उसका प्रेम कभी नहीं खोया। अपने कमरे में खूबसूरत चित्र उसने लगा रखे थे और चित्रों का पारखी था। संगीत में उसे रस था और पुराने शास्त्रीय संगीत के रिकार्ड सुनता था। वह एक चित्रकार हो सकता था। लेकिन उसकी सारी, रजोगुण की सारी शक्ति, जो चित्रकार बनने के दरवाजे से लौट गई, वह राजनीति में नियोजित हो गई।

इंग्लैंड अकेला मुल्क है आज, जहां विद्यार्थियों का बहुत उपद्रव नहीं है। सारी जमीन पर उपद्रव है। और कुल कारण इतना है कि इंग्लैंड अकेला ही मुल्क है, जहां विद्यार्थियों को अभी भी दो —तीन घंटे खेल के मैदान पर खेलना पड़ता है। रजोगुण नियोजित हो जाता है।

तीन घंटे जो बच्चा फुटबाल या वालीबाल खेलकर लौटा है, उससे आप कहो कि पत्थर मारो, कांच तोड़ो लोगों के मकान के, वह कहेगा, घर जाने दो। जो बच्चा छ: घंटे बैठा रहा है कुर्सी पर और हिलने भी नहीं दिया गया। और शिक्षक कहता है, बिलकुल बुद्धवत बैठे रहना। पत्थरों को छुपाकर रखे है। यह लडका कुछ तोड़ना चाहेगा, फेंकना चाहेगा।

फुटबाल या वालीबाल सिर्फ फेंकने, मिटाने, तोड्ने के व्यवस्थित उपाय हैं, कुछ और नहीं है। आखिर कर क्या रहा है, हाकी खेल रहा है एक लड़का। हाकी में नहीं मारने दोगे इसको लट्ठ, तो यह किसी के सिर पर मारेगा। यह जो गेंद है, यह सिर का काम कर रही है। इसका निकला जा रहा है रजोगुण।

दुनिया में विश्वविद्यालय जलाए जा रहे हैं, स्कूल तोड़े जा रहे हैं। वह तब तक जारी रहेगा, जब तक कि युवकों का रजोगुण नियोजित नहीं होता। और खतरे इसलिए बढ़ गए हैं। रजोगुण तो पहले भी था, लेकिन रजोगुण नियोजित हो जाता था।

हम अपने मुल्क में बाल—विवाह कर देते थे। रजोगुण को मौका नहीं रहता था कि जाकर काच तोड़े, आग लगाए, बसें जलाए, कुछ उपद्रव करे। इसके पहले कि होश सम्हले एक पत्नी बांध देते थे। वह इतना बड़ा वजन है कि उससे बड़ा वजन कोई है ही नहीं। उसको ही ढोओ। उसमें सारा रजोगुण नियोजित हो जाता है। इसके पहले कि अकल में थोड़े—बहुत अंकुर आएं, बच्चे पैदा हो जाएंगे। अब लड़ने—झगड़ने का इनके पास कहीं कोई उपाय नहीं। ये बड़े शांतमूर्ति मालूम पड़ेंगे!

इस भारत में ऐसे ही लोग थे बड़ी संख्या में उसका कारण और कुछ नहीं था। यह नहीं कि लोग धार्मिक थे। कुल कारण इतना था कि रजोगुण को सुविधा नहीं थी। लोग इसके पहले कि उपद्रव कर पाएं, उपद्रव की शक्ति किसी दिशा में संलग्न हो जाती थी।

अब सारी दुनिया में बच्चे जवान हो जाते हैं, न तो विवाहित किए जा रहे हैं, न उनके ऊपर कोई जिम्मेवारी है। मां—बाप सुख संपन्न हैं। उनके पास सुविधा है। तो लड़के पच्चीस और तीस साल तक आवारागर्दी कर सकते हैं। यह खतरनाक वक्त है। क्योंकि वैज्ञानिक कहते हैं, अठारह साल में वीर्य की ऊर्जा अपने शिखर को छू लेती है। इतनी शक्ति फिर जीवन में दुबारा नहीं होगी, जितनी अठारह साल में होगी।

अठारह साल, जब कि शक्ति अपने पूरे तूफान में है, उसका कोई नियोजन नहीं है। उसको कोई दिशा नहीं है बहने के लिए। केतली के नीचे आग जल रही है पूरी ऊर्जा से और ढक्कन बंद है। और निकालने का हम जो रास्ता बताते हैं, वह कोई रास्ता नहीं है, कि हम उनको कहते हैं, युनिवर्सिटी में पढ़ो—लिखो किताब! किताब से कोई ऊर्जा नहीं निकलती। उसमें थोड़े से जो सत्वगुण प्रधान युवक हैं, उनके लिए तो ठीक है। लेकिन बाकी का क्या हो?

पिछले जमाने में तो जो सत्वगुण प्रधान थे, वे ही विश्वविद्यालय तक पहुंचते थे, बाकी जिंदगी में लग जाते थे। अब सभी को विश्वविद्यालय पहुंचाने की सुविधा हो गई है। सौ में कोई पाच सत्वगुण प्रधान होंगे, बाकी जो पंचानबे हैं, उनके साथ

बड़ा खतरा है। उस पंचानबे में आधे के करीब रजोगुण प्रधान हैं, जिनकी शक्ति का कोई उपयोग नहीं हो रहा है। किताब जिनकी शक्ति को नहीं पी सकती, परीक्षाएं जिनकी शक्ति को नहीं पी सकतीं। तो वे परीक्षा और किताब के माध्यम से भी उपद्रव खड़ा कर देंगे। हर परीक्षा के वक्त उपद्रव खड़ा हो जाएगा।

यह उपद्रव जो कर रहा है, वह रजोगुण प्रधान है। और बाकी जो आधे बचे तमोगुण प्रधान, वे आलसी हैं। वे कुछ भी न करेंगे। अगर युनिवर्सिटी में आग लग रही है, तो बुझाने वे जाने वाले नहीं; वे खडे देखते रहेंगे। न वे लगाने वाले को रोकने वाले हैं, न लगने वाली आग को रोकने वाले हैं।

आज विश्वविद्यालय में तीन तरह के वर्ग हैं। एक छोटा—सा वर्ग है, जो पीड़ित है। वह सत्वगुण प्रधान है। वह पीड़ित है सबसे ज्यादा, क्योंकि उसको काम ही करने, वह जो करना चाहता है, कि अध्ययन करे, कि शोध करे, वह कोई करने नहीं दे रहा उसको। पर वह बहुत कमजोर है। क्योंकि वह रजोगुण प्रधान नहीं है कि लड़ सके, उपद्रव कर सके। इसके बहुत पहले कि लड़ने की हालत

आए, उसकी आंख पर चश्मा लग जाता है, उसकी कमर झूक जाती है। वह अपना अपनी पुस्तक में, अपने अध्ययन में लगा हुआ है। उसको इस सबका मौका नहीं है।

बड़ा वर्ग है, जो उपद्रव करना चाहता है। क्योंकि उसके पास शक्ति है और शक्ति को बहने के लिए रास्ता चाहिए।

फिर तीसरा वर्ग है, जो आलसी है। जो सिर्फ देखता है। जो तमाशबीन हो सकता है ज्यादा से ज्यादा। जो कोई पक्ष नहीं लेता। कुछ भी हो रहा हो, वह देखता रहता है।

व्यक्ति में जो भी तत्व प्रमुख होगा, बाकी दो तत्व उसके पीछे संलग्न हो जाते हैं।

सत्वगुण सुख में लगाता है, रजोगुण कर्म में और तमोगुण प्रमाद में डुबा देता है।

इन तीनों गुणों से मुक्ति चाहिए। कैसे तीनों गुणों से मुक्ति हो सकती है, उसकी साधना—विधि नें हम आगे प्रवेश करेंगे।

और जब भी कोई व्यक्ति तीनों गुणों के बाहर हो जाता है, उसे हमने गुणातीत अवस्था कहा है। वह परम सिद्धि है। इसलिए कृष्ण शुरू में कहते हैं कि हे अर्जुन, जिस परम ज्ञान से सिद्धि उपलब्ध होती है, अंतिम गंतव्य उपलब्ध होता है, वह मैं तुझे फिर से कहूंगा।

गीता दर्शन–(भाग–7)
अध्याय—14 (प्रवचन—चौथा) — होश: सत्व का द्वार

सूत्र:
रजस्तमश्चाभिभूय सत्वं भवति भारत।
रजः सत्वं तमश्चैव तमः सत्व रजस्तथा ।।10।।
सर्वद्वरेषु देहेऽस्मिप्रकाश उयजाक्ते।
ज्ञानं यदा तदा विद्यद्ववृद्धं सत्वमित्युत।।11।।
लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा।
रजस्यैतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ ।।12।।
और हे अर्जुन, रजोगुण और तमोगुण को दबाकर सत्वगुण होता है अर्थात बढता है तथा रजोगुण और सत्वगुण को दबाकर तमोगुण बढ़ता है; वैसे ही तमोगुण और सत्वगुण की दबाकर रजोगुण बढ़ता है।

इसलिए जिस काल में इस देह में तथा अंतःकरण और इंद्रियों में चेतनता और बोध—शक्ति उत्पन्न होती है, उस कल्प में ऐसा जानना चाहिए कि सत्वगुण बड़ा है। और हे अर्जुन, रजोगुण के बढने पर लोभ और प्रवृत्ति अर्थात सांसारिक चेष्टा तथा सब कार के क्रमों का स्वार्थ— बुद्धि से आरंभ एवं अशांति अर्थात मन की चंचलता और विषय—भोगों की लालसा, ये सब उत्पन्न होते है

पहले थोड़े प्रश्न।
पहला प्रश्न :
आपने कहा कि कृष्ण चाहते हैं अर्जुन मिट जाए और इसीलिए अलग— अलग द्वारों से गीता के अलग— अलग अध्यायों में वे अर्जुन को मिटने का उपाय बता रहे हैं। और आपने यह भी कहा कि कृष्ण अर्जुन का भविष्य जानते हैं। तो यह समझाएं कि यदि कृष्ण पहले से ही जानते हैं कि अर्जुन का भविष्य क्या है, स्वधर्म क्या है, तो फिर इतने सारे विभिन्न मार्गों का अर्जुन को उपदेश क्यों दे रहे हैं? उन मार्गों को क्यों समझा रहे हैं, जो अर्जुन के स्वधर्म के अनुकूल नहीं हैं?
निश्चय ही कृष्ण जानते हैं अर्जुन का भविष्य, व्यक्ति की तरह नहीं, मनुष्य की तरह। वह जो अर्जुन नाम का व्यक्ति है, उसका भविष्य नहीं जाना जा सकता। लेकिन वह जो अर्जुन के भीतर छिपी हुई चेतना है, उसका भविष्य जाना जा सकता है।

इस अर्थ में तो कृष्ण जैसा व्यक्ति सभी का भविष्य जानता है, आपका भी। क्योंकि वह जो भीतर छिपा हुआ बीज है, उसका अंतिम परिणाम मोक्ष है। वही भविष्य है। वह सभी का भविष्य है। नदी बहती है, वह चाहे गंगा हो, चाहे यमुना हो, चाहे गोदावरी हो, चाहे नर्मदा हो, भविष्य ज्ञात है कि वे सागर में गिरेंगी। हर नदी सागर में गिरेगी। लेकिन प्रत्येक नदी अलग—अलग मार्गों से बहेगी, अलग—अलग पर्वतों को तोड़ेगी, अलग चट्टानों में मार्ग बनाएगी। प्रत्येक नदी का मार्ग तो अलग—अलग होगा, लेकिन अंत एक होगा।

मनुष्य का भविष्य शांत है। जैसे बीज का भविष्य ज्ञात है कि वह वृक्ष होगा, वैसे ही मनुष्य का भविष्य ज्ञात है कि वह अंततः परम स्थिति को उपलब्ध हो जाएगा। वही अर्जुन के संबंध में भी ज्ञात है। लेकिन अर्जुन का जो व्यक्तित्व है अज्ञान से भरा हुआ; अर्जुन का जो व्यक्तित्व है अनंत संदेहों, अविश्वासों, शंकाओं, समस्याओं से भरा हुआ; वह जो रुग्ण चित्त है, उस रुग्ण चित्त का कोई भविष्य किसी को भी ज्ञात नहीं है। उस रुग्ण चित्त की यात्रा अनेक ढंग से हो सकती है। इसलिए कृष्ण अनेक मार्गों की बात कर रहे हैं।

पहली तो बात यह खयाल में ले लें। अर्जुन भी बहुत तरह से यात्रा कर सकता है। विकल्प अनेक हैं। अगर प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक ही मार्ग होता, सुनिश्चित, तब तो कोई अर्थ न था कृष्ण का इतने मार्गों की बात करने का। लेकिन एक व्यक्ति भी बहुत—सी संभावनाएं लिए हुए है। और हर संभावना का द्वार खुला छोड़ देना जरूरी है, ताकि अर्जुन चुनाव कर सके। और चुनाव के लिए जरूरी है कि सभी मार्ग स्पष्ट हों, अन्यथा भ्रांति हो सकती है। हर मार्ग उसकी परिपूर्णता में स्पष्ट हो जाए, तो अर्जुन का बोध स्वयं ही उस मार्ग को पकड़ने लगेगा, जो मार्ग उसके अनुकूल है।

आपके सामने चुनाव होने चाहिए पूरे। अगर एक भी मार्ग आपके सामने न रखा जाए, तो भी आप कुछ चुनेंगे। और यह भी हो सकता है कि जो मार्ग आपके सामने नहीं था, वही आपके लिए निकटतम मार्ग होता।

फिर कृष्ण अर्जुन के लिए मार्ग नहीं चुन रहे हैं। सिर्फ अर्जुन को मार्ग दिखा रहे हैं। चुनाव अर्जुन को स्वयं ही करना है।

इसे खयाल में ले लें। अंतिम चुनाव सदा आपका है। गुरु इशारे कर सकता है, स्पष्ट कर सकता है, लेकिन चुनाव सदा आपका है। बहुत—से लोग इस भांति में होते हैं। कोई गुरु आपके लिए चुन

नहीं सकता। आपको चुनना पड़ेगा। गुरु सारे मार्ग स्पष्ट कर देगा। उन सारे स्पष्ट मार्गों के बीच निर्णय आपको लेना है। और अगर आप यह तय करते हैं कि गुरु ही हमारे लिए चुने, यही आपका निर्णय है, तो यह निर्णय भी आपका है। अंतिम निर्णायक आप हैं। अगर आप सारे मार्गों के संबंध में समझकर—क्योंकि यह भी एक मार्ग है कि गुरु आपके लिए चुने—यही निर्णय लेते हैं कि गुरु हमारे लिए चुने, तो आपने गुरु को तो चुना। गुरु आपके लिए चुने, यह भी आपने चुना। और अंतिम निर्णायक सदा आप हैं। आत्मा से अंतिम निर्णय नहीं छीना जा सकता।

इसलिए जो परम गुरु है, वह सारे मार्ग स्पष्ट कर देगा। वह कुछ भी छिपाकर न रखेगा।

बुद्ध ने जगह—जगह बार—बार कहा है कि मेरी मुट्ठी खुली हुई है। उसमें मैंने कुछ भी छिपाया नहीं है। अनेक बार बुद्ध के शिष्यों को लगा है कि बुद्ध जितना कह रहे हैं, पता नहीं वे पूरा कह रहे हैं जो उन्होंने जाना है या कुछ छिपा रहे हैं।

आनंद उनसे एक दिन पूछ रहा है कि आपने सब कह दिया जो जाना है या आपने कुछ छिपाया है?

बुद्ध ने कहा, मेरी मुट्ठी खुली हुई है। मैंने कुछ भी नहीं छिपाया। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि मैंने जो—जो दिखाया है, वह तुम्हें दिखाई पड़ने लगा है। क्योंकि तुम्हारी आंखें पूरी खुली हुई नहीं हैं। मुट्ठी भी पूरी खुली हो, तो भी तो देखने वाले की आंख पूरी खुली होनी चाहिए।

कृष्ण की मुट्ठी बिलकुल खुली हुई है। उन्होंने सारे मार्ग अर्जुन के सामने रख दिए हैं, सब विकल्प स्पष्ट कर दिए हैं, और अर्जुन को इस चौराहे पर खड़ा कर दिया है कि वह चुनाव कर ले। उन्होंने प्रत्येक मार्ग की पूरी प्रशंसा कर दी है। प्रत्येक मार्ग का पूरा विश्लेषण कर दिया है। किसी मार्ग के साथ पक्षपात भी नहीं किया कि सभी मार्गों में एक श्रेष्ठ है। ऐसा अगर उन्होंने कहा होता, तो उसका मतलब होता कि वे अर्जुन को बेच रहे हैं मार्ग। कोई चीज अर्जुन को बेचना चाहते हैं। स्पष्ट नहीं, सीधे नहीं, परोक्ष मार्ग से अर्जुन को राजी करना चाहते हैं कि तू इसे चुन ले।

इसलिए कृष्ण ने सभी मार्गों की जो गरिमा है, वह प्रकट कर दी है, बिना किसी एक मार्ग को सब मार्गों के ऊपर रखे। चुनाव के लिए अर्जुन पूरा स्वतंत्र है। पहला तो इस कारण। '

और दूसरा इस कारण भी, एक बहुत पुरानी अरबी कहावत है कि इसके पहले कि आदमी सही जगह पर पहुंचे, उसे बहुत—से गलत दरवाजे खटखटाने पड़ते हैं। इसके पहले कि कोई आदमी ठीक द्वार पर आ जाए उसे बहुत—से गलत दरवाजों में भी खोजना पड़ता है।

असल में गलत में जाना भी ठीक पर आने के लिए अनिवार्य अंग है। भूल करना भी ठीक हो जाने की प्रक्रिया का हिस्सा है। यह थोड़ा जटिल है। क्योंकि हम सोचते हैं, जो ठीक है, जो साफ है, वह हमें दे दिया जाए। लेकिन आप समझ नहीं पा रहे हैं। आध्यात्मिक जीवन कोई वस्तु की भांति नहीं कि आपके हाथ में दे दें। आध्यात्मिक जीवन वस्तु नहीं है, एक ग्रोथ, एक विकास है। और ध्यान रहे, जब भी किसी को विकसित होना हो, तो उसे गलत से भी गुजरना पड़ता है, भ्रात से भी गुजरना पड़ता है, भटकना भी पड़ता है। भटकाव भी आपको प्रौढ़ता लाता है। जो व्यक्ति भूल करने से डरता है, वह ठीक तक कभी भी नहीं पहुंच पाएगा। डर के कारण वह कदम ही नहीं उठाएगा। भय के कारण वह पंगु हो जाएगा, रुक जाएगा।

डर तो सदा है कि गलती हो जाए। और अगर जीवन में डर न हो गलती होने का, तो जीवन में कोई रस ही न हो, जीवन एक मुर्दा चीज हो। सिर्फ मरे हुए आदमी भूल नहीं करते। जिंदा आदमी तो भूल करेगा। और जितना जिंदा आदमी होगा, उतनी ज्यादा भूल करेगा।

एक ही बात खयाल रखने की है कि जिंदा आदमी एक ही भूल दुबारा नहीं करेगा। बहुत भूलें करेगा, लेकिन एक ही भूल दुबारा नहीं करेगा। और जितनी ज्यादा भूलें कर सकें आप, जितनी नई भूलें कर सकें, उतने आप प्रौढ़ होंगे। हर भूल सिखाती है। हर भूल भूलों को कम करती है। हर भूल से आप सही के करीब सरकते हैं।

तो एक तो जैसा साधारणत: आलसी मन की आकांक्षा होती है कि गुरु कुछ बना—बनाया, रेडीमेड, हाथ में दे दे। तो आपकी झंझट बच गई। झंझट क्या बच गई! आपके विकास की सारी संभावना ही समाप्त हो गई।

आप कैसे बढ़ेंगे? आपका बीज कैसे अंकुरित होगा? आप कैसे वृक्ष बनेंगे? तूफान से डरते हैं, हवाओं से डरते हैं, वर्षा से डरते हैं, धूप भी आएगी, सब होगा। उन सबके बीच आप टिक सकें, इसकी सामर्थ्य, इसका साहस चाहिए।

कोई आपका हाथ पकड़कर और परमात्मा तक पहुंचा दे, तो आप तो मुर्दा होंगे ही, वह परमात्मा भी मुर्दा होगा जिस तक आप पहुंचेंगे। तो कोई आपका हाथ पकड़कर कहीं पहुंचा नहीं सकता। अर्जुन की भी आकांक्षा यही है कि कृष्ण सीधा क्यों नहीं कह देते! जिम्मेवारी खुद ले लें। सीधी बात कह दें। ही और न में वह भी उत्तर चाहता है।

हम सभी हां और न में उत्तर चाहते हैं। कई बार मेरे पास लोग आ जाते है, वे कहते है, आप सीधा हां और न में हमे कह दें। ईश्वर है या नहीं? आप हा या न में कह दें। जैसे ईश्वर कोई गणित का सवाल है या तर्क की पहेली है कि हां और न में उसका जवाब सकता हो!

ईश्वर तक वही पहुंचेगा, जो न से भी गुजरे, हा से भी गुजरे और जो दोनों के पार हो जाए। और उस घड़ी में आ जाए, जहां न तो ही कहना सार्थक मालूम पड़े, न न कहना सार्थक मालूम पड़े। वही पहुंच पाएगा।

जो सोचे कि न कहने से बच जाऊं, सिर्फ हा कह दू र उसकी आस्तिकता लचर और कमजोर होगी। जो आस्तिकता न की अग्नि से नहीं गुजरी है, वह कचरा है, उसमें से कचरा तो जल ही नहीं पाया, सोना तो निखर नहीं पाया।

और जो नास्तिकता सिर्फ न पर रुक गई और हौ तक नहीं पहुंची, उस नास्तिकता में कोई प्राण नहीं है। क्योंकि न में कोई प्राण नहीं होते। प्राण तो हा से आते हैं। वह नास्तिकता सिर्फ बौद्धिक होगी, उससे जीवंत आंदोलन, भीतर की क्रांति, रूपांतरण संभव नहीं है। हा और न दोनों से गुजरकर जो दोनों के पार हो जाता है, वह पहली दफा धार्मिक होता है। लेकिन वह धार्मिकता बडी विराट है। अर्जुन की आकांक्षा है कि कृष्ण कुछ कह दें सीधा सूत्र, फार्मूला। वह खुद विकसित नहीं होना चाहता। कोई भी विकसित नहीं होना चाहता।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, आप कुछ कर दें कि मन शांत हो जाए। अशांत तुमने किया, जन्मों—जन्मों में। मेरा उसमें जरा भी हाथ नहीं। शांत मैं करूं! यह हो नहीं सकता। और जो कहता है कि ऐसा करेगा, वह आपको धोखा दे रहा है। और वह आपको और इस जीवन को भी अशांति में बिताने का उपाय किए दे रहा है।

अगर यह हो सकता है कि कोई और आपके मन को शांत कर दे, तो ध्यान रखना, वह शांति बहुत कीमत की नहीं है। क्योंकि कोई आपको अशांत कर सकता है फिर। उस शांति के आप मालिक नहीं हैं, जो दूसरे ने आपको दी है। वह छीनी भी जा सकती है। और ऐसी शांति का क्या मूल्य, जो छीनी जा सके! ऐसे अध्यात्म का क्या मूल्य है, जो कोई दे और कोई ले ले! जिसका दान हो सके, जिसकी चोरी हो सके!

सिर्फ आपके भीतर जो विकसित होता है, वह छीना नहीं जा सकता।

इसलिए कृष्ण हां और न में उत्तर नहीं दे रहे हैं। कृष्ण सारे विकल्प सामने रखे दे रहे हैं। उससे अर्जुन और भी बिगचन में पड़ गया, और भी उलझन में पड़ा जा रहा है। उसने जितने प्रश्न उठाए थे, कृष्ण ने उनसे ज्यादा उत्तर दे दिए हैं। उसने जो पूछा था, उससे बहुत ज्यादा कृष्ण दिए दे रहे हैं। उससे वह और डावाडोल हुआ जा रहा होगा। उसकी बेचैनी और बढ़ रही होगी। वह वैसे ही उलझा है और इतनी बातें और उलझा देंगी।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, हम आपको नहीं सुने थे, तभी ठीक थे। आपको सुनकर हम और भी उलझ गए हैं। आप इतनी बातें कहे चले जा रहे हैं! आप हमें कुछ साफ—साफ कह दें, निश्चित कह दें। और वही करने को हमें बता दें।

आपको पता नहीं, आप अपनी आत्महत्या मांग रहे हैं। आप जीने से डरे हुए हैं। आप मरे—मराए सूत्र चाहते हैं। कोई कृष्ण, कोई बुद्ध आपके साथ आपकी आत्मघाती वृत्ति में सहयोग नहीं दे सकता है।

अर्जुन चाहे और बेचैन हो जाए, कोई हर्जा नहीं है। क्योंकि आप ठीक से बेचैन हो जाएं, तो आप चैन के मार्ग को खोजने में तत्पर हो जाएंगे। शायद और उलझ जाए, कोई हर्जा नहीं है। भय क्या है? इस और उलझन से सुलझाने की जो चेष्टा होगी, उससे आपका भीतरी विकास होगा, अंतःप्रज्ञा जगेगी। संघर्ष से ही उस भीतर की अंतःप्रज्ञा का जन्म है।

तो कृष्ण सब उपस्थित किए दे रहे हैं, और अर्जुन पर छोड़े दे रहे हैं कि वह चुने। वे सूत्र भी उसे दे रहे हैं वे, जिन्हें अर्जुन चुने, तो भटकेगा, जिनसे उसके स्वधर्म का कोई मेल नहीं है। वे सूत्र भी दे रहे हैं, जिन्हें अर्जुन चुन ले, तो वह मार्ग पर चल पड़ेगा। लेकिन कृष्ण बिलकुल बिना पक्षपात के दोनों बातें कहे दे रहे हैं।

कृष्ण सिर्फ कह ही नहीं रहे हैं, कहते वक्त वे देख भी रहे हैं, अर्जुन का निरीक्षण भी कर रहे हैं; अर्जुन को जांच भी रहे हैं, वह किस तरफ झुकता है! क्यों झुकता है!

गुरु के लिए यह भी जानना जरूरी है कि शिष्य कहा—कहा झूक सकता है; क्या—क्या चुन सकता है। क्या गलत की तरफ उसकी वृति हो सकती है? या कि सही के प्रति उसका सहज झूकाव है। कृष्ण अगर बोल ही रहे होते, तो भी एक बात थी। पूरे समय अर्जुन कृष्ण के सामने जैसे एक प्रयोगशाला की टेबल पर लेटा हो, जहां उसका डिसेक्शन भी हो रहा है, जहां उसके शरीर के टुकड़े—टुकड़े तोडे जा रहे हैं, जहां उसके मन को तोड़ा जा रहा है। और कृष्य की गहरी आंखें उसके देख रही हैं कि वह क्या कर रहा है! उसके ऊपर क्या प्रभाव पड़ते हैं! जब कृष्ण कुछ कहते हैं, तो उसके चेहरे पर क्या आकृिते आती है! उसके भीतरी प्रभामंडल में क्या घटनाएं घटती हैं! उसके आस—पास चेहरे का जो प्रकाश—वर्तुल है, उस पर कौन से रंग फैल जाते हैं!

यह एक गहरा निदान है, जहां अर्जुन ठीक एक्सरे के सामने खड़ा है। और जहां उसका रोआं—रोआं जांचा जा रहा है। अर्जुन को शायद इसका पता भी न हो। अर्जुन शायद सिर्फ सोच रहा हो कि मेरे प्रश्नों के उत्तर दिए जा रहे हैं। कोई गुरु सिर्फ आपके प्रश्नों के उत्तर नहीं देता। प्रश्नों के उत्तर के माध्यम से आपको परखता है, जांचता है, तोड़ता है, पहचानता है। आपके झुकाव देखता है।

मेरे पास लोग आते हैं। कोई मेरे पास कुछ दिन पहले आया, उसने कहा कि जो भी आप कहें, मैं करने को राजी हूं। वह यह कह रहा है, लेकिन उसका पूरा व्यक्तित्व इसका इनकार कर रहा है। उसके चेहरे पर यह कहते वक्त कोई प्रसन्नता का भाव नहीं है, कोई आनंद की झलक नहीं है। वह धोखा दे रहा है। उसके कहने पर भरोसा करने का कोई कारण नहीं है। वह कहने के लिए कह रहा है, शायद औपचारिक। शायद उसका यह मतलब भी नहीं है। शायद उसने ठीक से सोचा भी नहीं है कि वह क्या कह रहा है कि जो आप कहेंगे, वह मैं करूंगा!

यह बहुत बडा वक्तव्य है। और बडे निर्णय की सूचना है। और संकल्पवान व्यक्ति ही ऐसा आश्वासन दे सकता है।

और इसके कहने के बाद ही वह व्यक्ति मुझे कहता है कि कोई मुझे रास्ता बताएं, क्योंकि मैं कोई निर्णय नहीं ले पाता। और संकल्प मेरा बड़ा कमजोर है। सुबह तय करता हूं दोपहर बदल जाता हूं।

उसे पता नहीं कि वह क्या कह रहा है। और जब वह कहने लगा कि सुबह तय करता हूं, दोपहर बदल जाता हूं संकल्प की कमी है, निर्णय पक्का नहीं है, तब उसके चेहरे पर ज्यादा आभा है, ज्यादा प्रसन्नता है। अब वह सच के ज्यादा करीब है। पहले वक्तव्य के समय वह जैसे बेहोश था, होश में नहीं बोला था।

मैंने उससे कहा कि तू अपना पहला वक्तव्य फिर से दोहरा। क्योंकि अगर दूसरी बात सही है, तो तू पहले कैसे कह सकता है मुझे आकर कि जो आप कहेंगे वह मैं करूंगा? यह तो बहुत बड़ा निर्णय है। क्योंकि हो सकता है कि मैं कहूं, तू खिड़की के बाहर कूद जा।

नहीं, वह आदमी बोला कि नहीं—नहीं, आप ऐसा कैसे कह सकते हैं! आप ऐसा कभी नहीं कह सकते।

कृष्ण अर्जुन के सामने सारी बातें रख रहे हैं। और सारी बातों का अर्जुन पर क्या परिणाम हो रहा है, क्या प्रतिक्रिया हो रही है, वह कैसे संवेदित हो रहा है; कब आनंदित होता है, कब दुखी होता है, कब विषाद से भरता है, कब झूकता है, कब अकड़ा रह जाता है; उस सब की जांच भी चल रही है।

इसके पहले कि अर्जुन पहुंचे निर्णय पर, कृष्ण को पता चल जाएगा कि वह क्या निर्णय ले रहा है। उसके मन का कांटा पूरे वक्त डोल रहा है, निर्णय के करीब पहुंच रहा है। और यह मन अगर सिर्फ चेतन ही होता, तो अर्जुन इसे पहले समझ लेता। यह मन अचेतन भी है। उसे अर्जुन नहीं समझ पाएगा। लेकिन उसे कृष्ण समझ पाएंगे।

अर्जुन जैसे ही निर्णय के करीब पहुंचने लगेगा, उसके मन का काटा ठहरने लगेगा, उसके चारों तरफ की आभा और सुगंध और व्यक्तित्व बदलने लगेगा। और इसके पहले कि वह कहे कि मैं निर्णय पर आ गया, कि तुमने मेरे सारे संदेह दूर किए, कि मेरी निष्पत्ति मुझे उपलब्ध हो गई, कृष्ण इसके पहले जान लेंगे।

ध्यान रहे, आपके गहरे अचेतन में जो घटता है, उसको आपको भी पता लगाने में समय लग जाता है। कई दफे तो वर्षों लग जाते हैं।

आज ही एक युवती ने मुझे आकर कहा, किसी के घर में मेहमान है। जिसके घर में मेहमान है, वह आदमी उस युवती को लगता है, कुरूप है। आकर्षण तो नहीं, विकर्षण पैदा होता है। उसे देखकर ही उसको घबड़ाहट होती है। उससे बात करने का मन नहीं होता। वह पास बैठे, तो बेचैनी और सिकुडाव पैदा होता है। उस व्यक्ति से एक रिपल्शन है, एक गहरा विकर्षण है। उस युवती ने मुझे आकर कहा, लेकिन कल रात उसके मन में उस व्यक्ति के प्रति प्रेम का भाव उठने लगा। और उससे वह बहुत घबड़ा गई है।

सुबह मेरे पास रोती हुई आई और उसने कहा कि मैं बहुत घबड़ा गई हूं क्योंकि उस व्यक्ति को तो मैं देख भी नहीं सकती। वह कुरूप है; भद्दा है; घृणोत्पादक है, वीभत्स है। रात लेकिन मेरे मन में उसको प्रेम करने का भाव उठने लगा। तो मैं अपने मन से घबड़ा गई हूं कि यह भाव मेरे मन में कैसे उठा।

यह भाव अचानक नहीं उठ गया। कुछ भी अचानक नहीं उठता। यह भाव अचेतन में संग्रहीत हो रहा होगा। आते— जाते, जैसे बीज टूटता है, अंकुर जमीन तक आते— आते समय लगता है, ऐसे अचेतन से चेतन तक खबर आने में समय लगता है।

और शायद यह जो उसका भाव है विकर्षण का कि यह व्यक्ति आकर्षक नहीं है; घृणा पैदा होती है, यह शायद सिर्फ रक्षा का उपाय है। वह जो भीतर से अंकुर आ रहा है इस व्यक्ति के प्रति आकर्षण का, उससे अपने को बचाने के लिए कवच है। चेतन मन ने एक कवच बना लिया है। जिससे हम बचना चाहते हैं, उसके प्रति हम बुरे भाव ले लेते हैं।

असल में बुरे भाव हम तभी लेते हैं, जब हम आकर्षित हो जाते हैं। विकर्षण कभी पैदा नहीं होता, पहले आकर्षण पैदा होता है। घृणा कभी पैदा नहीं होती; पहले प्रेम पैदा होता है। शत्रु कोई पहले नहीं बना सकता, पहले तो मित्र बनाना ही होगा, तब ही हम किसी को शत्रु बना सकते हैं।

लेकिन कई बार ऐसा होता है कि किसी आदमी को देखकर ही हमें लगता है कि शत्रुता का भाव मालूम होता है, उसका मतलब है कि उस आदमी को देखते ही पहले अचेतन में मित्रता का भाव पैदा हो गया।

शत्रुता सीधी पैदा नहीं हो सकती, वह मित्रता के बाद ही पैदा हो सकती है। और घृणा भी सीधी पैदा नहीं होती, वह प्रेम के बाद ही पैदा हो सकती है। इसीलिए घृणा, शत्रुता नकारात्मक हैं, निगेटिव हैं। निगेटिव कभी सीधा पैदा नहीं होता; पहले पाजिटिव चाहिए। क्या आप सोच सकते हैं कि कोई आदमी जन्मे ही नहीं और मर जाए! मरने के पहले जन्म जरूरी है। क्योंकि मृत्यु नकारात्मक है। मृत्यु होगी किसकी?

अगर प्रेम पैदा नहीं हुआ, तो घृणा होगी कैसे पैदा? और अगर आकर्षण पैदा नहीं हुआ, तो विकर्षण का कोई उपाय नहीं है। अगर कोई मरे, तो मान लेना चाहिए कि वह जन्म गया होगा। बिना जन्मे तो कोई मर नहीं सकता। मृत्यु जन्म का आखिरी छोर है। विकर्षण आकर्षण का आखिरी छोर है। आकर्षण पहले अचेतन में पैदा हो जाएगा, तो हम उससे बचने के लिए विकर्षण की परिधि बना लेंगे। अब वह भीतर की चोट चेतन तक आ गई, तो अब घबड़ाहट पैदा हो गई है। अब डर पैदा हो गया है।

आपके भीतर भी क्या पैदा होता है, इसको आपको भी पता लगाने में कभी—कभी वर्षों लग जाते हैं। लेकिन अर्जुन के भीतर क्या हो रहा है, इसको पता लगाने में कृष्ण को वर्षों नहीं लगेंगे। कृष्ण के लिए अर्जुन पारदर्शी है, ट्रासपैरेंट है।

इसलिए तानी के पास अज्ञानी को एक तरह का भय लगता है। वह भय बिलकुल स्वाभाविक है। आप शानी के पास जाने से बचते भी हैं, डरते भी हैं। उस भय और बचाव के पीछे कारण है। क्योंकि जो—जो आपके भीतर छिपा है, जो—जो आपने छिपा रखा है, जिसे आपने अपने से ही छिपा रखा है, जिसे आप भूल ही चुके हैं कि आपके भीतर है, वह भी इतनी की आंख के सामने उभरने लगेगा और प्रकट होने लगेगा। आप अपने को छिपा न पाएंगे।

और कोई आपको आर—पार देख ले, तो बेचैनी अनुभव होगी। कोई आपकी आंखों में उतरकर आपको भीतर तक पकड़ ले, तो आप बहुत चिंता में पड़ जाएंगे। क्योंकि आप आश्वस्त नहीं हैं अपने रूप से। और आप निर्भय रूप से अपने को स्वीकार भी नहीं किए हैं। बहुत—सा हिस्सा अस्वीकृत है, जिसको आपने अपने ही तलघरों में छिपा रखा है। वह आप भी जानते हैं कि गंदा है। उसे कोई जान ले, उसे कोई उघाड़ दे, उसे कोई पहचान ले, आप छिपाए हुए हैं। आपने अपने असली चेहरे को न मालूम कहां छिपा रखा है। आपने कुछ मुखौटे पहन रखे हैं।

कृष्ण इन सारी चर्चाओं के बीच अर्जुन को बहुत—बहुत ढंग से उघाड़ रहे हैं। वे उसकी भीतरी प्रतिक्रियाओं को, संवेदनाओं को पकड़ रहे हैं। वे उसके मन के कांटे को देख रहे हैं कि वह किस तरह डांवाडोल होता है, वह कहां जा रहा है। और इसके पहले कि अर्जुन निर्णय पर आए...।

और वह निर्णय क्रांतिकारी होगा। क्योंकि जब संशय गिरता है और असंशय श्रद्धा पैदा होती है, तब एक महान आनंद का क्षण जीवन में उपस्थित होता है। जब सारी अश्रद्धा टूट जाती है और परम आस्था का उदय होता है, तो यह एक जन्म है, एक महाजन्म है, अंधकार के बाहर, प्रकाश में। सारा भटकाव समाप्त हुआ। मंजिल आंखों के सामने आ गई। अब कितनी ही दूर हो, चलने की ही बात है। लेकिन मंजिल पर कोई शक न रहा।

और जब ऐसी घड़ी आती है, तो गुरु, इसके पहले कि शिष्य को पता चले, जान लेता है। क्योंकि शिष्य का पूरा आभामंडल, उसका पूरा व्यक्तित्व बदलने लगता है। जहां वह अशांत था, वहा शांत होने लगता है। जहां वह बेचैन था, वहां एक चैन की हवा उसके चारों तरफ पैदा हो जाती है। जहां वह दौड़ रहा था, अब ठहर गया। जहां लगता था, जीवन व्यर्थ है, कुछ सार नहीं, वहां लगता है कि परम निधि उपलब्ध हो गई; कोई खजाना मिल गया, जो कभी भी चुकेगा नहीं। जहां कंपन था भय का, वहां अभय की थिरता आ जाती है।

जैसे तूफान अचानक शांत हो गया हो और दीए की लौ थिर हो गई हो और जरा भी न कंपती हो, ऐसे शिष्य के भीतर की चेतना ठहर जाती है। इसे वह खुद पहचाने इसमें देर लगेगी, कई कारणों से। एक तो इस कारण भी कि यह अनुभव उसके लिए पहला है। इसको रिकग्राइज करने का, इसकी प्रत्यभिज्ञा का उसके पास कोई उपाय नहीं है। यह वह पहली दफा जान रहा है। अगर इसने इसके पहले भी जाना होता, तो वह तत्क्षण पहचान लेता कि क्या हो रहा है।

इसलिए कई बार तो ऐसा हुआ है कि कोई साधक अगर अकेले में इस क्षण के करीब भी आ जाता है, तो चूक जाता है। इसलिए गुरु बड़ा अपरिहार्य हो जाता है। क्योंकि वह पहचान ही नहीं पाता कि क्या हो रहा था। वह मंजिल के बिलकुल करीब आकर भी रास्ता मुड़ सकता है उसका। वह एक कदम पर, और मंदिर के भीतर हो जाता, कि वह बाएं मुड़ गया। उसे पता नहीं था कि एक ही कदम पर मंदिर करीब है।

गुरु पास हो, तो यह भटकाव बचा सकता है। वह फिर एक परिस्थिति पैदा कर देगा, जिससे कदम दाएं मुड़े, बाएं न मुड़ जाए। मोड़ नहीं सकता पैर को, लेकिन विकल्प उपस्थित कर सकता है। तो कृष्ण इन अठारह अध्यायों में क्रमश: बहुत—से विकल्प मौजूद कर रहे हैं। यह एक सूक्ष्म प्रक्रिया है, जिसमें अर्जुन को वे मार्ग दिखा रहे हैं। अर्जुन कैसा चल रहा है, कहां चल रहा है, वह उन्हें बोध है। वह जैसे—जैसे कदम उठाता है, वैसे—वैसे वे नई बातें, नए तत्व और नए जीवन के द्वार उसके सामने खोलते हैं। आहिस्ता—आहिस्ता, जैसे कोई छोटे बच्चे को किसी अनजान रास्ते पर ले जा रहा हो, वैसे कृष्ण अर्जुन को ले चल रहे हैं।

और कठिनाई इसलिए बढ़ जाती है कि छोटे बच्चे का तो हाथ पकड़कर भी हम ले जा सकते हैं। आत्मिक जीवन की राह पर किसी पर कोई जबरदस्ती नहीं की जा सकती। दूसरे की स्वतंत्रता को परिपूर्ण रूप से सुरक्षित रखकर ही काम करना पड़ता है।

इसलिए गुरु का काम अति दुरूह है। अनुशासन भी देना है उसे और स्वतंत्रता को कायम भी रखना है। तुम्हें मिटाना भी है और तुम्हारी गरिमा को नष्ट नहीं होने देना है। तुम्हारा गौरव जरा भी न छू पाए, और तुम्हारा अहंकार बिलकुल नष्ट हो जाए। तुम्हारा कचरा तो जल जाए, लेकिन तुम्हारे सोने में कण भी न खोए।

इसलिए कृष्ण अर्जुन की आंतरिकता का भविष्य जानते हैं। कृष्ण, अर्जुन इस क्षण में, मौजूद क्षण में कैसा डांवाडोल हो रहा है, उसका मन किन दिशाओं में भटक रहा है, उसे भी देख रहे हैं। वे क्या कह रहे हैं, उसके प्रति अर्जुन के क्या उत्तर और क्या संदेह उठ रहे हैं, वे भी उनके सामने हैं। लेकिन वे एक व्यूह रच रहे हैं।

एक तो महाभारत का व्यूह था, जो अर्जुन ने रचा है। और एक उससे भी बड़े युद्ध का व्यूह कृष्ण अर्जुन के आस—पास रच रहे हैं। बिना धकाए अर्जुन को परम मंदिर में प्रविष्ट करवा देना है। और अर्जुन को पता भी न चले कि किसी ने उसे किसी भी तरह से जबरदस्ती की है।

ध्यान रहे कि अगर मोक्ष में आप जबरदस्ती भेज दिए जाएं, तो मोक्ष नरक हो जाएगा। नरक में भी आप अपनी चेतना से और अपने चुनाव से जाएं, तो नरक भी स्वर्ग हो सकता है। क्योंकि स्वतंत्रता अंतिम बात है। स्वतंत्रता से कोई नरक में भी चला जाए, तो भी सुखी होगा। और परतंत्रता से कोई स्वर्ग में भी चला जाए, तो दुखी हो जाएगा।

परमात्मा के पास आपको अपनी निजता से ही पहुंचना चाहिए। तो गुरु इशारे कर सकता है, परोक्ष व्यवस्थाएं दे सकता है, परिस्थितियां पैदा कर सकता है। लेकिन सीधा आपको घसीट नहीं सकता।

प्रश्न :
मुझे लगता है कि प्रमाद मुझ पर भारी। उससे हलका होने के लिए क्या किया जाए?
प्रमाद के प्रति जागरूकता!

करने से प्रमाद दूर नहीं होगा। छिप सकता है। जैसे कोई आलसी आदमी बैठा है। हम आमतौर से उससे क्या कहें कि उसका आलस्य टूट जाए! हम कहें कि कुछ करो।

ध्यान रहे, आलस्य है तम, हम उसे कुछ काम में लगा सकते हैं। लेकिन काम में लगाना होगा रज। तो तमोगुणी को रजोगुणी बनाना बहुत कठिन नहीं है। वह निष्क्रिय बैठा है, उसे सक्रियता में जुटाया जा सकता है। असली सवाल तमोगुणी से रजोगुणी बन जाने का नहीं है। असली सवाल, चाहे आप रजोगुणी हों, चाहे तमोगुणी हों, सत्वगुणी बनने का है। और सत्वगुणी बनने का एक ही उपाय है कि आप जागरूक हों। जो भी स्थिति है, उसके प्रति जागरूक हों।

एक आलसी आदमी बैठा है, तो हम उससे कहेंगे कि तू अपने आलस्य के प्रति सजग हो जा। भीतर से तू जान, पहचान, और देख। आलस्य को छिपा मत। और आलस्य को युक्तियां खोजकर ढांक मत। तर्क मत खोज। आलस्य को उसकी नग्नता में देख। और कुछ भी मत कर, सिर्फ देख।

अगर दर्शन की यह क्षमता, साक्षीभाव का यह उपाय आलस्य पर लागू हो जाए, तो यह व्यक्ति सत्व में सरक जाएगा।

और यही हम कहेंगे रजोगुणी को भी, जो सक्रियता में डूबा हुआ है। उससे भी हम कहेंगे कि तू अपनी सक्रियता के प्रति सजग हो जा, तू अपने कर्म का जो पागलपन है, उसके प्रति जाग जा; होश से भर। तो रजोगुणी भी होश के माध्यम से सत्य में प्रवेश करता है। होश सत्व का द्वार है।

और ध्यान रहे, रजोगुणी और तमोगुणी तो एक—दूसरे के ही रूप हैं। एक शीर्षासन कर रहा है, एक पैर के बल खड़ा है। एक सक्रियता में पागल है। और एक निष्क्रियता में डूबा हुआ मूर्च्छित पड़ा है। दोनों मूर्च्छित हैं। जो आलस्य में पड़ा है, वह इसलिए मूर्च्छित है कि उसके चारों तरफ एक निद्रा का वातावरण है। और जिसको हम सक्रिय देखते हैं, वह भी मूर्च्छित है, क्योंकि क्रिया भी मूर्च्छा लाती है। अगर आप जोर से किसी क्रिया में लग जाएं, तो स्वयं को भूल जाते हैं।

अक्सर ऐसा होता है कि जब तक कोई राजनीतिज्ञ पदों पर होता है, तब तक बिलकुल स्वस्थ मालूम होता है। जैसे ही पदों से हटता है, कि बीमार होना शुरू हो जाता है। राजनीतिज्ञ पदों से हटकर ज्यादा दिन जिंदा नहीं रहते। पदों पर जिंदा रहते हैं। और न केवल जिंदा रहते हैं, बडे स्वस्थ रहते हैं। और कई दफे चकित होना पड़ता है, क्योंकि इतने पागलपन के चक्कर में भी उनका स्वास्थ्य अनूठा मालूम पड़ता है।

लेकिन कारण है उसका। कारण उसका यही है कि उन्हें कभी अपना खयाल ही नहीं आता। काम में इस तरह डूबे हैं कि काम एक नशा है, एक शराब है।

आप भी जब तक काम में लगे हैं, तब तक सोचते हैं कि कब विश्राम मिल जाए। लेकिन जिस दिन रिटायर हो जाएंगे, उस दिन अचानक पाएंगे कि दस साल उम्र आपकी कम हो गई।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जो आदमी अस्सी साल जीता, वह रिटायर होने के बाद सत्तर साल में मर जाएगा। दस साल, रिटायरमेंट जिस दिन होता है, उसी दिन उम्र से कम हो जाते हैं। क्योंकि नशा छिन जाता है। और जिंदगीभर का नशा था, काम—काम, सुबह से सांझ तक काम। अचानक एक दिन आप पाते हैं कि कोई काम नहीं बचा। नशा टूट जाता है।

काम भी एक नशा है। बहुत—से लोग इसीलिए काम में लगे रहते हैं कि काम में न लगें, तो वे बड़ी मुश्किल में पड़ जाएंगे। खाली नहीं बैठ सकते। कुछ हैं, जो खाली बैठ सकते हैं, काम में नहीं जा सकते। क्योंकि उनको लगता है, काम में गए तो उनकी नींद टूटती है। नींद में उन्हें सुख मालूम पड़ता है, बेहोशी का।

ये दोनों अलग— अलग तरह के लोग नहीं हैं। एक ही तरह के लोग हैं। सिर्फ एक—दूसरे से उलटे खड़े हैं। एक शीर्षासन कर रहा है और एक पैर के बल खड़ा है।

वह जो तामसी है, वह पड़ा रहता है अपनी नींद में, क्योंकि नींद उसे नशा है। जब भी वह काम में लगता है, तो नशा टूटता है। जो काम में लगा हुआ आदमी है, वह रात में सो भी नहीं सकता। रात में भी उसका मन काम करता है। उसको नींद मुश्किल है। उसका काम ही उसका नशा हो गया है।

इसलिए तमोगुणी को रजोगुणी में बदलने का कोई सार नहीं है। रजोगुणी को तमोगुणी में बदलने का कोई सार नहीं है। दोनों को ही सत्वगुणी में बदलने का सार है। और सत्वगुण में जाने का सूत्र है, होश। वह अभी हम कृष्ण के वचन में चलेंगे, तो खयाल में आ जाएगा।

सूत्र :

और हे अर्जुन, रजोगुण और तमोगुण को दबाकर सत्वगुण होता है अर्थात बढ़ता है तथा रजोगुण और सत्वगुण को दबाकर तमोगुण बढ़ता है, वैसे ही तमोगुण और सत्वगुण को दबाकर रजोगुण बढ़ता है।

जिस काल में इस देह में तथा अंतःकरण और इंद्रियों में चेतनता और बोध—शक्ति उत्पन्न होती है, उस काल में ऐसा जानना चाहिए कि सत्वगुण बढ़ा है।

तो सत्वगुण का एक ही लक्षण है, चेतनता। जब आप होश से भरे हैं, तब जानना कि सत्वगुण बढ़ा है। सत्वगुण चाहिए हो, तो जितना ज्यादा आप होशपूर्वक हो सकें, उतना शुभ है। जो भी आप करें, क्षुद्र से क्षुद्र या बड़े से बड़ा काम, वह होशपूर्वक हो, उसमें काशसनेस हो, उसे करते वक्त आप जागे हुए करें, सो न जाएं। जितनी जागरूकता की मात्रा बढ़ेगी, उतना आपके भीतर सत्वगुण ज्यादा हो जाएगा; उतने आप साधु, उतने आप सात्विक हो जाएंगे।

यह बड़े मजे की बात है। क्योंकि कृष्ण जैसा कह रहे हैं, ऐसा आमतौर से धार्मिक लोग नहीं समझते हैं। धार्मिक लोग समझते हैं, अच्छे काम करो, तो सात्विक हो जाएंगे। कृष्ण लेकिन अच्छे काम को कुछ जगह नहीं दे रहे हैं। कृष्ण कहते हैं, होशपूर्वक! चाहे करो और चाहे न करो, लेकिन होशपूर्वक रहो, तो सात्विकता पैदा होगी।

तो एक आदमी खाली भी बैठा हो और होश से भरा हो, तो सात्विक होगा। और एक आदमी समाज की सेवा कर रहा हो, मरीजों की अस्पताल में देखभाल कर रहा हो और होशपूर्वक न हो, तो सात्विक नहीं होगा। आप अपनी जान भी दे दें सेवा में, लेकिन होश न हो, तो आप सात्विक नहीं होंगे। और आप कभी जिंदगी में किसी की सेवा न किए हों, आलस्य में बैठे रहे हों, लेकिन भीतर आलस्य के होश जगा रहा हो, तो आप सात्विक होंगे।

इसका यह मतलब नहीं है कि सात्विक आदमी अच्छे काम नहीं करेगा। सात्विक ही अच्छे काम कर सकता है। लेकिन सात्विकता अच्छे काम करने से नहीं आती, अच्छे काम सात्विकता से आते हैं। तो जो जितना जागा हुआ है, वह उतना प्रेमपूर्ण होगा। वह उतना करुणामय होगा, वह उतना तत्पर होगा कि किसी का दुख मिटा सके, तो मिटाने की कोशिश करे। यह सेवा पैदा होगी उसकी जागरूकता से, उसकी जागरूकता का परिणाम होगी।

लेकिन इससे बड़ी भांति पैदा हुई है। इससे ऐसा लगता है कि जो सेवा कर रहा है, वह सात्विक हो गया। इस भ्रांति को गांधी ने इस देश में काफी जोर दिया। अच्छा काम करो। समाज का, देश का, दरिद्र का, दीन का कुछ हित करो, कल्याण करो, यही साधुता का लक्षण है। सेवा धर्म है, गांधी ने कहा।

शब्द बड़े अच्छे हैं। और जिनके पास बहुत गहरी परख नहीं है, उन्हें .बिलकुल ठीक लगेंगे। लेकिन बिलकुल विपरीत हैं। धर्म सेवा है, लेकिन सेवा धर्म नहीं है। धार्मिक व्यक्ति से सेवा उठेगी, लेकिन कोई सेवा को ही साध ले, तो धार्मिक हो जाएगा, इस भूल में पड़ने की कोई भी जरूरत नहीं है। इसका परिणाम भी सामने है, लेकिन फिर भी मुल्क जागता नहीं।

गांधी ने जितने सेवक पैदा किए थे, वे सब शोषक सिद्ध्र हुए। जिनको उन्होंने तैयार किया था सब कुछ छोड़ देने के लिए, त्याग के लिए, वे सत्ताधिकारी हो गए और उन्होंने सब कुछ पकड़ लिया। छोड़ने की तो बात ही अलग हो गई।

जैसे ही मुल्क से सत्ता बदली, जो सेवक था, वह अचानक शासक हो गया। तो सेवक था, शायद मजबूरी थी इसलिए। अब कोई सेवक बनने को तैयार नहीं। या अब भी अगर कोई सेवक बनता है, तो साधन की तरह, क्योंकि शासक तक जाने का रास्ता सेवक होने से गुजरता है।

अगर आपकी गर्दन दबानी हो, तो पैर दबाने से शुरू करना चाहिए। धीरे—धीरे आप आश्वस्त हो जाते हैं कि आदमी पैर ही दबा रहा है, कोई खतरा नहीं है। जैसे ही आप आश्वस्त होते हैं, वह आदमी आगे बढ़ता चला जाता है। जब तक आपकी गर्दन तक आता है, तब तक आप सोए होते हैं; तब दबाने में कोई अड़चन नहीं रह जाती। सीधे गरदन को ही दबाना कोई शुरू करे, तो आप भी चौंक जाएंगे। आप भी कहेंगे, यह किस तरह की सेवा है? शासक बनना हो, तो पैर दबाने से शुरू करना आसान पड़ता है। सेवा भी सत्ता में पहुंचने का उपाय हो जाती है। इस मुल्क में हुई। सभी जगह होगी। लेकिन' भ्रांति सेवकों में नहीं थी, सेवकों को जो समझाया गया, उस मूल सूत्र में थी।

सेवा धर्म नहीं है, यद्यपि धर्म सेवा है।

तो जो व्यक्ति जितना सचेतन हो जाएगा भीतर, उसके जीवन से जो भी होगा, वह शुभ होगा। फिर जरूरी नहीं है कि वह सेवा करे ही। क्योंकि रमण ने किसी की कोई सेवा नहीं की शांत में। कोई नहीं कह सकता कि उन्होंने किसी का

पैर दबाया, कोढ़ी की मालिश की। रमण बिलकुल खाली बैठे रहे। प्रत्यक्ष में तो कोई सेवा रमण ने नहीं की। अप्रत्यक्ष में की। लेकिन वह तो केवल वे ही देख सकते हैं, जिनको अप्रत्यक्ष देखना आता हो।

अगर सेवकों में गिनना हो, तो गांधी को, विनोबा को गिना जा सकता है। रमण को कोई भूलकर नहीं गिनेगा। सेवा कहीं दिखाई नहीं पड़ती। लेकिन जो भी व्यक्ति धर्म को उपलब्ध हो जाता है, उससे कल्याण तो होता ही है।

कुछ हैं जो स्थूल कल्याण में लगते हैं, कुछ हैं जो सूक्ष्म कल्याण में लग जाते हैं। उनकी मौजूदगी कल्याण का महास्रोत हो जाती है। उनके आस—पास से गुजरने वाले लोग, जहां तक उनकी हवाएं उनकी खबर को ले जाती हैं, उनके अस्तित्व की सुगंध को ले जाती हैं, वहा—वहा तक न मालूम कितने जीवन रूपांतरित होते हैं।

निश्चित ही वे किसी के शरीर की बीमारी दूर करने नहीं जाते। लेकिन शरीर से गहरी बीमारियां हैं। और शरीर को बिलकुल स्वस्थ कर दिया जाए तो भी वे बीमारियां नहीं मिटती हैं। उन बीमारियों को दूर करने का अपरोक्ष, अप्रत्यक्ष आयोजन उनकी मौजूदगी से होता रहता है। लेकिन वह सूक्ष्म कला है; सभी उसमें कुशल नहीं हो सकते।

बुद्ध का शिष्य है, महाकाश्यप। बुद्ध ने सभी शिष्यों को भेजा कि जाओ, बहुजन हिताय बहुजन सुखाय, लोगों को समझाओ, लोगों को जगाओ। लेकिन महाकाश्यप को कभी नहीं भेजा। सारिपुत्र को भेजा, मौदगल्यायन को भेजा। और सैकड़ों शिष्य थे, उनको भेजा कि तुम जाओ, लोगों को जगाओ, लोगों को ज्ञान दो, ध्यान दो; लोगों को करुणा का सूत्र दो, लोगों को सजग बनाओ। लेकिन महाकाश्यप को कभी नहीं भेजा।

आनंद एक जगह बुद्ध से पूछता है, आपने सब को भेजा, लेकिन कभी आप महाकाश्यप को आज तक नहीं कहे कि तू कहीं जा, कुछ कर! बुद्ध ने कहा, महाकाश्यप का होना ही करना है। उसे कहीं भेजने की जरूरत नहीं। वह जहां है, उसके होने से काम हो रहा है। वह बैठा है झाड़ के नीचे, तो भी काम हो रहा है। उस रास्ते से जो लोग गुजर जाएंगे, वे भी उसके कणों को ले जा रहे हैं।

वह महाकाश्यप, अगर हम ठीक से समझें, तो इनफेक्शस है। वह जिस बुद्धत्व को उपलब्ध हुआ है, वह बुद्धत्व संक्रामक है, वह उसकी मौजूदगी से फैलता है। उसे सक्रिय रूप से सीधे—सीधे काम में नहीं लग जाना होता है।

बड़ी गहरी चेतनाएं चुपचाप भी करती रहती हैं। निर्भर करेगा इस बात पर कि किस तरह का व्यक्ति है। अगर अंतर्मुखी व्यक्ति ज्ञान को उपलब्ध होगा, सत्य को उपलब्ध होगा, तो वह चुप हो जाएगा, मौन हो जाएगा, शांत हो जाएगा। उसकी मौजूदगी से काम होगा, उसके प्रभाव अप्रत्यक्ष होंगे, पर बड़े गहरे होंगे, दूरगामी होंगे।

अगर बहिर्मुखी व्यक्ति होगा और सत्व को उपलब्ध हो जाएगा, तो उसके प्रभाव विस्तीर्ण होंगे, स्थूल होंगे, बहुत लोगों की सेवा उससे होगी, लेकिन बहुत दूरगामी नहीं होगी। विस्तीर्ण होगी, लेकिन गहरी नहीं होगी। मरीज उससे ठीक होंगे, किसी को जमीन भूमि—दान करवाएगा; किसी को धन, किसी को मंदिर बनवाएगा; कहीं धर्मशाला खुलवाएगा; कहीं गरमी में प्याऊ डलवाएगा; पर उसका काम ऊपर—ऊपर होगा। उससे लाभ होगा, लेकिन वह लाभ स्थूल होगा।

रमण न तो प्याऊ खुलवाते, न भूदान करवाते, न मंदिर बनवाते। पर उनका प्रभाव दूरगामी है। सदियों तक जो लोग भी उनकी तरफ अपने मन को टयून करने में सफल हो जाएंगे, वे उनसे प्रभावित होंगे, आंदोलित होंगे, रूपांतरित होंगे। पर वह अदृश्य की घटना है; सभी को दिखाई नहीं पड़ सकती।

सत्व जब पैदा होता है, तो शुभ आंचरण में अपने आप आता है। हे अर्जुन, रजोगुण और तमोगुण को दबाकर सत्वगुण पैदा होता है।

इस प्रक्रिया को समझ लेना चाहिए कि ये गुण कैसे काम करते हैं। रजोगुण और तमोगुण को दबाकर सत्वगुण पैदा होता है। ये तीनों गुण सभी के भीतर मौजूद हैं। कोई गुण बाहर से लाना नहीं है। तीनों गुण भीतर मौजूद हैं। और तीनों गुणों में जो ऊर्जा काम करती है, वह भी मौजूद है। वह ऊर्जा एक है। ये तीन गुण हैं, वह ऊर्जा एक है।

जैसे समझें कि आपके घर में एक मात्रा का जल है, और घर में से तीन छेद हैं, जिनसे वह जल बाहर जा सकता है। आप चाहें तो एक ही छेद से उस जल को बाहर भेज सकते हैं, तब धारा बड़ी हो जाएगी। आप चाहें तो तीनों छिद्रों से उस जल को बाहर भेज सकते हैं; तब धाराएं क्षीण हो जाएंगी। आप चाहें तो एक से ज्यादा, दूसरे से कम और तीसरे से और कम जल को भेज सकते हैं।

आपकी जीवन—ऊर्जा की धारा आपके पास है। और यह तीन गुणों का यंत्र आपके पास है। जब आप बिना किसी साधना के जीते हैं, तो सिर्फ परिस्थितियां ही निर्धारक होती हैं कि किस गुण से आपकी ऊर्जा बहेगी—परिस्थितियां, आप नहीं।

और ध्यान रहे, प्रत्येक व्यक्ति प्रतिपल बदलता रहता है। सुबह हो सकता है तमोगुणी रहा हो, और दोपहर को रजोगुणी हो जाए, और शाम को सत्वगुणी मालूम पड़े। लेकिन परिस्थितियां निर्धारक होती हैं।

समझ लें कि आप सुबह ही उठे और पा रहे हैं कि चित्त आलस्य से भरा है, उठने का कोई मन नहीं, दिनभर बिस्तर में ही पड़े रहें। और तभी पता लगा कि मकान में आग लग गई। तमोगुण तत्क्षण विदा हो जाएगा। आप एकदम रजोगुणी हो जाएंगे। एकदम से तम के द्वार से जो ऊर्जा बह रही थी, वह खींच ली जाएगी। और पूरी की पूरी ऊर्जा रज के द्वार से प्रवाहित होने लगेगी। क्योंकि मकान में आग लगी है; आग बुझाना जरूरी है।

उस वक्त आप नहीं कह सकते कि मैं आलस्य में हूं। अभी मेरा मन नहीं उठने का। आप भूल ही जाएंगे कि नींद भी कोई तत्व है जीवन में, कि बिस्तर में पड़े रहने में भी कोई रस हो सकता है। छलांग लगाकर बिस्तर से उठेंगे, जैसा आप कभी नहीं उठे थे। लेकिन यह घटना घट रही है परिस्थितिवश।

बाहर आकर आपको पता चले कि अफवाह थी, किसी ने ऐसे ही चिल्ला दिया कि मकान में आग लगी है। कहीं कोई आग नहीं लगी। आप वापस अपने बिस्तर में लौट आएंगे। रजोगुण तमोगुण में प्रविष्ट हो गया। वह जो ऊर्जा जगकर सक्रिय होना चाहती थी, वह फिर विश्राम को उपलब्ध हो गई।

बाहर की परिस्थिति आपको चौबीस घंटे चला रही है। इसलिए अगर आपमें भरोसा करने वाले लोग आपके चारों तरफ हों...। आप चोर हैं, और आपके पास आठ—दस लोग हों, जो आपको मानते हों कि आप साधु हैं, तो हो सकता है कि उनकी मान्यता के कारण आपकी धारा सत्वगुण से बहने लगे। क्योंकि वे बारह आदमी आपके अहंकार को बढा रहे हैं। वे कह रहे हैं कि आप महासाधु हैं। अब आप चोरी करना भी चाहें, तो आपका अहंकार बाधा देता है कि कम से कम मुश्किल से तो जिंदगी में बारह आदमी मिले, जो साधु मानते हैं, अब दो—चार पैसे की चोरी के लिए साधुता को खोना उचित नहीं मालूम होता।

ऐसा हुआ। मैं एक साधु का जीवन पढ़ता था। एक झेन फकीर हुआ। वह चोर था साधु होने के पहले। एक महल से चोरी करके भागा। पुलिस उसके पीछे है; लोग उसको पकड़ने आ रहे हैं। कोई उपाय न देखकर, कोई मार्ग न देखकर, वह एक बुद्ध मंदिर में प्रवेश कर गया। सुबह कोई चार बजे रात का समय था। कोई भिक्षु सोया था, उसके कपड़े टंगे थे। उसने भिक्षु के कपड़े पहन लिए और मंदिर में हाथ—पालथी मारकर बुद्धासन में बैठ गया। नमो बुद्धाय, नमो बुद्धाय का मंत्र जाप करने लगा।

सिपाही भागे हुए मंदिर के पीछे आए। वे उसका पीछा कर रहे थे। लेकिन वहा एक साधु बैठा है, नमो बुद्धाय का पवित्र मंत्र गज रहा है। वहां कोई चोर नहीं। वे सिपाही उसके चरणों में झूके, उसको नमस्कार किए; और कहा, साधु महाराज, यहां कोई चोर तो नहीं आया?

जब वे उसके चरणों में झुके, तब उसे बड़ी हैरानी हुई। और एक क्रांति हो गई। उसे लगा कि मैं एक झूठा साधु! और झूठी साधुता में इतना बल—झूठी साधुता में—कि जो मेरी हत्या करने मेरे पीछे लगे थे, वे मेरे चरणों में झुक गए! अगर झूठी साधुता में इतना बल है, तो सच्ची साधुता में कितना बल होगा!

उसने उन सिपाहियों से कहा कि चोर आया था, लेकिन अब तुम उसे खोज न पाओगे। वह चोर मर चुका।

वे सिपाही बोले, हम समझे नहीं! आप रहस्य की बातें न करें। हम सीधे—सादे लोग। हम समझे नहीं आपका मतलब! चोर कहां है? कैसे मर गया?

उस साधु ने कहा, मैं ही था वह चोर, लेकिन अब मैं मर चुका हूं। और वह चोर अब तुम्हें कहीं भी नहीं मिलेगा। वह नहीं है अब। तुमने मेरे चरणों में झुककर उसकी हत्या कर दी। तुम गोली से उसे नहीं मार सकते थे, लेकिन तुमने उसे मार दिया। और जब झूठी साधुता में इतना अर्थ हो सकता है, तो मैं अब उस साधुता की तलाश करूंगा, जो सच्ची है।

वह एक बड़ा झेन फकीर हो गया। वह सदा यह घटना लोगों से कहा करता था कि मैं कोई साधु बनने नहीं आया था, परिस्थिति ने सत्व का उदय कर दिया। नमो बुद्धाय! सुबह का सूना मंदिर, मंदिर की दीवारों में गूंजता नमो बुद्धाय का मंत्र; मूर्ति के पास से उठती हुई धूप, सुगंधित वातावरण, सिपाहियों का आना और मेरे चरणों में झुक जाना—मेरी सारी ऊर्जा सत्य से बह गई। एक क्षण को मुझे सत्य का अनुभव हुआ कि साधुता का सुख, साधुता की सुगंध, साधुता का फूल क्या है।

आप पूरे समय बदल रहे हैं। इसलिए अच्छे आदमी के पास आप अच्छे आदमी हो जाते हैं। बुरे आदमी के पास आप बुरे आदमी हो जाते हैं। अगर सक्रिय लोगों के बीच में पड़ जाएं, तो आप सक्रिय हो जाते हैं। अगर आलसियों के बीच में पड़ जाएं, तो आपको नींद आने लगती है।

आपने खयाल नहीं किया होगा। अगर यहां इतने लोग बैठे हैं; इनमें से दो—चार लोग जम्हाई लेना शुरू कर दें आपके पास, तो ज्यादा देर नहीं लगेगी कि आप जम्हाई शुरू कर देंगे। एक आदमी जम्हाई ले कि पास वाले को खुजलाहट शुरू हो गई! उसके गले से जम्हाई उठने लगी। नींद! वह जो आलसी आपके पास बैठा है, उसने नींद आपको पकड़ा दी।

मुल्ला नसरुद्दीन के जीवन में एक उल्लेख है। बाजार से गुजरता था, साग—सब्जी, फलों की दुकानें थीं। एक दुकान पर उसे बड़े मधुर आम रखे हुए दिखाई पड़े। पैसे उसके पास नहीं थे। मगर मन जकड़ गया। तो वह कोई उपाय सोचने लगा। वहीं सामने दुकान के सड़क के उस तरफ बैठकर कुछ उपाय सोचने लगा।

तभी दुकानदार ने अपनी लोमड़ी, जो उसने एक लोमड़ी पाल रखी थी, उसे दुकान के बाहर लाया और लोमड़ी से कहा कि बैठ और दुकान का ध्यान रखना। और किसी भी तरह का कोई आदमी पास आए और संदिग्ध मालूम पड़े, तो आवाज देना। मैं जरा खाना खाने भीतर जाता हूं।

नसरुद्दीन ने सोचा कि बड़ी मुश्किल है। आदमी को भी धोखा देना आसान है। यह लोमड़ी को धोखा देना और मुश्किल है। पास ही पहुंचे कि वह आवाज कर देगी। तो उसने क्या किया? वह जहां बैठा था, वहा से धीरे— धीरे पास सरकने लगा। आंख उसने बंद कर लीं और झोंके खाने लगा। लोमड़ी ने देखा इस आदमी को सोते हुए; उसकी भी आंखें झपने लगीं। धीरे— धीरे नसरुद्दीन देखता जाता, जब लोमड़ी बिलकुल सो गई, तब उसने आम उठा लिया। तब नसरुद्दीन आम खाकर छुप रहा। उसने सोचा कि देखें, अब मालिक क्या करता है आकर!

मालिक आया और उसने लोमड़ी को जगाया, उसने कहा, कुछ भूल हो गई। आम कम मालूम पड़ते हैं। क्या गड़बड़ है? कहानी कहती है कि लोमड़ी ने कहा कि यहां तो कोई पास आया नहीं। सिर्फ एक आदमी था, जो सो रहा था। मालिक ने कहा कि मैंने तुझे कहा था कि कोई भी तरह की क्रिया आस—पास हो और कुछ भी संदेह मालूम पड़े, आवाज करना। सोना भी एक क्रिया है। और तुझे सचेत हो जाना चाहिए था।

आपके पास कोई सोने लगे, तो आपके भीतर प्रवाह शुरू हो जाता है।

मेरा अनुभव है। मैं यहां बोल रहा हूं। अगर एक आदमी खांसने लगे—हों सकता है, उसकी खांसी वास्तविक हो—दूसरे लोग संक्रामक हो जाते हैं। खांसी सुनते ही उनको खयाल आ जाता है कि वे भी खांसना जानते हैं! खांस सकते हैं, उनके पास भी गला है। फिर कठिन हो जाता है, रोकना कठिन हो जाता है। और ऐसा नहीं कि यह सचेतन हो रहा है। यह बिलकुल अचेतन है।

आप देखें, सड़क पर एक भीड़ चली जा रही है, आंदोलनकारी हैं, कोई घेराव कर रहा है, कोई हड़ताल कर रहा है। आप घूमने निकले थे, आप तेजी से चलने लगते हैं उनके साथ। उनका जोश आपको पकड़ जाता है। वे नारे लगा रहे हैं, आपका भी दिल होने लगता है। वे कहीं आग लगा रहे हैं, आप भी खड़े हो जाते हैं; सहयोगी भी हो जाते हैं!

एक बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक ने, जर्मनी में जो नाजीवाद की घटना घटी, उस पर एक किताब लिखी दि साइकोलाजी आफ फैसिज्य। वैज्ञानिक था विलहेम रैक। बड़ी अदभुत किताब है, फैसिज्य का मनोविज्ञान। वह भीड का मनोविज्ञान है। और हिटलर बड़ा कुशल था। इस बात को जानता था कि भीड़ कैसे काम करती है। हिटलर अपनी सभाओं में......।

शुरू—शुरू में जब उसको कोई मानने वाला भी नहीं था, कुल सात आदमी उसकी पार्टी के मेंबर थे। और सातों ही फिजूल लोग थे। एक भी आदमी कीमत का नहीं था। निकाले गए लोग, बेकार लोग, जिनके पास कुछ काम— धाम नहीं था, उन्होंने हिटलर को नेता मान लिया था। लेकिन उन सात के बल पर इस जमीन का सबसे शक्तिशाली साम्राज्य स्थापित करने की कोशिश हिटलर ने की।

वह उन सात बेकार आदमियों को लेकर सभाओं में चला जाता। दूसरों की सभा हो रही है। वह सात आदमी बिठा देता। वे सात आदमी जगह—जगह से शोरगुल करके डिस्टरबेंस शुरू कर देते। और हिटलर खुद हैरान हुआ कि सात आदमी थे, लेकिन सत्तर क्यों गड़बड़ कर रहे हैं! उसके तो सात ही आदमी थे। सात सत्तर को गड़बड़ करवा देते हैं। सत्तर सात सौ को पकड़ लेते हैं। फिर वे जो मौलिक सात हैं, उनकी तो कोई चिंता करने की जरूरत नहीं। भीड़ ने ले लिया मामला।

फिर इसका उपयोग वह अपनी सभाओं में—जब उसने अपनी सभाएं शुरू कीं, तो उसके पास पचास आदमी थे। दस हजार लोगों की सभा हो, उसके पचास आदमी पचास जगह बैठे रहते। पक्का पता होता कि किस वाक्य के बाद वे पचास आदमी ताली बजाएंगे। जैसे ही हिटलर का इशारा होता, वे पचास आदमी ताली बजाते। पांच हजार आदमी उनका साथ देते। धीरे— धीरे बाकी लोग भी साथ देने लगे। वे पचास आदमी पांच हजार लोगों से तालियां बजवाने लगे। तब हिटलर को सूत्र साफ हो गया कि भीड़ कैसे चलती है।

जो भी चारों तरफ हो रहा है, परिस्थिति बन जाती है और उसमें आप बह जाते हैं। हिंदू मस्जिद में आग लगा रहे हैं। मुसलमान मंदिर तोड़ रहे हैं, आग लगा रहे हैं। इनमें से एक—एक मुसलमान को अलग से पूछो कि क्या सच में तू मंदिर में आग लगाना चाहता है? वह कहेगा कि नहीं। एक—एक हिंदू से पूछो कि तुझे क्या मिलेगा? यह धर्म है कि तू मस्जिद को जला दे या किसी की हत्या कर दे? वह कहेगा, नहीं। लेकिन भीड़ में, वह कहता है, भीड़ में मैं था ही नहीं। भीड़ कुछ कर रही थी, मैं उसका हिस्सा हो गया। भीड़ पकड़ लेती है आपको।

आप जरा देखें! अगर दस मिलिट्री के जवान सड़क पर कवायद कर रहे हों, थोड़ी देर उनके पीछे चलकर देखें! आपको पता नहीं, कब आप लेफ्ट—राइट करने लगे। आपके पैर उनसे मिलने लगेंगे, तब ही आपको खयाल आएगा, यह मैं क्या कर रहा हूं!

मन अनुकरण करता है। परिस्थिति मन को अनुकरण की सुविधा ठीक से समझ लेना।

अभी भी आप चौबीस घंटे एक गुण में नहीं होते। इसीलिए मंदिरों का उपयोग है, मस्जिदों का उपयोग है। क्योंकि वहां हमने कोशिश की है सत्य की हवा पैदा करने की। दिनभर जो तमोगुणी भी रहा हो, रजोगुणी भी रहा हो, वह भी घंटेभर आकर मंदिर में बैठ जाए, तो सत्य की थोड़ी हवा उसमें पैदा हो सकती है।

सत्संग का इतना ही अर्थ है, जहां थोड़ी देर को सत्व की हवा पैदा हो जाए और आपकी ऊर्जा सत्व से बहने लगे। आप दिनभर कुछ भी कर रहे हों, लेकिन यह स्वाद आपको आने लगे, तो शायद धीरे— धीरे यह स्वाद आपके चौबीस घंटे पर भी फैल जाए। इसमें आपको आनंद मालूम होने लगे और दूसरी चीजें फीकी मालूम होने लगें, तो शायद आप जिंदगी को बदलने का उपाय भी कर लें।

लेकिन ये घटनाएं घटती हैं परिस्थिति से। और जब तक परिस्थिति से घटती हैं भू तब तक कोई बडा मूल्य नहीं है। बड़ा मूल्य तो तब है, जब आपके संकल्प से घटे। तब आप मालिक हुए। तब भीड़ कुछ भी कर रही हो, आप निज में हो सकते हैं। सारी भीड़ सो गई हो और आप जागना चाहें, तो जाग सकते हैं। सारी भीड़ उपद्रव कर रही हो, हत्या कर रही हो, हिंसा कर रही हो, तो भी आप अपने को भीड के प्रभाव से बचा सकते हैं।

और जो व्यक्ति भीड़ के प्रभाव से अपने को बचा लेता है, वही व्यक्ति मालिक है। उसमें आत्मा पैदा हुई। वह आत्मवान हुआ। उसके पहले कोई आत्मा नहीं है। उसके पहले सब हम प्रभावित होकर चल रहे हैं।

और चारों तरफ से हमें प्रभावित किया जा रहा है। और हमें पता भी नहीं चलता कि हम किस भांति पकड़ लिए गए हैं भीड के द्वारा, और भीड़ हमें लिए जा रही है। एक बड़ा प्रवाह है, उसमें हम तिनके की तरह बहते हैं।

हे अर्जुन, रजोगुण और तमोगुण को दबाकर सत्वगुण पैदा होता है।

इसलिए अगर भीतर सत्वगुण पैदा करना हो, तो रजोगुण और तमोगुण की जो वृत्तियां हैं, आलस्य की और व्यर्थ सक्रियता की।

विश्राम बुरा नहीं है, आलस्य बुरा है। फर्क क्या है? विश्राम का मतलब है, आवश्यक, जिससे शरीर ताजा हो, मन प्रफुल्लित हो। विश्राम का अर्थ है, जो श्रम के लिए तैयार करे। इस परिभाषा को ठीक से समझ लेना।

विश्राम का अर्थ है, जो श्रम के लिए तैयार करे। विश्राम का प्रयोजन ही यही है कि अब हम फिर श्रम करने के योग्य हो गए। वह जो श्रम ने हमें तोड़ दिया था, थका दिया था, हमारे स्नायु खराब हो गए थे, जीवकोष्ठ टूट गए थे, वे फिर पुनरुज्जीवित हो गए। विश्राम ने हमें फिर से नया जीवन दे दिया। अब हम फिर श्रम करने के योग्य हैं।

जिस विश्राम के बाद आप श्रम करने के योग्य न हों, वह आलस्य है। उसका मतलब है, विश्राम के द्वारा आप और विश्राम के लिए तैयार हुए जा रहे हैं। विश्राम और विश्राम में ले जा रहा है, तब खतरा है।

ठीक यही बात श्रम के बाबत भी लागू है। श्रम वही सम्यक है, जो आपको विश्राम के योग्य बनाए। अगर कोई ऐसा श्रम है, जो आपको विश्राम में जाने ही नहीं देता, तो वह विक्षिप्तता हो गई। वह फिर श्रम न रहा। ठीक श्रम के बाद आदमी सो जाएगा। बिस्तर पर सिर रखेगा और नींद में उतर जाएगा। ठीक श्रम के बाद।

एक किसान है। दिनभर उसने श्रम किया है खेत पर। सांझ घर आता है, खाना खाता है, और सिर रखता है बिस्तर पर, और सो जाता है। यह श्रम है।

एक दुकानदार है। उसने भी दिनभर श्रम किया है। लेकिन वह जब बिस्तर पर सिर रखता है, तो विश्राम नहीं आता, नींद नहीं आती, मन में हिसाब चलता रहता है। कितने रुपये कमाए; कितने गंवाए; क्या हुआ; क्या नहीं हुआ—वह जारी है। उसका मतलब हुआ कि दुकानदार के श्रम में कहीं कुछ भूल है। वह सिर्फ श्रम नहीं है, शायद लोभ की विक्षिप्तता है।

किसान के श्रम में वह भूल नहीं है। वह सिर्फ शायद भोजन के लिए है। लोभ की नहीं, जरूरत के लिए है। वह जो किसान है, वह निन्यानबे के चक्कर में नहीं है। वह सिर्फ श्रम कर रहा है। कल की रोटी जुट गई, काफी है। वह जो दुकानदार है, वह कल की रोटी की उतनी फिक्र नहीं कर रहा है। वह रोटी तो उसने बहुत पहले जुटा रखी है। वह कुछ महल बना रहा है लोभ के।

यह निन्यानबे के चक्कर की कहानी आपको याद होगी। इसे ठीक से समझ लेना चाहिए।

एक सम्राट सो नहीं पाता था रात। और उसका जो नाई था, जो रोज उसकी मालिश करता और उसकी हजामत करता, वह कभी—कभी हजामत करते—करते भी सो जाता था। वह जो नाई था,

वह कभी—कभी रात उसके पैर दबाते—दबाते भी सो जाता था। वह आया था पैर दबाने, इसको सुलाने, सम्राट को। सम्राट तो जागता ही रहता और वह नाई धीरे—धीरे दबाते—दबाते सो जाता।

उस सम्राट ने कहा कि तेरे पास कुछ कला होनी चाहिए! तू भी गजब का आदमी है। सुलाने हमें आया था और खुद तू सो रहा है! उस नाई ने कहा, मैं गैर पढ़ा—लिखा आदमी, मुझे कुछ कला नहीं आती।

सम्राट ने अपने वजीर से पूछा कि इसमें क्या राज होना चाहिए? वजीर बुद्धिमान था। उसने कहा कि राज है। कल देखेंगे। कल आपको जवाब दे दूंगा।

रात वह नाई के घर में निन्यानबे रुपयों की भरी हुई एक थैली फेंक आया। रातभर नाई सो नहीं सका, क्योंकि वह जो एक रुपया कम था! उसने सोचा कि कल कुछ भी कर के एक रुपया जोड़ देना है; सौ हो जाएंगे! गजब हो गया। कभी सोचा नहीं था कि सौ अपने पास हो जाएंगे। एक ही कमाता था वह रोज। रोज खा लेता था। रात सो जाता था।

दूसरे दिन सुबह बिलकुल आंखें उसकी 'लाल, रात बिना सोए हुए आया। पैर भी उसने दबाए सम्राट के, तो सम्राट को लगा, आज कुछ फर्क है। उसमें जान न थी। क्योंकि विश्राम न हो, तो कोई श्रम के लिए तैयार नहीं हो सकता। उसने पूछा, मामला क्या है? नाई ने कहा, समझ में मेरे भी नहीं आता, लेकिन रात मैं सो नहीं सका।

सम्राट ने कहा, इसमें कुछ वजीर का हाथ तो नहीं है? वजीर ने तुझ से कुछ कहा तो नहीं? उसने कहा, किसी ने कुछ कहा नहीं। लेकिन जब आप पूछते हैं, तो कल रात मुझे घर में एक निन्यानबे रुपये की थैली पड़ी मिल गई। उससे मैं मुसीबत में पड़ गया हूं। सो नहीं सका। सम्राट ने कहा, मैं समझ गया। वह वजीर चालाक है। उसने तुझे निन्यानबे के चक्कर में डाल दिया। इसी चक्कर में मैं हूं। बस, अब बात साफ हो गई।

वह जो दुकानदार है—या कोई भी, जो किसी चक्कर में है, लोभ के, वासना के—वह श्रम नहीं कर रहा है। उसका श्रम ऊपर—ऊपर है, भीतर कुछ और चल रहा है। वह और जो चल रहा है, वह उसका पागलपन है। वह पागलपन उसे विश्राम न करने देगा। और जब विश्राम न होगा, तो सम्यक श्रम पैदा नहीं होता। और तब एक दुष्टचक्र पैदा होता है। दोनों गलत हो जाते हैं।

सत्वगुण के पैदा होने का अर्थ है, रजोगुण और तमोगुण को ध्यान में रखना है। तमोगुण का उतना ही उपयोग करना है, जिससे विश्राम मिले, आलस्य पैदा न हो। और रजोगुण का उतना ही उपयोग करना है, जिससे जीवन की जरूरत पूरी हो, लोभ पैदा न हो। बस, फिर आपके भीतर सत्य की प्रक्रिया शुरू हो जाएगी।

यही अर्थ है, तमोगुण और रजोगुण को दबाकर सत्वगुण पैदा होता है अर्थात बढ़ता है। तथा रजोगुण और सत्वगुण को दबाकर तमोगुण बढ़ता है। वैसे ही तमोगुण और सत्वगुण को दबाकर रजोगुण बढ़ता है।

आप अपने भीतर दो को दबा सकते हैं; तीसरा मुक्त हो जाता है। जिसे भी मुक्त करना हो, उसको छोड्कर बाकी दो को दबाना शुरू कर देना चाहिए।

हम सारे लोग सत्वगुण को दबाते हैं। अच्छाई, शुभ हम दबाते हैं। जहां तक बच सकें, उससे बचते हैं। अगर शुभ करने का कोई मौका हो, शांत होने का कोई मौका हो, सत्व में उतरने की कोई सुविधा हो, तो हम उसको चूकते हैं।

अगर कोई कहे कि आओ, एक घंटा चुपचाप शांति से बैठें, तो हमें व्यर्थ लगता है। हम कहेंगे, कुछ करो। ताश ही खेलें। बैठने से क्या होगा! कुछ करें।

झेन फकीर जापान में बैठना सिखाते हैं। वे कहते हैं साधु को, तू बैठना सीख जा बस! पर बैठने में दो बातों का खयाल रखना पड़ता है। झेन फकीर, जो गुरु होता है, वह हाथ में एक डंडा लेकर घूमता रहता है। दो बातें खयाल रखनी पड़ती हैं। तमोगुण दबाना पड़ता है और रजोगुण दबाना पड़ता है। दोनों एक साथ दबाना पड़ता है। वह डंडा लेकर घूमता है। वह कहता है, बैठे तो रही, लेकिन सो मत जाना। सोकर आप धोखा नहीं दे सकते। क्योंकि आपका सिर हिलने लगेगा। जैसे ही सिर हिला कि डंडा आपके सिर पर होगा। वह गुरु डंडा मारेगा फौरन। और एक बार सिर हिले तो आठ डंडा मारने की आज्ञा है। तो वह आठ बार आपके सिर पर डंडा मारेगा, बेरहमी से। भीतर तक तमोगुण को झटका लग जाए!

न तो सोने देगा, और न कुछ करने देगा। कि आप ऐसा हिलने लगें, तो भी डंडा पड़ जाएगा। क्योंकि हिलने का मतलब हुआ कि रजोगुण शुरू हो गया। कि आप ऐसा पैर खुजाने लगें, तो भी डंडा पड़ जाएगा। आपको कुछ करने भी नहीं देगा और सोने भी नहीं देगा। दोनों के बीच में, वह कहता है, बैठने की कला है, दोनों के बीच जो रुक जाए वह झेन की अवस्था में आ गया, ध्यान की अवस्था में आ गया।

तो छः घंटे, आठ घंटे, दस घंटे, बारह—बारह घंटे तक धीरे— धीरे साधक को सिर्फ बैठना होता है।

थोड़ी देर सोचें, छः घंटे सिर्फ बैठे हैं! न कुछ कर सकते हैं और न सो सकते हैं। क्या होगा?

पहली तो वृत्ति यह होगी कि कुछ करो। उस करने की वृत्ति से बहुत कुछ पैदा होता है। खयाल आएगा कि पैर में खुजलाहट हो रही है। इसमें अपना क्या हाथ है! पैर तो खुजला ही सकते हैं। या कोई चींटी चल रही है। ये सब बातें आना शुरू होंगी। और ये सब झूठ हैं।

अगर आप तैयार हैं बैठे रहने को, तो चींटी भी चलती रहे, तो कोई फर्क नहीं पड़ेगा। और आप तैयार नहीं हैं, तो आप चींटी कल्पित कर लेंगे। वहा जब आप पाएंगे, तो वहां कोई चींटी नहीं है! थोड़ी—बहुत देर अगर आपने रोकने की कोशिश की कि कुछ न करें, तो नींद पकड़ने लगेगी।

हमारी ऊर्जा दो हिस्सों में बहती है, या तो तमोगुण या रजोगुण। रजोगुण से बचाएं, तो तमोगुण। तमोगुण से बचाएं, तो रजोगुण। और दोनों से बचाएं, तो तीसरे द्वार से पहली दफा झरना फूटेगा। झेन का सारा सूत्र कृष्ण के इस एक सूत्र में समाया हुआ है। झेन फकीर जो कर रहे हैं, वह इसी सूत्र का प्रयोग है। बैठे रहें, न तो तंद्रा आए, और न क्रिया पकड़े। अक्रिया में अतद्रित!

तो आपकी चेतना कहां जाएगी? चेतना को कहीं तो जाय ही है, क्योंकि चेतना एक गति है, ऊर्जा है। जब नींद भी नहीं बन सकती और कर्म भी नहीं बन सकती, तो चेतना ध्यान बन जाती है, होश बन जाती है।

इसलिए जिस काल में इस देह में तथा अंतःकरण और इंद्रियों में चेतनता और बोध—शक्ति उत्पन्न होती है, उस काल में ऐसा जानना चाहिए कि सत्वगुण बढ़ा।

और हे अर्जुन, रजोगुण के बढ़ने पर लोभ और प्रवृत्ति अर्थात सांसारिक चेष्टा तथा सब प्रकार के कर्मों का स्वार्थ—बुद्धि से आरंभ एवं अशांति अर्थात मन की चंचलता, विषय— भोगों की लालसा, ये सब उत्पन्न होते हैं।

रजोगुण के ये लक्षण हैं।

सत्वगुण का लक्षण है, बोध, अवेयरनेस, जागरूकता। रजोगुण का लक्षण है, लोभ, सांसारिक चेष्टा, कुछ पा लें संसार में। सब प्रकार के कर्मों का स्वार्थ—बुद्धि से आरंभ। मुझे कुछ मिले लाभ, ऐसे किसी कर्म में उतरने की वृत्ति। अशांति, मन की चंचलता, विषय— भोगों की लालसा, ये सब उत्पन्न होते हैं।

अगर रजोगुण से छूटना हो, तो इन सबसे छूटना जरूरी है। और छूटने का एक ही अर्थ है, इनको सहयोग मत दें। जब लोभ उठे, तो उसे देखते रहें। उसको कोआपरेट मत करें। उसको साथ मत दें। लेकिन हम साथ देते हैं।

सुना है मैंने कि नसरुद्दीन एक रात, अचानक आधी रात उठा और पत्नी से बोला, जल्दी चश्मा ला। पत्नी उसे जानती थी। कुछ बिना पूछताछ—उससे पूछताछ करने का कोई सार भी नहीं था—उसने चश्मा उठाकर दे दिया। उसने चश्मा लगाया। आंख बंद करके फिर से लेट रहा।

फिर थोड़ी देर बाद उठा और उसने कहा कि तूने देर कर दी। सब गड़बड़ हो गया। एक सपना देख रहा था और सपने में एक देवदूत मुझे रुपए दे रहा था। ठीक सौ—सौ के नोट थे। मुझे शक पैदा हो गया कि नोट असली हैं कि नकली, इसलिए तुझसे चश्मा मांगा। और भी एक झंझट थी कि वह नौ नोट दे रहा था और मैं कह रहा था दस दे। उसी दस की झंझट में नींद खुल गई। और फिर आंख बंद करके चश्मा लगाकर मैंने कई बार कहा कि अच्छा भाई, नौ ही दे दे। मगर वहां कोई नहीं है। सपना खो गया। सब नष्ट कर दिया। इतनी देर लगा दी चश्मा उठाने में।

सपने में भी अगर नौ मिल रहे हों, तो दस का मन होता है। वह मन तो वही है, जो जाग रहा है। वही सपने में सो रहा है। और ऐसा नहीं था कि दस दे रहा होता देवदूत, तो कोई मन रुक जाता। मन कहता, जब मिल ही रहे हैं, तो थोड़े और मांग लो!

मन भिखमंगा है; लोभ उसका स्वभाव है। इसको अगर आप सहयोग देते चले जाते हैं, तो रजोगुण बढ़ेगा। क्योंकि जितना लोभ बढ़ेगा, उतना कर्म में उतरना पड़ेगा। लोभ को पूरा करना हो, तो दौड़— धूप करनी ही पड़ेगी। फिर जितना लोभ बढ़ेगा, उतनी अशांति बढ़ेगी। क्योंकि मिलेगा? नहीं मिलेगा? कैसे मिलेगा? ये सब चिंताएं मन को पकड़ेगी। और कैसे मिल जाए? क्या तरकीब लगाएं? झूठ बोलें, बेईमानी करें, चोरी करें; क्या करें, क्या न करें; यह सब आयोजन करना होगा। अशांति बढ़ेगी। और मन को बहुत दौड़ाना पड़ेगा। चंचलता बढ़ेगी। रजोगुण इन सारी वृत्तियों को भीतर जन्म देगा। और ये सारी वृत्तियां आपकी सारी ऊर्जा को रजोगुण के द्वार से प्रकट करने लगेंगी।

रजोगुण का अंतिम चरण विक्षिप्तता है। वे जो पागल होकर पागलखानों में बैठे हैं, वे रजोगुण की साकार प्रतिमाएं हैं। उन्होंने इतना दौड़ा दिया मन को कि लगाम वगैरह ही टूट गई। फिर अब वह रोकना भी चाहे, तो रोकने का साधन ही नहीं है। वह बढ़ता ही चला गया। घोड़े सब भागने लगे। लगा में टूट गईं। कहां ले जाने लगे, रास्ते से हट गए। फिर कोई हिसाब न रहा।

पागल हो जाने का अर्थ है कि आपके पास नियंत्रण की कोई क्षमता न रही। मन इतना लोभ से भर गया कि उसने सब नियंत्रण तोड़ दिए।

रजोगुण अगर पूरा बढ़ जाए, तो विक्षिप्तता अंतिम फल है। अगर तमोगुण पूरा बढ़ जाए तो मृत्यु अंतिम फल है। सत्वगुण पूरा बढ़ जाए, तो समाधि अंतिम फल है।

फिर जो आपको खोजना हो। अगर मृत्यु खोजनी हो, तो आलस्य को साधें। तंद्रा मृत्यु का ही प्राथमिक चरण है। फिर पड़े रहें मिट्टी के ढेर बनकर। जल्दी ही मिट्टी के ढेर हो जाएंगे।

विक्षिप्तता खोजनी हो, तो लोभ को बढ़ाए। फिर कोई सीमा न मानें। असीम लोभ में दौड़ते चले जाएं। जल्दी ही आप पागलखाने में होंगे।

और अगर इन दोनों को दबा दें, दबा दें अर्थात इन दोनों के साथ सहयोग अलग कर लें, तो आपके भीतर सत्व उदय होगा। सत्य महासुख है। और सत्व शुभ में ले जाएगा। सत्य धीरे— धीरे शांति में ले जाएगा। सत्व धीरे— धीरे ध्यान में ले जाएगा।

और सत्व के भी पार जिस दिन आप उठने लगेंगे..। और सत्व उस जगह पहुंचा देता है, जहां से पार उठना आसान है। जब सब विकार छूटने लगते हैं, सिर्फ सत्व का शुद्ध विकार रह जाता है, तो उसे छोड़ने में बहुत कठिनाई नहीं होती।

यह करीब—करीब ऐसा ही है, जैसे दीया जलता है। तो पहले तो वह जो अग्नि की शिखा है, वह तेल को जलाती है। फिर जब तेल जल जाता है, तो बत्ती को जलाती है। फिर जब बत्ती भी जल जाती है, तो खुद जलकर शून्य हो जाती है।

सत्वगुण अग्नि जैसा है। पहले रजोगुण, तमोगुण को जलाएगा। जब वे दोनों जल जाएंगे, तो खुद को जला लेगा। और जब सत्वगुण भी जल जाता है, जब उसकी भी राख हो जाती है, तब जो शेष रह जाता है, वही स्वभाव है। उसे कृष्ण ने गुणातीत अवस्था कहा है।

गीता दर्शन–(भाग–7)
अध्याय—14 (प्रवचन—पाँचवाँ) — संबोधि और त्रिगुणात्मक अभिव्यक्ति

सूत्रः
अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन।। 13 ।।
यदा सत्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत्।
तदोत्तमीवदां लोकानमलान्मीतयद्यते ।। 14 ।।
रजसि प्रलयं गत्वा कर्ममङ्गिषु जायते ।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयीनिषु जायते।। 15 ।।
है अर्जुन, तमोगुण के बढने पर अंतःकरण और इंद्रियों में अप्रकाश एवं कर्तव्य— क्रमों में अप्रवृति और प्रमाद और निद्रादि अंतःकरण की मोहिनी वृत्तियां, ये सब ही उत्पन्न होते हैं।

और हे अर्जुन, जब यह जीवात्मा सत्वगुण की वृद्धि में मृत्यु को प्राप्त होता है, तब तो उत्तम कर्म करने वालों के मलरीहत अर्थात दिव्य स्वर्गादि लोकों को प्राप्त होता है। और रजोगुण के बढ़ने पर मृत्यु को प्राप्त होकर क्रमों की आसक्ति वाले मनुष्यों में उत्पन्न होता है तथा तमोगुण के बढ़ने पर मरा हुआ पुरूष मूढ़ योनियों में उत्पन्न होता है।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्न :
कृष्ण परम ज्ञानी और त्रिगुणातीत हैं, फिर भी धोखा देते हैं, झूठ बोलते हैं, युद्ध करते हैं। बुद्ध, महावीर, लाओत्से आदि ऐसा कुछ भी नहीं करते। सत्व, रजस, तमस गुणों के संदर्भ में कृष्ण के उपरोक्त व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने की कृपा करें।
पहली बात तो यह समझ लेनी जरूरी है कि दो महापुरुषों के बीच कोई तुलना संभव नहीं है। और सभी तुलनाएं गलत हैं। प्रत्येक महापुरुष अद्वितीय है। उस जैसा दूसरा कोई भी नहीं।

वस्तुत: तो साधारण पुरुष भी अद्वितीय है। आप जैसा भी कोई दूसरा नहीं। आपके भीतर ही महापुरुष तब प्रकट होता है, जब आप अपने स्वभाव को, अपनी नियति को उसकी पूर्णता में ले आते हैं। आप भी बेजोड़ हैं। आप जैसा दूसरा कोई व्यक्ति पृथ्वी पर नहीं है। न आज है, न कल था, और न कल होगा। एक वृक्ष का पत्ता भी पूरी पृथ्वी पर खोजने जाएं, तो दूसरा वैसा ही पत्ता नहीं खोज पाएंगे। एक पत्थर का टुकडा भी, एक कंकड़ भी अपने ही जैसा है। और जब

आपका निखार होगा, और आपके जीवन की परम सिद्धि प्रकट होगी, तब तो आप एक गौरीशंकर के शिखर बन जाएंगे। अभी भी आप बेजोड़ हैं। तब तो आप बिलकुल ही बेजोड़ होंगे। अभी तो शायद दूसरों के साथ कुछ तालमेल भी मिल जाए। फिर तो कोई तालमेल न मिलेगा।

अभी तो भीड़ का प्रभाव है आपके ऊपर, इसलिए भीड़ से आप अनुकरण करते हैं। भीड़ की नकल करते हैं। और पड़ोसी जैसा है, वैसा ही बनने की कोशिश करते हैं। क्योंकि इस भीड़ के बीच जिसे जीना हो, अगर वह बिलकुल अनूठा हो, तो भीड़ उसे मिटा देगी। भीड़ उनको ही पसंद करती है, जो उन जैसे हैं। वस्त्रों में, आचरण में, व्यवहार में भीड़ चाहती है आप विशिष्ट न हों, आप पृथक न हों, अनूठे न हों। भीड़ व्यक्ति को मिटाती है; एक तल पर सभी को ले आती है।

इसलिए बहुत कुछ आप में दूसरे जैसा भी मिल जाएगा। लेकिन जैसे—जैसे आपका स्वभाव निखरेगा, वैसे—वैसे आप भीड़ से मुक्त होंगे, वैसे—वैसे अनुकरण की वृत्ति गिरेगी, वैसे—वैसे वह घड़ी आपके जीवन में आएगी जब आप जैसा इस जगत में कुछ भी न रह जाएगा।

कृष्ण, लाओत्से, बुद्ध, उस परम शिखर पर पहुंचे हुए व्यक्ति हैं। किसी की दूसरे से तुलना करने की भूल में मत पड़ना। उस तुलना में अन्याय होगा। अन्याय की संभावना निरंतर है। वह अन्याय यह है कि अगर आपको कृष्ण पसंद हैं, तो आप महावीर के साथ अन्याय कर जाएंगे। वह पसंदगी आपकी है। वह पसंदगी आपकी निजी बात है।

और अगर आपको महावीर पसंद हैं, तो कृष्ण आपको कभी भी पसंद नहीं पड़ेंगे। यह आपका व्यक्तिगत रुझान है। इस रुझान को आप महापुरुषों पर मत थोपें। आपके रुझान में कोई गलती नहीं है। कृष्ण आपको प्यारे हैं, आप कृष्ण को प्रेम करें। और इतना प्रेम करें कि वही प्रेम आपके लिए रूपांतरण का कारण हो जाए, अग्नि बन जाए, और आप उसमें से निखर आएं।

अगर महावीर से प्रेम है, तो महावीर को प्रेम करें। और महावीर के व्यक्तित्व को एक मौका दें कि वह आपको उठा ले, सम्हाल ले, आप डूबने से बच जाएं। महावीर का व्यक्तित्व आपके लिए नाव बन जाए। लेकिन दूसरे महापुरुष से तुलना मत करें। तुलना में गलती हो जाएगी। तुलना केवल उनके बीच हो सकती है, जो समान हैं। उनके बीच कोई समानता का आधार नहीं है। और उन सबके व्यक्तित्व का ढंग बिलकुल पृथक—पृथक है।

जैसे मीरा है। मीरा नाच रही है। हम सोच भी नहीं सकते कि बुद्ध, और नाचे! कृष्ण बांसुरी बजा रहे हैं। महावीर के होंठों पर बांसुरी रखनी बड़ी बेहूदी मालूम पड़ेगी; एब्सर्ड है। उसकी कोई संगति नहीं बैठती। महावीर का जीवन, व्यक्तित्व, ढंग, उससे बांसुरी का कोई संबंध नहीं बैठ सकता।

कृष्ण के ऊपर मोर—मुकुट शोभा देता है। वह उनके व्यक्तित्व की सूचना है। वैसा मोर—मुकुट आप जीसस को बांध देंगे, तो बहुत बेहूदा लगेगा। जीसस को तो काटो का ताज और सूली ही जमती है। सूली पर लटककर जब काटो का ताज उनके सिर पर है, तब जीसस अपने शिखर पर होते हैं। और कृष्ण जब बांसुरी बजा रहे हैं मोर—मुकुट रखकर, तब अपने शिखर पर होते हैं।

एक—एक व्यक्ति अनूठा है यह खयाल में आ जाए तो महापुरुष बिलकुल अनूठे हैं। जब ज्ञान की घटना घटती है, तो ज्ञान की घटना तो एक ही है। ऐसा समझें, यहां हम इतने लोग बैठे हैं। यहां प्रकाश है। तो प्रकाश की घटना तो एक ही जैसी है, लेकिन सभी आंखों में एक जैसा प्रकाश दिखाई नहीं पड़ रहा है। क्योंकि आंखों का यंत्र, देखने वाला यंत्र, प्रकाश को प्रभावित कर रहा है।

किसी की आंखें कमजोर हैं, उसे धीमा प्रकाश दिखाई पड़ रहा होगा। किसी की आंखें बहुत तेज हैं, तो उसे बहुत प्रकाश दिखाई पड़ रहा होगा। और किसी की आंखों पर चश्मा है, और रंगीन है, तो प्रकाश का रंग बदल जाएगा। और किसी की आंख बिलकुल ठीक .है लेकिन वह आंख बंद किए बैठा हो, तो प्रकाश दिखाई ही नहीं पड़ेगा, अंधकार हो जाएगा।

जब जीवन की परम अनुभूति घटती है, तो अनुभव तो बिलकुल एक है, लेकिन व्यक्तित्व अलग— अलग हैं। जब कृष्ण को वह परम अनुभव होगा, तो वे नाचने लगेंगे। यह उनके व्यक्तित्व से आ रहा है नाच, उस अनुभव से नहीं आ रहा है। जब बुद्ध को वही परम अनुभव होगा, तो वे बिलकुल मौन होकर बैठ जाएंगे, उनके हाथ—पैर भी नहीं हिलेंगे; आंख भी नहीं झपकेगी। उनके भीतर जो घटना घटी है, वह उनके मौन से प्रकट होगी, उनकी शून्यता से प्रकट होगी, उनकी थिरता से प्रकट होगी। उनका आनंद मुखर नहीं होगा, मौन होगा।

बुद्ध चुप होकर प्रकट कर रहे हैं कि क्या घटा है। कृष्ण नाचकर प्रकट कर रहे हैं कि क्या घटा है। यह कृष्ण के व्यक्तित्व पर और बुद्ध के व्यक्तित्व पर निर्भर है। घटनाए कही घटी है।

इसे ऐसा समझ लें कि एक चित्रकार सुबह सूरज को उगते हुए देखे। और एक संगीतकार सुबह सूरज को उगता देखे। और एक नृत्यकार सूरज को उगता देखे। और एक मूर्तिकार और एक कवि सूरज को उगता देखे। ये सारे लोगों ने एक ही सूरज को उगते देखा है। और इन सबके चित्त पर एक ही सौंदर्य की घटना घटी है। ये सब आनंद से भर गए हैं। वह सुबह का उगता सूरज इनके भीतर भी कुछ उगने की घटना को जन्म दे गया है। इनके भीतर भी चेतना आंदोलित हुई है।

लेकिन चित्रकार उसका चित्र बनाएगा। अगर आप उससे पूछेंगे कि क्या देखा, तो चित्र बनाएगा। कवि एक गीत में बांधेगा, अगर आप उससे पूछेंगे, क्या देखा। नर्तक नाच उठेगा, नाचकर कहेगा कि क्या देखा।

एक बहुत कीमती विचारक और लेखक यूनान में हुआ अभी—अभी, निकोस कजानजाकिस। उसने एक बड़ी अनूठी किताब लिखी है, जोरबा दि ग्रीक। एक उपन्यास है, जोरबा नाम के एक आदमी के आस—पास। वह आदमी बड़ा नैसर्गिक आदमी है, जैसा स्वाभाविक आदमी होना चाहिए। न उसके कोई सिद्धांत हैं, न कोई आदर्श हैं। न कोई नीति है, न कोई नियम है। वह ऐसा आदमी है, जैसा कि आदमी को अगर सभ्य न बनाया जाए और प्रकृति के सहारे छोड़ दिया जाए, तो जो बिलकुल प्राकृतिक होगा।

जब वह क्रोध में होता है, तो आग हो जाता है। जब वह प्रेम में होता है, तो पिघलकर बह जाता है। उसके कोई हिसाब नहीं हैं। वह क्षण— क्षण जीता है।

कजानजाकिस ने लिखा है कि जब वह खुश हो जाता था या कोई ऐसी घटना घटती, जिससे वह आनंद से भर जाता, तो वह कहता कि रुको। वह ज्यादा नहीं बोल सकता, क्योंकि ज्यादा उसका भाषा पर अधिकार नहीं है, वह शिक्षित नहीं है। तो वह अपना तंबूरा उठा लेता। तंबूरा बजाता। उसे कुछ कहना है, उसके भीतर कोई भाव उठा है, उसे कहना है। वह तक बजाता। और कभी ऐसी घड़ी आ जाती कि तंबूरे से भी वह बात प्रकट नहीं होती, तो तंबुरा फेंककर वह नाचना शुरू कर देता। और जब तक वह पसीना—पसीना होकर गिर न जाता, तब तक वह नाचता रहता।

कजानजाकिस ने लिखा है कि मुझे उसकी भाषा समझ में नहीं आती थी। लगता था, वह नाच रहा है, कुछ उसके भीतर हो रहा है। और कुछ ऐसा विराट हो रहा है कि उसे प्रकट करने का उसके

पास और कोई उपाय नहीं है। लेकिन मेरा ऐसा कोई अनुभव नहीं है। कजानजाकिस लेखक है, विचारक है, शब्दों का मालिक है। लेकिन फिर उसके जीवन में भी एक घटना घटी और तब उसे पता चला। वह पहली दफा एक स्त्री के प्रेम में पड़ा। जब उस स्त्री ने उसे प्रेम से देखा, उसे निकट लिया और वह उसके प्रेम का पात्र बना, तो जब वह वापस लौटा, तब अचानक उसने पाया कि उसके पैर नाच रहे हैं। अब वह कहना चाहता है, लेकिन अब शब्द फिजूल हैं। अब वह कुछ लिखना चाहता है, लेकिन कलम बेकार है। और जिंदगी में पहली दफा वह आकर अपने कमरे के सामने नाचने लगा। और तब उसे समझ में आया कि वह जोरबा जो कह रहा था, क्या कह रहा था। लेकिन उसके पहले उसे कुछ भी पता नहीं था।

आपका व्यक्तित्व अभिव्यक्ति का माध्यम है। अनुभूति तो एक ही होगी। लेकिन आपके व्यक्तित्व से गुजरकर उसकी अभिव्यक्ति बदल जाएगी।

तो कृष्ण की अभिव्यक्ति का माध्यम अलग है। जन्मों—जन्मों में वह माध्यम निर्मित हुआ है। अनंत जन्मों में कृष्ण ने वह नृत्य सीखा है। अनंत जन्मों में वह बांसुरी बजाई है।

बुद्ध ने जन्मों—जन्मों में, बुद्ध ने कहा है.......।

बुद्ध के पिता ने जब बुद्ध वापस घर लौटे, तो बुद्ध को कहा कि तू नासमझ है। और अभी भी नासमझ है। मैं तेरा पिता हूं और मेरे पास पिता का हृदय है, मेरे द्वार अभी भी खुले हैं। अगर तू वापस लौटना चाहे, तो वापस आ जा। यह छोड़ भिखारीपन। हमारे वंश में कभी कोई भिखारी नहीं हुआ।

तो बुद्ध ने कहा है कि क्षमा करें। आपके वंश से मेरा क्या संबंध है! मैं सिर्फ आपसे आया हूं आपसे पैदा नहीं हुआ। जहां तक मुझे याद आते हैं अपने पिछले जन्म, मैं जन्मों—जन्मों का भिखारी हूं। मैं पहले भी भीख मांग चुका हूं। मैं पहले भी संन्यासी हो चुका हूं। यह कोई पहली बार नहीं हो रहा है। यह किसी लंबे क्रम का एक हिस्सा है।

जहां तक मुझे अपनी याद है, बुद्ध ने कहा है कि मैं पहले भी ऐसा ही हुआ हूं। और हर बार यात्रा अधूरी छूट गई। इस बार यात्रा पूरी हो गई। जिस सूत्र को मैं बहुत जन्मों से पकड़ने की कोशिश कर रहा था, वह मेरी पकड़ में आ गया। और तुमसे मेरा परिचय बहुत नया है। मुझ से मेरा परिचय जन्मों—जन्मों का है। तुम्हारे कुल का मुझे कुछ पता नहीं, लेकिन मेरे कुल का मुझे पता है कि मैं जन्मों का भिखारी हूं। और सम्राट होना सांयोगिक था। यह भिक्षु होना मेरी नियति है, मेरा स्वभाव है।

ये बुद्ध भी जन्मों—जन्मों में वृक्ष के नीचे बैठ—बैठकर इस जगह पहुंचे हैं) जहां वे पत्थर की मूर्ति की तरह शांत हो गए हैं।

सबसे पहले बुद्ध की मूर्तियां बनीं। वैसा मूर्तिवत आदमी ही कभी नहीं हुआ था। बुद्ध की मूर्ति बनानी हो, तो बस पत्थर की ही बन सकती है। क्योंकि वे पत्थर जैसे ही, पाषाण जैसे ही ठंडे और शांत और चुप, सारी क्रियाओं से शून्य हो गए थे।

उर्दू में, अरबी में शब्द है, बुत। वह बुद्ध का अपभ्रंश है। बुद्ध के लिए जो शब्द है, वह है बुत। बुत का मतलब है बुद्ध। बुद्ध के नाम से ही बुत शब्द पैदा हुआ। और बुद्धवत बैठने का मतलब है, मूर्तिवत बैठ जाना। बुद्धवत बैठने का अर्थ है, बुत की तरह हो जाना। जरा—सा भी कंपन न रह जाए नाच तो बहुत दूर की बात है। जरा—सा झोंका भी न रह जाए भीतर। नाच तो बिलकुल दूसरी अति है, जहां भीतर कुछ भी थिर न रह जाए, सब नाच उठे, सब गतिमान हो जाए।

तो बुद्ध और कृष्ण का कहां मेल बिठाइएगा? लेकिन जो घटना घटी है, वह एक ही है। बुद्ध ने जन्मों—जन्मों तक मौन होना साधा है। जब वह महाघटना घटी, तो वे अवाक होकर मौन हो गए। कृष्ण ने जन्मों—जन्मों तक नाचा है सखियों के साथ, उनकी प्रेयसियों के साथ। वह यात्रा लंबी है। जब वह घटना घटी, तो वह नाच से ही प्रकट हो सकती है।

फिर बुद्ध संसार को छोड्कर संन्यस्त हो गए हैं। कृष्ण संन्यस्त नहीं हैं। कृष्ण संसार में खड़े हैं। इसलिए उनका आंचरण और व्यवहार बिलकुल अलग—अलग होगा।

अगर किसी को पागलखाने में रहना पड़े, तो उचित है कि वह पागलों को समझा दे कि मैं भी पागल हूं; नहीं तो पागल उसकी जान ले लेंगे। और उचित है कि वह चाहे नकल ही करे, अभिनय ही करे, लेकिन पागलों जैसा ही व्यवहार करे। पागलखाने में रहना हो, तो समझदार बनकर आप नहीं रह सकते। नहीं तो बुरी तरह पागल हो जाएंगे। पागलखाने में सेनिटी बचाने का, अपनी बुद्धि बचाने का एक ही उपाय है कि आप पागलों से दो कदम आगे हो जाएं, कि पागलों के नेता हो जाएं। फिर आप पागल नहीं हो सकते। मेरे एक मित्र पागलखाने में बंद थे। सिर्फ संयोग की बात, छ: महीने के लिए बंद किए गए थे, लेकिन तीन महीने में ठीक हो गए। और ठीक हो गए एक सांयोगिक घटना से। पागलपन की हालत में फिनाइल का एक डब्बा पागलखाने में मिल गया, वह पूरा पी गए। उस फिनाइल को पूरा पी लेने से उनको इतने दस्त और कै हुए कि उनका पागलपन निकल गया। वे बिलकुल ठीक हो गए। लेकिन छ:

महीने के लिए रखे गए थे। अधिकारी तो मानने को तैयार नहीं थे। अधिकारी को तो सभी पागल कहते हैं कि हम ठीक हो गए। ऐसा कोई पागल है, जो कहता है हम ठीक नहीं हैं!

तो वे अधिकारियों से कहें कि मैं बिलकुल ठीक हो गया हूं, अब मुझे कोई गड़बड़ नहीं है। मुझे बाहर जाने दो। अधिकारी हंसे और टाल दें कि ठीक है, वह तो सभी पागल कहते हैं।

वे मित्र मुझे कहते थे कि तीन महीने जब तक मैं पागल था, तब तक तो स्वर्ग में था, क्योंकि मुझे पता ही नहीं था कि क्या हो रहा है चारों तरफ। बाकी तीन महीने असली पागलपन के रहे। मैं हो गया ठीक और सारे पागल.....। कोई मेरी टल खींच रहा है; कोई मेरे सिर पर हाथ फेर रहा है। और मैं बिलकुल ठीक! और अब यह बरदाश्त के बाहर कि यह सब कैसे सहा जाए! न रात सो सकते हैं.। और तीन महीने तक कुछ पता नहीं था। क्योंकि यह खुद भी यही कर रहे थे। और इस भाषा के अंतर्गत थे, इसके बाहर नहीं थे।

बुद्ध पागलखाना छोड्कर बाहर हो गए हैं। इसलिए नहीं कि सभी को पागलखाना छोड्कर बाहर हो जाना चाहिए। बुद्ध को ऐसा घटा। इसको ठीक से समझ लें।

यह बुद्ध की नियति है। यह बुद्ध का स्वभाव है। यह बुद्ध के लिए सहज है, स्पाटेनियस है। ऐसा उनको घटा कि वे छोड्कर जंगल में चले गए। कोई आप छोड़कर चले जाएंगे, तो बुद्ध नहीं हो जाएंगे। अगर आपका स्वभाव यह हो, अगर आपको यही सहज हो, तो आप कुछ भी करें, आप संसार में रह न सकेंगे। आप धीरे—धीरे सरक जाएंगे। यह कोई चेष्टा नहीं है। यह अपने स्वभाव का अनुसरण है।

लेकिन कृष्ण का ऐसा स्वभाव नहीं है। वे पागलखाने में खड़े हैं। और मजे से खड़े हैं। निश्चित ही, पागलखाने में जो खड़ा है, उसे पागलों के साथ व्यवहार करना है। इसलिए कृष्ण बहुत बार दिखाई पड़ेंगे कि धोखा देते हैं, झूठ बोलते हैं, युद्ध करते हैं। वह पागलों की भाषा है। वहां झूठ ही व्यवहार है। वहां धोखा ही नियम है। वहां युद्ध हर चीज की परिणति है।

और इसीलिए कृष्ण बड़े बेबूझ हो जाते हैं। उनको समझना मुश्किल हो जाता है। क्योंकि हम साधु को हमेशा गैर—संसारी की तरह देखे हैं। तो गैर—संसारी साधु का व्यवहार अलग बात है। कृष्ण बिलकुल संसार में साधु हैं। इसलिए उनके और बुद्ध के व्यवहार को तौलना ही मत।

अगर बुद्ध को भी संसार में रहना हो, तो कृष्ण जैसा ही व्यवहार करना पड़ेगा। और कृष्ण को अगर जंगल में झाडू के नीचे बैठना हो, तो बुद्ध जैसा व्यवहार करना पड़ेगा। धोखा किसको देना और किसलिए देना है? यहां जो चारों तरफ लोग इकट्ठे हैं, इनके बीच अगर जीना है, तो इनके ठीक इन जैसे होकर जीना पड़ेगा।

पर फर्क यही है कि आप भी दे रहे हैं धोखा, लेकिन आप बेहोशी में दे रहे हैं और कृष्ण पूरे होश में दे रहे हैं। आप धोखा दे रहे हैं कर्तृत्व— भाव से। कृष्ण धोखा दे रहे हैं बिलकुल नाटक के एक अंग की भांति। वे अभिनेता हैं। धोखा उनको छू भी नहीं रहा है। उनके लिए एक खेल से ज्यादा नहीं है।

ऐसा समझें कि आपके बच्चे घर में खेल खेल रहे हैं। और आप भी फुरसत में हैं और आप भी उनमें सम्मिलित हो गए हैं। और उनकी गुड्डी का विवाह रचाया जा रहा है। और गुड्डे की बारात निकलने वाली है और आप भी उसमें सम्मिलित हैं। तो आपको बच्चों जैसा ही व्यवहार करना पड़ेगा, नहीं तो बच्चे आपको खेल में प्रविष्ट न होने देंगे। आप यह नहीं कह सकते—यह नियम के भीतर होगा—आप यह नहीं कह सकते कि यह गुड्डी है, इसका क्या विवाह कर रहे हो? गुड़ियों का कहीं विवाह होता है? यह सब फिजूल है। तो आप खेल का नियम तोड़ रहे हैं; फिर आपको खेल के बाहर होना चाहिए।

आपको गुड्डी को मानना पड़ेगा कि जैसे वह कोई सजीव युवती है। और उसी तरह व्यवहार करना पड़ेगा। लेकिन एक फर्क होगा, बच्चों के लिए वस्तुत: वह गुड्डी नहीं रही है। और आपके लिए वह फिर भी गुड्डी है। और आप व्यवहार कर रहे हैं बच्चों के साथ कि खेल जारी रहे।

जैसे कोई प्रौढ़ व्यक्ति बच्चों के साथ खेलता है, वैसे कृष्ण संसार में हैं। इसलिए स्वभावत:, महावीर को मानने वाले, बुद्ध को मानने वाले कृष्ण के प्रति एतराज उठाएंगे, कि यह किस तरह की भगवत्ता है! हम सोच ही नहीं सकते कि भगवान और धोखा दे, झूठ बोले! उसे तो प्रामाणिक होना चाहिए।

पर आप जिन भगवानों से तौल रहे हैं, वे संसार के बाहर हैं। आप उस आदमी से तौल रहे हैं इस आदमी को, जो खेल में सम्मिलित नहीं है, अलग बैठा है। और यह आदमी बच्चों के साथ खेल रहा है। इन दोनों को आप तौलें मत। इनके नियम अलग हैं।

कृष्ण का प्रयोग बड़ा अनूठा है। बुद्ध और महावीर का प्रयोग बहुत अनूठा नहीं है। यह बिलकुल सरल है। संसार में हैं, तो पागल की तरह; और संसार छोड़ दिया, तो सारा पागलपन छोड़ दिया। कृष्ण का प्रयोग बड़ा अनूठा है। संसार छोड़ भी दिया, और उसके भीतर हैं। पागलपन बिलकुल पोंछ डाला, और फिर भी पागलों के साथ वैसा ही व्यवहार कर रहे हैं, जैसा कि कोई पागल करे। कृष्ण का प्रयोग अत्यंत अनूठा है।

महावीर, बुद्ध परंपरागत संन्यासी हैं। कृष्ण बहुत क्रांतिकारी संन्यासी हैं। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आप इसलिए कृष्ण को चुन लें। आप अपनी नियति को समझें। यह भी नहीं कह रहा हूं कि आप बुद्ध को छोड़ दें या चुन लें। आप अपनी नियति को समझें। आपके लिए क्या ठीक मालूम पड़ता है, आपके लिए क्या सुगम होगा, सहज होगा, कैसी जीवन— धारा में उतरकर आप व्यर्थ की तकलीफ नहीं पाएंगे, सरलता से बह सकेंगे, वही आपकी नियति है।

फिर आप दूसरे की चिंता में मत पड़े। कोशिश करके न आप कृष्ण बन सकते हैं और न बुद्ध। कोशिश आपको भ्रांत कर देगी। सहजता ही आपके लिए स्वास्थ्यदायी हो सकती है।

कृष्ण ने क्या किया, इसे समझना हो, तो यह सूत्र खयाल में रखें कि कृष्ण, बुद्ध जैसे संन्यासी होकर ठीक संसार में खड़े हैं बिना छोड़े हुए। और आपसे कोई भी संबंध संसार में बनाना हो, तो निश्चित ही आपकी भाषा बोलनी जरूरी है और आपके आंचरण के साथ चलना जरूरी है। आपको बदलना भी हो, तो भी थोड़ी दूर तक आपके साथ चलना जरूरी है।

इसी संबंध में यह भी समझ लेना उचित होगा कि सत्व, रजस और तमस के गुणों का इस संबंध में क्या रूप होगा।

अगर कोई व्यक्ति तमस की अवस्था से सीधा छलांग लगाए गुणातीत अवस्था में, तो उसका जीवन—व्यवहार लाओत्से जैसा होगा। क्योंकि उसके पास जो व्यक्तित्व होगा, वह तमस का होगा। चेतना तो छलांग लगा लेगी गुणातीत अवस्था में, लेकिन उसके पास व्यक्तित्व तमस का होगा।

इसलिए लाओत्से कहता है, अकर्मण्यता भली। लाओत्से कहता है, कुछ न करना ही योग्यता है। ना—कुछ में ठहर जाना ही परम सिद्धि है।

लाओत्से के जीवन में कोई उल्लेख भी नहीं है कि उसने कुछ किया हो। कहा जाता है कि अगर उसके बस में हो चलना, तो लाओत्से दौड़ेगा नहीं। अगर उसके बस में हो बैठना, तो लाओत्से चलेगा नहीं। अगर उसके बस में हो लेटना, तो लाओत्से बैठेगा नहीं। अगर उसके बस में हो सोना, तो लाओत्से लेटेगा नहीं। निष्क्रियता की जो भी संभावना आखिरी बस में हो, उसमें ही लाओत्से डूबेगा।

लाओत्से परम ज्ञानी है, पर उसके पास व्यक्तित्व तमस का है। इसलिए आलस्य लाओत्से के लिए साधना बन गई। और निश्चित ही, जो उसने जाना है, वही वह दूसरों को सिखा सकता है।

तो लाओत्से कहता है, जब तक तुम कुछ कर रहे हो, तब तक तुम भटकोगे। ठहरो, करो मत। क्योंकि लाओत्से ने ठहरकर ही पाया है। तो लाओत्से कहता है कि अगर तुम क्या शुभ है, क्या अशुभ है, क्या नीति है, क्या अनीति है, इस व्यर्थता में पड़ोगे, सत्व की खोज में, तो भटक जाओगे। धर्म का नीति से कोई संबंध नहीं। जब जगत में ताओ था, धर्म

था, तो कोई नीति न थी; कोई साधु न थे, कोई असाधु न थे। तुम अपनी सहजता में डूब जाओ। और उस डूबने के लिए एक ही कुशलता है, एक ही योग्यता है कि तुम पूरी अकर्मण्यता में, अक्रिया में, पूरे अकर्म में ठहर जाओ। तमस लाओत्से का व्यक्तित्व है। घटना उसे वही घटी है, जो बुद्ध को, महावीर को, कृष्ण को घटी है।

जिन लोगों का व्यक्तित्व रजस का है, और वहा से वे छलांग लगा लेंगे, जैसे जीसस, तो फिर परम ज्ञान जब उन्हें पैदा होगा, तो उनका परम ज्ञान उसी क्षण कर्म बनना शुरू हो जाएगा। उनका कर्म सेवा हो जाएगी। वे विराट कर्म में लीन हो जाएंगे। वे कहेंगे, कर्म ही योग है।

कृष्ण ने कहा है, कर्म की कुशलता ही योग है। और लाओत्से कहता है, अकर्म, अक्रिया, सब भांति ठहर जाना ही एकमात्र सिद्धि है।

कर्म की कुशलता योग है, अगर रजस आपका व्यक्तित्व हो और ज्ञान की घटना घटे। घट सकती है। किसी भी जगह से आप छलांग लगा सकते हैं।

अगर सत्व का आपका व्यक्तित्व हो, जैसे महावीर, जैसे बुद्ध, सत्व का व्यक्तित्व है म तो इनके जीवन में न तो आलस्य होगा, लाओत्से जैसी शिथिलता भी नहीं होगी, और न ही जीसस जैसा कर्म होगा। इनके जीवन में बड़ी साधुता का शांत व्यवहार होगा।

महावीर चलते भी हैं, तो रास्ते पर देखकर कि चींटी दब न जाए। यह आदमी रजोगुणी हो ही नहीं सकता, जो चलने में इतना ध्यान रखे कि चींटी न दब जाए। महावीर रात करवट नहीं बदलते कि करवट बदलने में अंधेरे में कोई कीड़ा—मकोड़ा न दब जाए। यह आदमी क्या कर्मठ होगा! यह महावीर श्वास भी सोच—समझकर लेते हैं, क्योंकि प्रति श्वास में सैकड़ों जीवाणु मर रहे हैं।

महावीर पानी छानकर पीते हैं। वह भी जब अति प्यास लग आए तब पीते हैं। भोजन बामुश्किल कभी करते हैं, क्योंकि भोजन में हिंसा है। मासाहार में ही हिंसा नहीं है, सब भोजन में हिंसा है। शाकाहार में भी हिंसा है। क्योंकि शाक—सब्जी में प्राण है। पौधे में प्राण है। माना कि उतना प्रकट प्राण नहीं है, जितना पशु में है, जितना मनुष्य में है, लेकिन प्राण तो है।

महावीर पहले व्यक्ति हैं, जिन्होंने घोषणा की कि इस जीवन में सब तरफ प्राण है। इसलिए कहीं से भी भोजन करो, मृत्यु घटित होती है। इसलिए महावीर कहते हैं, पका हुआ फल जो वृक्ष से गिर जाए, पका हुआ गेहूं जो पौधे से गिर जाए, बस वही लेने योग्य है।

लेकिन उसमें भी हिंसा तो हो ही रही है। क्योंकि जो बीज आप ले रहे हैं, वह अंडे की तरह है। उस बीज से अंकुर पैदा हो सकता था। उससे एक वृक्ष पैदा हो सकता था। उस वृक्ष में हजारों बीज लगते।

तो अगर अंडा खाना पाप है, तो गेहूं का बीज खाना भी पाप है। क्योंकि अंडा बीज है। उसमें पाप क्या है? इसलिए कि मुर्गी पैदा होती है। फिर मुर्गी से और मुर्गियां पैदा होती हैं। एक बड़ी संतति को आपने रोक दिया। एक जीवन की धारा आपने काट दी। एक गेहूं को खाकर भी काट दी। उस गेहूं से नए पौधे पैदा होते। उन पौधों में नए बीज लगते। न मालूम कितने जीवन की धारा अनंत वर्षों तक चलती, वह आपने गेहूं को खाकर रोक दी।

तो महावीर मुश्किल से भोजन करते हैं। अगर भूखे चल सकें, तो भूखे चलते हैं। प्यासे चल सकें, तो प्यासे चलते हैं। कथा यह है कि बारह वर्षों की साधना में उन्होंने केवल तीन सौ साठ दिन ज्यादा से ज्यादा भोजन लिया। बारह वर्ष में एक वर्ष! कभी दो महीने नहीं खाया, कभी महीनेभर नहीं खाया, कभी तीन महीने नहीं खाया। खाते ही तब हैं, जब उपवास आत्महत्या के करीब पहुंचने लगे। जब ऐसा लगे कि अब शरीर ही छूट जाएगा, तभी। जब अपनी ही मृत्यु घटित होने लगे, और वह भी इसलिए कि अभी ज्ञान की घटना नहीं घटी, इसलिए शरीर को सम्हालना जरूरी है। अभी वह परम मुक्ति उपलब्ध नहीं हुई, इसलिए शरीर को ढोना जरूरी है।

इन महावीर से आप कोई जीसस जैसी क्रिया नहीं अनुभव कर सकते। जीसस जाते हैं मंदिर में; देखते हैं कि व्याजखोरों की कतार लगी है; उठा लेते हैं कोड़ा। सोच भी नहीं सकते, महावीर कोड़ा उठा लें। उलट देते हैं तख्ते व्याजखोरों के। अकेला एक आदमी इतना जोर से वहां उपद्रव मचाता है कि सैकड़ों व्याजखोर भाग खडे होते हैं। यह तो बाद में ही समझ में आता है कि एक आदमी ने इतना उपद्रव कैसे मचा दिया!

पर यह जीसस में एक गहरी क्रांति है। इसलिए जीसस का सूली पर लटकना ठीक गणित का हिसाब है। इतना बड़ा क्रांतिकारी आदमी सूली पर जाएगा ही। इसका दूसरा अंत नहीं हो सकता। महावीर को हम सूली पर लटकते हुए नहीं सोच सकते। कोई कारण नहीं है। जो किसी को दुख नहीं पहुंचा रहा है; जो किसी के काम में आड़े नहीं आ रहा है, जो किसी को छूता भी नहीं.। महावीर की धारा में उनकी अहिंसा को अगर ठीक से समझें, तो उसका मतलब यह होता है कि किसी के कर्म में भी बाधा डालने में हिंसा हो जाती है। कोई आदमी जा रहा है, उसको रोक लेना काम में जाते से, तो भी हिंसा हो जाती है। क्योंकि आप बीच में बाधा डाल रहे हैं।

कोई बाधा नहीं डालनी है। अपने को ऐसे बना लेना है, जैसे मैं हूं ही नहीं। तो ऐसा व्यक्ति क्रांति नहीं ला सकता। या ऐसे व्यक्ति की क्रांति बड़ी अदृश्य होगी। उसके कोई दृश्य रूप नहीं होंगे। सत्व अगर हो, तो महावीर जैसा व्यक्ति पैदा होगा, व्यक्तित्व में अगर सत्व हो! अगर रज हो, तो जीसस जैसा व्यक्ति पैदा होगा। तम हो, तो लाओत्से जैसा व्यक्ति पैदा होगा।

इसको और भी तरह से समझ लें।

इसलिए लाओत्से के पीछे कोई बहुत बडा विराट धर्म नहीं बन सका। अकर्मण्यता के आधार पर आप बनाएंगे भी कैसे? कौन करेगा प्रचार? कौन जाएगा समझाने? लाओत्से का मानने वाला शांत बैठ जाता है। आप उसे हिलाए—डुलाएं, बहुत पूछें, तो बामुश्किल जवाब देगा।

लाओत्से जिंदगीभर नहीं बोला। आखिर में सिर्फ यह ताओ—तेह—किंग, एक छोटी—सी किताब उसने लिखवाई। यह भी मजबूरी में कि पीछे ही पड़ गए लोग कि उसको जाने ही नहीं देते थे मुल्क के बाहर।

वह जाना चाहता था हिमालय की यात्रा पर, अपने को खो देने के लिए हिमालय में। उसको रोक लिया चुंगी चौकी पर और कहा कि जब तक तुम्हारा ज्ञान तुम लिख न दोगे, जाने न देंगे। तो तीन दिन वह चुंगी चौकी पर बैठकर उसने लिखवाया, जो उसको ज्ञान था।

यह भी जबरदस्ती लिखवाया गया। यह कोई लाओत्से ने अपने मन से लिखा नहीं। अगर चुंगी चौकी का अधिकारी चूक जाता और लाओत्से निकल गया होता, तो ताओ—तेह—किंग न होती और लाओत्से के नाम का भी आपको पता नहीं होता। यह सारा गुण चुंगी चौकी के उस अधिकारी को जाता है, जिसका किसी को नाम पता नहीं कि वह कौन आदमी था। इसलिए लाओत्से के पीछे कोई बड़ा विराट आयोजन नहीं हो सका।

महावीर सत्व के प्रेमी हैं और उनका व्यक्तित्व सत्व से भरा है। इसलिए महावीर का धर्म बहुत नहीं फैल सका। क्योंकि उसमें कर्मठता नहीं है। आज भी हिंदुस्तान में केवल बीस—पच्चीस लाख जैन हैं। अगर महावीर ने पच्चीस जोड़ों को जैनी बना लिया होता, तो दो हजार साल में उनसे पच्चीस लाख आदमी पैदा हो जाते। पच्चीस लाख कोई संख्या नहीं है, फैल नहीं सका।

लेकिन ईसाइयत फैली, क्योंकि रजस—प्रधान है। ईसाइयत फैली, सारी जमीन को ढंक लिया उसने। इस्लाम फैला, सारी जमीन को ढंक लिया उसने। दोनों रज—प्रधान हैं।

मोहम्मद तो बहुत ही ज्यादा रज—प्रधान हैं। उनका तो सारा व्यक्तित्व रजस से भरा है। हाथ में तलवार है। और किसी भी भांति फैलाना है वह, जो उन्होंने जाना है।

आज जमीन वस्तुत: दो बड़े धर्मों में बंटी है, ईसाइयत और इस्लाम। बाकी धर्म नगण्य हैं।

यह जो बुद्ध के धर्म का प्रचार हो सका, वह भी एक अनूठी घटना है। क्योंकि बुद्ध के धर्म का प्रचार भी होना नहीं चाहिए। जैसा महावीर सिकुड़ गए, ऐसा ही बुद्ध की बात भी सिकुड़ जानी चाहिए। वे भी सत्व—प्रधान व्यक्तित्व हैं। लेकिन एक सांयोगिक घटना इतिहास की और जिसने बुद्ध के धर्म को मौका दे दिया फैलने का। अगर बुद्ध का धर्म भारत में ही रहता, तो कभी नहीं फैलता। जितने जैन हैं, उससे भी कम बौद्ध भारत में बचे हैं। अभी नए बौद्धों को भी गिन लिया जाए, तो तीस लाख होते हैं।

नए बौद्ध कोई बौद्ध नहीं हैं। एक राजनैतिक चालबाजी है। अंबेदकर का बौद्ध धर्म से क्या लेना—देना! अंबेदकर पच्चीस दफा सोच चुका पहले कि मैं ईसाई हो जाऊं और सब हरिजनों को ईसाई बना लूं। यह सिर्फ एक राजनैतिक स्टैट था। फिर उसे लगा कि बौद्ध हो जाना ज्यादा बेहतर है। तो अंबेदकर बौद्ध हो गए। और अंबेदकर ने सैकड़ों हरिजनों को, विशेषकर महाराष्ट्र में, बौद्ध बना लिया। इनका बौद्ध धर्म से कोई लेना—देना नहीं। भारत में बौद्ध हैं ही नहीं, खोजना मुश्किल है।

भारत में अगर बुद्ध धर्म रुका होता, जैसा कि जैन धर्म रुका, तो जैन धर्म से भी बुरी हालत थी। लेकिन हिंदुओं की कृपा से! हिंदुओं ने बौद्धों का इस बुरी तरह विनाश किया कि बौद्ध भिक्षुओं को हिंदुस्तान छोड्कर भाग जाना पड़ा। ये जो भागते हुए भगोड़े बौद्ध भिक्षु थे, ये बौद्ध धर्म को हिंदुस्तान के बाहर ले गए। और हिंदुस्तान के बाहर इन बौद्ध भिक्षुओं को वे लोग मिल गए, जो रज—प्रधान हैं।

हिंदुस्तान के बाहर इनको प्रचारक मिल गए, क्योंकि वैक्यूम था। और खाली जगह प्रकृति को पसंद नहीं है। चीन में जब पहुंचे बैद्ध, तो कनफ्यूसियस का प्रभाव था। लेकिन कनफ्यूसियस सिर्फ नैतिक है, उसका कोई धर्म नहीं है। और लाओत्से का प्रभाव था। लाओत्से बिलकुल आलसी है, उसके प्रचार का कोई उपाय नहीं। खाली जगह थी। बौद्ध विचार की छाया एकदम जोर से अनुभव होने लगी। सम्राट चीन के बौद्ध हो गए। सम्राट होते हैं रज—प्रधान।

हिंदुस्तान में भी बौद्ध धर्म को बाहर भेजने में अशोक ने काम किया। वह बुद्ध के ऊपर उसका श्रेय नहीं है, अशोक के ऊपर है। सम्राट होते हैं रज—प्रधान। यह अशोक लड रहा था; युद्धों में लगा था। और फिर यह बौद्ध हो गया।

एक रूपांतरण! हिंसा से दुखी होकर, पीड़ित होकर, अपने ही हाथ से लाखों लोगों को मरा हुआ देखकर एकदम उलटा हो गया, शीर्षासन कर लिया। हिंसा का बिलकुल इसने त्याग कर दिया। इसने बौद्ध धर्म को भेजा। इसने जिनके हाथ से भेजा, वे एक तरह के राजनैतिक संदेशवाहक थे। अशोक ने अपने बेटे को भेजा, अपनी बेटी संघमित्रा को भेजा लंका, प्रचार करने।

अशोक ने राजनैतिक ढंग से बौद्ध धर्म को बाहर भेजा। वह रज—प्रधान व्यक्ति था। और सम्राट रूपांतरित हुए, तो बौद्ध धर्म फैला।

ध्यान रहे, जब भी कोई धर्म फैलेगा, तो उसके पीछे रजस ऊर्जा चाहिए। धर्म को जन्म देने वाला व्यक्ति किस तरह के व्यक्तित्व का है, इस पर निर्भर करेगा।

कृष्ण को समझ लेना इस संदर्भ में जरूरी है।

कृष्ण स्वयं, इन तीनों में से किसी की भी प्रधानता उनमें नहीं है। कृष्ण में ये तीनों गुण, कहें, समान हैं, बराबर मात्रा के हैं। और इसलिए कृष्ण में तीनों बातें पाई जाती हैं। वह जो तामसिक आदमी कर सकता है, कृष्ण कर सकते हैं। वह जो राजसिक आदमी कर सकता है, कृष्ण कर सकते हैं। वह जो सात्विक आदमी कर सकता है, कृष्ण कर सकते हैं।

आपने कृष्ण का एक नाम सुना है, रणछोड़दास। हिंदू बहुत अदभुत है। वे इसको बड़े आदर से लेते हैं। रणछोड़दासजी के मंदिर हैं जगह—जगह। रणछोड़दास का मतलब है, भगोड़ा, युद्ध को छोड्कर भागा हुआ। पर उसको भी हम कहते हैं, रणछोड़दासजी! युद्ध को जिसने पीठ दिखा दी, वह रणछोड़।

कृष्ण का पूरा व्यक्तित्व त्रिवेणी है। उसमें नाच—रंग है, जो अक्सर तामसी व्यक्ति में होता है। मौज है, उल्लास है। उसमें बड़ा वीर्य भी है। संघर्ष की क्षमता है, युद्ध की कुशलता है, जो कि राजसी व्यक्ति में होती है। उसमें बड़ी सात्विकता है, बड़ी शुद्धता है, बच्चे जैसी शुद्धता, निर्दोषता है। लेकिन यह सब इकट्ठा है। इसलिए कृष्ण बेबूझ हो जाते हैं और पहेली हो जाते हैं।

बुद्ध पहेली नहीं हैं। अगर आपके पास थोड़ी भी अक्ल है, तो बुद्ध का पाठ खुला हुआ है। पहेली कुछ भी नहीं है। महावीर में कोई पहेली नहीं, कोई रहस्य नहीं है। बात सीधी—साफ है। दो और दो चार, ऐसा गणित है।

लेकिन कृष्ण का मामला बहुत उलझा हुआ है। क्योंकि तीनों गुण हैं और तीनों समतुल हैं। और इसलिए कृष्ण हमें धोखेबाज भी लगते हैं; झूठ भी बोलते लगते हैं; वचन देते हैं, तोड़ते लगते हैं। ऐसा समझें कि जैसे कृष्ण एक व्यक्ति नहीं हैं, तीन व्यक्ति हैं। तो जैसे तीन व्यक्तियों का जीवन तीन तरह से चलता रहेगा, ऐसा कृष्ण के भीतर तीन धाराएं इकट्ठी चल रही हैं। कृष्ण एक त्रिवेणी हैं। और इसलिए जो भी कृष्ण को गणित में बिठालना चाहेगा, वह कृष्ण के साथ अन्याय करेगा।

इसलिए कुछ हैं, जो गीता के कृष्ण को पूजते हैं, भागवत का कृष्ण उन्हें प्रिय नहीं। वे उसको छोड़ देते हैं। वे कहते हैं, यह कवियों की कल्पना है। ये असली कृष्ण नहीं हैं।

कुछ हैं, जो गीता के कृष्ण की फिक्र ही नहीं करते। उनको भागवत का कृष्ण प्यारा है। स्त्रियां स्नान कर रही हों, तो उनके कपड़े चुराकर झाडू पर बैठ सकते हैं।

कृष्ण एक पहेली हैं, क्योंकि ये तीनों गुण उनमें समान हैं। और तीनों गुणों के रंग उनके व्यक्तित्व में हैं। ये तीनों स्वर उनके साथ एक साथ बज रहे हैं।

यह व्यक्तित्व की बात है। अनुभव तो तीनों के पार का होगा। बुद्ध को भी जो मिला है, वह भी तीनों गुणों के पार उन्होंने जाना है। महावीर ने भी, मोहम्मद ने भी, जीसस ने भी, लाओत्से ने भी, कृष्ण ने भी। अनुभूति तो तीनों गुणों के पार है, गुणातीत है। लेकिन जो व्यक्तित्व हमारे पास है, उससे अनुभूति प्रकट होगी।

महावीर, बुद्ध, लाओत्से के पास एक ढंग के व्यक्तित्व हैं, इकहरे व्यक्तित्व हैं। कृष्ण के पास तेहरा व्यक्तित्व है। इसलिए कृष्ण का संगीत थोड़ा उलझा हुआ है। और उसे सुलझाने के लिए बड़ी कुशल आंख, बड़ी गहरी आंख चाहिए। नहीं तो फिर कृष्ण के साथ अन्याय हो जाना सुनिश्चित है।

एक प्रश्न और :
आपने कहा कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी मुक्ति स्वयं खोजनी होगी और यही मुक्ति या स्वतंत्रता की गरिमा भी है। अन्यथा स्वतंत्रता झूठी व व्यर्थ हो जाएगी। इस दृष्टि से कृष्ण का या आपका यह कहना कि समर्पण करो और मैं बदल दूंगा, मुक्त कर दूंगा, कहां तक उचित है?
कृष्ण अर्जुन को कहते हैं, सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं वज—सब धर्म छोड़, तू मेरी शरण में आ। मैं तुझे मुक्त कर दूंगा। इससे स्वभावत: मन में प्रश्न उठेगा। एक ओर मैंने कहा कि निर्णय अंतिम आपका है। आपकी , पूरी स्वतंत्रता है। और यही आपके जीवन की गरिमा है कि कोई आपको जबरदस्ती मोक्ष में प्रवेश नहीं करवा सकता, कृष्ण भी नहीं करवा सकते।

इसीलिए तो कहना पड़ रहा है, सर्व धर्मान् परित्यज्य। कृष्ण भी जबरदस्ती अर्जुन को मुक्ति नहीं दे सकते। कृष्ण भी कह रहे हैं कि तू पहले सब समर्पण कर। वह समर्पण का निर्णय अर्जुन को लेना पड़ेगा। और वह समर्पण का निर्णय अर्जुन ले, तो कृष्ण कुछ कर सकते हैं।

समर्पण का निर्णय बहुत बड़ा निर्णय है, सबसे बडा निर्णय है। इस जगत में सब निर्णय छोटे हैं। किसी के हाथ में मैं अपने को पूरा सौंप दूं? यह बड़े से बड़ा निर्णय है। इससे बड़ा और कोई निर्णय नहीं है।

ध्यान रहे, समर्पण सबसे बड़ा संकल्प है। उलटा लगता है। क्योंकि हम सोचते हैं, संकल्प का तो अर्थ ही होता है, अपने पर निर्भर रहना। और समर्पण का अर्थ है, दूसरे पर सब छोड़ देना। लेकिन छोड़ने की घटना अगर आप कर सकते हैं, तो उसका मतलब हुआ कि आप एकजुट हो गए हैं, आप इकट्ठे हैं। आप अपने को छोड़ सकते हैं।

छोड़ वही सकता है, जो अपना मालिक हो। जो संकल्पवान हो, वही समर्पण कर सकता है। हर कोई समर्पण नहीं कर सकता। कमजोर, नपुंसक के लिए समर्पण का मार्ग नहीं है। कायर के लिए समर्पण का मार्ग नहीं है; जो कहे कि हा, हम बिलकुल तैयार हैं। कहने से तैयारी नहीं होती। यह अर्जुन ही कर सकता है।

इसलिए कृष्ण ने अगर अर्जुन से कहा कि तू सब छोड़ दे, तो सोचकर कहा है। यह क्षत्रिय है; संकल्प ले सकता है : समर्पण का भी ले सकता है।

जापान में क्षत्रियों की एक जमात है, समुराई। समुराई जापान के क्षत्रिय हैं, शुद्धतम, जो सिर्फ लड़ना ही जानते हैं। मगर लड़ने के पहले उन्हें एक कला सिखाई जाती है, जो दुनिया में कहीं भी नहीं सिखाई जाती। और उस कला के कारण समुराई का कोई मुकाबला नहीं है।

इसके पहले कि उन्हें सिखाया जाए कि दूसरे को कैसे मारो, समुराई को सिखाया जाता है कि तुम अपनी आत्महत्या कैसे कर सकते हो। और जब तक तुम कुशल नहीं हो अपने को मारने में, तब तक तुम दूसरे को मारने के हकदार नहीं हो। पहले तुम ठीक से तैयार हो जाओ अपने को मिटाने के लिए।

तो समुराई पहले सीखता है, आत्महत्या, हाराकिरी। बड़ा गहरा उसका गणित है। ठीक नाभि के दो इंच नीचे हारा नाम का केंद्र है, जो कि योगियों की खोज है। उस हारा नाम के केंद्र पर जरा—सी भी चोट छुरे की हो जाए, कि शरीर से आत्मा अलग हो जाती है बिना किसी पीड़ा के।

इसलिए समुराई का लक्षण यह है कि जब वह छुरा मारकर अपनी हत्या करता है, तो उसके चेहरे पर पीड़ा का एक भाव भी नहीं होना चाहिए—मरने के बाद भी, उसकी लाश पर भी। अगर पीड़ा का जरा भी भाव है, तो वह चूक गया। वह समुराई नहीं था। उसे मरने की कला नहीं मालूम थी। उसने छुरा कहीं और मार लिया।

ठीक नाभि के नीचे जीवन का स्रोत है, उस स्रोत की बिलकुल बारीक धारा है। उस बारीक धारा को तोड़ देते से ही जीवन शरीर और आत्मा का अलग— अलग हो जाता है, जरा—सी पीड़ा के बिना। समुराई के चेहरे पर कोई भाव भी नहीं आता दुख का, विषाद का। वह वैसा ही प्रफुल्लित और ताजा होता है, जैसा जीवित था। आपको लगे कि सिर्फ सो गया है।

पहले समुराई को सिखाते हैं, खुद को मिटाने की कला। और तब उसे कहते हैं कि अब तू युद्ध में जा, अब तुझे कोई भय न पकड सकेगा; क्योंकि तूने मृत्यु भी सीख ली। और मृत्यु के माध्यम से तूने आत्मा को जानने का द्वार भी सीख लिया, शरीर से अलग आत्मा को करने का मार्ग भी सीख लिया।

यह अर्जुन समुराई जैसा क्षत्रिय है। यह अपने जीने के लिए सबको मार भी सकता है। और जरूरत हो, इसे जीवन व्यर्थ मालूम पड़े, तो एक क्षण में अपने को समाप्त भी कर सकता है।

इस अर्जुन से कृष्ण कह रहे हैं कि तू सब छोड़ दे। यह छोड़ सकता है। यह क्षत्रिय है। सब! इसमें कुछ हिसाब नहीं रखना है कि कितना! कुछ पीछे अपने को बचा नहीं लेना है। क्योंकि समर्पण आधा नहीं हो सकता; पूरा ही होगा।

पूरा समर्पण महान संकल्प है। यह खयाल में भी लेना कि मैं किसी के हाथ में अपना पूरा भविष्य सौंपता हूं अपना पूरा जीवन सौंपता हूं और जो भी हो परिणाम, मुझे स्वीकार है, अब इसको वापस नहीं ले सकूंगा। समर्पण वापस नहीं लिया जा सकता। यह आखिरी निर्णय है जो आदमी ले सकता है।

ध्यान रहे, कृष्ण थोड़े ही रूपांतरण करेंगे। इस समर्पण के करने की प्रक्रिया में रूपांतरण हो जाएगा। इतने सहज भाव से जो मिटने को राजी है, वह रूपांतरित हो गया।

इसलिए दूसरी जो बात है कृष्ण की कि मैं तुझे बदल दूंगा, तू सब समर्पण कर। दूसरी बात तो सहज परिणाम है। कृष्ण को कुछ करना नहीं पड़ेगा। कृष्ण कुछ कर भी नहीं सकते। करने का कोई उपाय भी नहीं है। बस, यह अर्जुन को समझ में अगर आ जाए कि यह सब छोड़ने को राजी हो जाए।

तो यह बड़े मजे की बात है। जब भी कोई सब छोड़ने को राजी हो जाता है, तो उसके जीवन की सब पीड़ा, सब दुख, सब तनाव विदा हो जाते हैं। क्योंकि सब छोड़ने का मतलब है, अहंकार छोड़ना। और मैं ही, मेरा अहंकार ही सारे उपद्रव की जड़ है। वह जड़ कट जाती है। कटते ही आदमी आत्मज्ञान को उपलब्ध हो जाता है।

गुरुओं ने कहा है कि सब छोड़ दो, हम तुम्हें बदल देंगे। बदलने की कोई जरूरत नहीं पड़ती। और अगर आप जाकर पूछें कि मैंने सब छोड़ दिया; मैं अभी तक नहीं बदला! तो उसका सिर्फ मतलब इतना है कि आपने कुछ छोड़ा नहीं। और कुछ भी मतलब नहीं है। नहीं तो दूसरी घटना तो अनिवार्य है। उस दूसरी घटना को करने के लिए गुरु को कुछ करना नहीं पड़ता है। वह समर्पण का सहज फल है।

पर निर्णय अंततः आपका है। स्वतंत्रता आपकी है। उसे कोई भी नहीं छीन सकता। और जब आप छोडते हैं तो यह स्वतंत्रता का कृत्य है। जब आप कहते हैं, मैं छोड़ता हूं सब चरणों में, तो यह आपकी स्वतंत्रता का आखिरी कृत्य है। इस कृत्य के परिणाम में मुक्ति फलित होती है।

कृष्ण तो सिर्फ कैटेलिटिक एजेंट हैं, वे तो सिर्फ एक बहाना हैं। तो इसलिए कोई असली कृष्ण को भी खोजने की जरूरत नहीं है। मंदिर में खड़े कृष्ण के सामने भी आप सब छोड़ दें, तो यही घटना घट जाएगी। हालांकि वहां कोई भी नहीं खड़ा है।

यह घटना कहीं भी घट सकती है। यह घटना आपके छोड़ने पर निर्भर है। किस पर आप छोड़ते हैं, यह बात गौण है। इसलिए जीसस पर कोई छोड़े, कृष्ण पर कोई छोड़े, बुद्ध पर कोई छोड़े, कोई फर्क नहीं पड़ता। किस पर छोड़ा, यह गौण है। छोड़ा, तत्क्षण आप दूसरे हो जाते हैं। नए का जन्म हो जाता है।

समर्पण पुनर्जन्म है, शरीर में नहीं, परमात्मा में। वह जीवन की धारा का पूरी तरह से ब्रह्म की तरफ उन्मुख हो जाना है।

अब हम सूत्र को लें।
हे अर्जुन, तमोगुण के बढ़ने पर अंतःकरण और इंद्रियों में अप्रकाश एवं कर्तव्य—कर्मों में अप्रवृत्ति और प्रमाद और निद्रादि अंतःकरण की मोहनी वृत्तियां, ये सब उत्पन्न हो जाती हैं।

एक—एक गुण का लक्षण कृष्ण गिना रहे हैं। ठीक से समझें। तमोगुण के बढ़ने पर जीवन में अप्रकाश, अंधेरा मालूम होने लगता है।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, हम पढते हैं शास्त्रों में कि भीतर देखो, वहा परम ज्योति जल रही है। हम भीतर देखते हैं, वहां सिर्फ अंधकार है!

परम ज्योति निश्चित ही वहां जल रही है। जिन्होंने कहा है, उन्होंने देखकर ही कहा है। पर आप जब तक तमस से घिरे हैं, तब तक आप जहां भी देखें, वहीं अंधकार पाएंगे। भीतर देखें, तो अंधकार पाएंगे, बाहर देखें, तो अंधकार पाएंगे। जीवन में तलाश करें, तो आपको लगेगा, सब अंधेरा है। क्या फायदा है इस जीवन का? क्या हो रहा है? कहां मैं पहुंच रहा हूं? यह सब अंधे की तरह चला जा रहा हूं।

हर आदमी, जिसमें थोड़ा भी विचार है, विचारेगा तो फौरन पाएगा, चारों तरफ गहन अंधकार है। और इस अंधकार से कोई छुटकारा नहीं दिखता। और दीये वगैरह की बातचीत ही बातचीत मालूम होती है। कहीं कोई दीया नहीं दिखाई पड़ता; कहीं कोई आपकी प्रकाश नहीं दिखाई पड़ता।

वह अंधकार तमोगुण के कारण है। और जब तमोगुण बढ़ेगा, तो अंधकार बढेगा। इसलिए आपकी जिंदगी में भी अंधकार की तारतम्यता होती है। जब कभी आप किसी सात्विक वृत्ति में डूब जाते हैं, तो आपकी जिंदगी में भी एक आलोक आ जाता है। कभी छोटे—से कृत्य में भी यह घटना घटती है।

आप राह से गुजर रहे हैं, किसी का एक्सिडेंट हो गया, कोई राह के नीचे गिर पड़ा। आप अपना काम छोड्कर उस आदमी को उठा लिए। आपके भीतर का तमस तो कहेगा कि किस झंझट में पड रहे हो! पुलिस थाने जाना पड़े; अस्पताल जाना पड़े। और पता नहीं कोई उपद्रव इसमें आ जाए! आपके भीतर का तमस तो कहेगा कि रास्ते पर अपने चलो। समझो कि तुमने देखा ही नहीं। तुम्हारा कुछ लेना—देना नहीं है।

लेकिन अगर उस तमस का आपने साथ न दिया, सहयोग न दिया और मन में उठी सत्य की वृत्ति का सहयोग किया, उस व्यक्ति को उठा लिया, चाहे थोड़ी झंझट हो। झंझट संभव है। झंझट नहीं होगी, ऐसा भी नहीं। थोड़ी परेशानी हो, अपना काम छोड्कर किसी दूसरे काम में उलझना पड़े। लेकिन अगर आपने उठा लिया, तो उस क्षण में आप अपने भीतर अगर ध्यान करेंगे, तो आप पाएंगे कि वहा धीमा प्रकाश है।

जीसस ने कहा है अपने अनुयायियों से, कि इसके पहले कि तुम प्रभु—मंदिर में प्रार्थना करने आओ, सोच लो, तुमने किसी का बुरा तो नहीं किया है! अगर किसी का बुरा किया है, तो जाओ, उसे ठीक कर आओ। अगर तुमने किसी को गाली दी है, तो क्षमा मांग आओ। तभी तुम प्रार्थना में उतर सकोगे। क्योंकि अगर तमस मन में लिए हुए कोई मंदिर में गया, तो भीतर अंधकार होगा; प्रकाश का पता नहीं चलेगा।

सच तो यह है कि मंदिर जाने के पहले आपको अपने सत्व को जगा लेना चाहिए, तो ही मंदिर में जाने की कोई सार्थकता है। कुछ करें, जिससे सत्व जगता हो। सत्व जग जाए, तो प्रार्थना आसान हो जाएगी। सत्व जग जाए तो आंख बंद करने से भीतर हलका प्रकाश मालूम होगा।

यह हलका प्रकाश कोई प्रतीक नहीं है। यह वास्तविक घटना है। आप चौबीस घंटे इसका अनुभव करें। जब मन क्रोध से भरा हो, तब आंख बंद करके देखें। तब आप पाएंगे, भीतर बहुत घना अंधकार है। जब मन दया और करुणा से भरा हो, तब आंख बंद करके देखें। तब आप पाएंगे, भीतर थोड़ी रोशनी है। और जब मन ध्यान से भरा हो, तब भीतर देखें। तो पाएंगे, विराट प्रकाश है। कबीर ने कहा है, हजार—हजार सूरज जैसे एक साथ जल गए। कबीर ने कहा है कि अब तक जिसे हमने प्रकाश समझा था, अब वह अंधेरा मालूम होता है, भीतर का प्रकाश जब से देखा।

यह प्रकाश हमें नहीं मिलता। क्योंकि इस प्रकाश को देखने के लिए सत्व की आंख चाहिए।

कृष्ण कह रहे हैं, तमोगुण के बढने पर अंतःकरण और इंद्रियों में अप्रकाश।

अंतःकरण में अंधेरा और इंद्रियों में भी अंधेरे का एक बोध होगा। जब तम बढ़ेगा, तो आप अपने शरीर में भी पाएंगे कि एक बोझिलता है। आप पाएंगे कि जैसे शरीर वजनी है। जब आप सत्व वृत्ति से भरे होंगे, तो पाएंगे, शरीर हल्का है, आलोकित है। आप उछलते हुए चल रहे हैं। जैसे जमीन की कशिश कम काम करती है। जैसे आप पर उसका कोई प्रभाव नहीं है।

और योगियों को निरंतर अनुभव हुए हैं; और जो भी लोग ध्यान में बैठते हैं, उनको भी अनुभव होते हैं। ध्यान करते—करते अचानक ऐसा लगता है कि जमीन से उठ गए। जरूरी नहीं कि आप उठ गए हों। आंख खोलकर पाते हैं कि जमीन पर बैठे हुए हैं। लेकिन आंख बंद करके लगता है, जमीन से उठ गए।

वह अनुभव वास्तविक है। वास्तविक इस अर्थ में नहीं है कि आप जमीन से उठ गए। वास्तविक इस अर्थ में है कि भीतर आप इतने हलके हो जाते हैं कि ऐसा प्रतीत होने लगता है कि जमीन से हट गए होंगे। और कभी—कभी यह घटना इतनी गहरी घटती है कि वस्तुत: शरीर जमीन से ऊपर उठ जाता है।

योरोप में एक महिला का बहुत अध्ययन चल रहा है, जो चार फीट जमीन से ऊपर अपनी ध्यान की अवस्था में उठ जाती है। जब भी वह ध्यान करती है, बस धीरे— धीरे, धीरे— धीरे शरीर उसका चार फीट ऊपर चला जाता है। उस पर बड़ा मनोवैज्ञानिक, वैज्ञानिक अध्ययन चल रहा है। क्योंकि यह प्रकृति का गहरे से गहरा नियम है, जिसकी विपरीतता हो गई।

जमीन खींच रही है हर चीज को। और बिना किसी साधन के किसी का ऊपर उठ जाना.। लेकिन योग की पुरानी सिद्धियों में उसका उल्लेख है। निरंतर योगियों को अनुभव हुआ है। और ऐसा तो किसी को भी अनुभव होता है, जो भी थोड़ा हल्का होता है, भीतर प्रकाश भरता है, उसको लगता है कि जमीन छूट गई, जैसे वह उड़ जाएगा। उड़ने का भाव पैदा हो जाता है। वह हलकेपन के कारण है।

इंद्रियां और अंतःकरण दोनों अप्रकाश से भरते हैं तमोगुण के कारण। और कर्तव्य—कर्मों में अप्रवृत्ति हो जाती है।

कर्तव्य—कर्म का अर्थ है, जिसको करना जरूरी था, अनेक कारणों से। मां बीमार है, उसके लिए दवा ले आना जरूरी था। जिसने जीवन दिया है, उसके जीवन की थोड़ी चिंता और फिक्र एकदम स्वाभाविक है। लेकिन तमस से भरा हुआ व्यक्ति उसमें भी आलस्य करेगा। वह सोचेगा, हजार तरकीबें मन में सोचेगा। न करने के उपाय सोचेगा।

वह यह भी सोच सकता है कि यह बीमारी कोई खतरनाक थोड़े ही है। वह यह भी सोच सकता है कि डाक्टर कहां ठीक कर पाते हैं! सब प्रभु की कृपा से ठीक होता है। वह यह भी सोचेगा कि भाग्य में ठीक होना होगा, तो हो ही जाएगी। नहीं होना होगा, तो कुछ किया नहीं जा सकता। वह सब बातें सोचेगा।

अक्सर तामसी वृत्ति के लोग भाग्य की बातें सोचते हैं, भगवान की बातें सोचते हैं; सिर्फ अपने को बचाने के लिए। यह भगवान और भाग्य कोई उनके जीवन की क्रांति नहीं है। यह सिर्फ पलायन और बचाव है।

मेरे पास लोग आते हैं, वे मुझसे एक सवाल करीब—करीब लाखों लोग पूछते हैं। और वह सवाल है कि पुरुषार्थ बड़ा या भाग्य? और मैंने यह अनुभव किया है कि अगर उनको समझाओ कि पुरुषार्थ बड़ा, तो वे प्रसन्न नहीं होते। अगर उनको समझाओ कि भाग्य बड़ा, तो बड़े प्रसन्न लौटते हैं।

मैंने दोनों बातें करके देख ली हैं। और कई बार एक ही आदमी पर भी दोनों बातें करके देखी ली हैं। दो—तीन महीने बाद वह फिर आ जाता है! उसको मैंने समझाया था, पुरुषार्थ बड़ा। वह उसको जंचा तो नहीं, मगर मुझसे वह ज्यादा वाद—विवाद भी नहीं कर सका, तो चला गया। मगर खिन्न गया। फिर दो—चार महीने बाद भूल गया वह कि मुझसे पूछ चुका है। वह फिर आकर पूछ लेता है, पुरुषार्थ बड़ा कि भाग्य? अब मैं उसको कहता हूं, भाग्य ही बड़ा है; पुरुषार्थ में क्या रखा है! वह कहता है, बिलकुल ठीक।

इसलिए नहीं कि उसको बात समझ में आ गई। क्योंकि भाग्य तो उसको ही समझ में आ सकता है, जो अहंकार से मुक्त हो जाए; उसके पहले समझ में नहीं आ सकता। क्योंकि भाग्य का मतलब है, अब मैं नहीं हूं यह विराट है। मेरे किए कुछ न होगा, क्योंकि मैं हूं ही नहीं। अगर हूं? तो मेरे किए कुछ हो सकता है। मैं हूं ही नहीं। विराट का कर्म है, उसमें मेरी कोई सत्ता नहीं है। भाग्य का मतलब है, मैं नहीं हूं. ब्रह्म है।

यह तो बड़े ज्ञान की बात है, समाधि में फलित होती है। लेकिन यह जो आदमी भाग्य से प्रसन्न होता है, वह तामसी है। वह असल में यह कह रहा है कि जो हो रहा है, अपने किए तो कुछ हो नहीं सकता, इसलिए क्यों करो! बैठा है। और ऐसा नहीं है कि सभी कर्म छोड़ देगा। सिर्फ कर्तव्य—कर्म छोड़ देगा। इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है।

कृष्ण कहते हैं, कर्तव्य—कर्म छोड़ देगा।

घर में आग लग जाए, तो नहीं बैठा रहेगा कि जब भाग्य में है......। मां बीमार हो, तो कहेगा, सब भाग्य से होता है। पिता भूखा मर रहा हो, तो सोचेगा, क्या किया जा सकता है! अपने— अपने कर्मों का फल है, सबको भोगना पड़ता है। लेकिन घर में आग लग जाए, तो यह सबसे पहले भागकर खड़ा बाहर हो जाएगा। तब यह नहीं सोचेगा कि बचना होगा, तो बचेंगे; जलना होगा, तो जलेंगे। जाना कहा! आना कहां!

कर्तव्य जहां है, वहां यह तमस वृत्ति से भरा हुआ व्यक्ति कर्तव्य को काटेगा, और जहां वासना है, वहां नहीं काटेगा। और यह सब तरकीबें खोजेगा।

मैं एक घटना पढ रहा था। तीन यहूदी चर्चा कर रहे थे। और चर्चा थी कि किसका मंदिर प्रोग्रेसिव है, किसका मंदिर प्रगतिशील है, किसका सिनागाग सबसे ज्यादा आधुनिक है।

धार्मिक लोगों में ऐसी चर्चा चलती है। और धार्मिक लोग निरंतर सोचते हैं कि धर्म को आधुनिक होना चाहिए, आज के अनुकूल होना चाहिए। बड़े व्याख्यान, बड़ी किताबें लिखी जाती हैं कि धर्म को नया करो। इसकी भी फिक्र नहीं होती कि धर्म नया—पुराना कैसे हो सकता है।

पहले यहूदी ने कहा कि मेरे मंदिर से ज्यादा प्रगतिशील किसी का भी मंदिर नहीं है। पूछा दूसरों ने कि क्या कारण है! तो उसने कहा कि हमने जहां तोरा रखा है, जहां हमारी धर्म—पुस्तक रखी है, उसी के बगल में ऐश ट्रे भी रख दी है कि कोई सिगरेट भी पीना चाहे, तो मंदिर में पी सकता है। राख झाड़ सकता है और किताब भी पढ़ सकता है। यह प्रगतिशीलता है हमारी।

दूसरे ने कहा, यह कुछ भी नहीं है, क्योंकि हमने अपने मंदिर में टी .वी. सेट का भी इंतजाम कर दिया है। ऐश ट्रे तो बहुत पहले से रखी है। शराब भी उपलब्ध है। नाच—गाने का भी पूरा इंतजाम है। तोरा पढ़ना हो, तो पढ़ो। न पढ़ना हो, तो वह भी कोई मजबूरी नहीं है। नाच—गा सकते हो; टी. वी. देख सकते हो। हमारा मंदिर बिलकुल आधुनिक है।

तीसरे ने कहा, यह सब कुछ भी नहीं है।

तब योम किप्पूर के दिन थे, यहूदियों के धार्मिक दिन थे। तभी यह चर्चा चल रही थी।

तीसरे ने कहा, हमने अपने मंदिर पर एक तख्ती लगा दी है क्लोज्ड बिकाज आफ दि होली डेज—पवित्र दिनों के कारण बंद। क्योंकि लोग मनाए पवित्र दिन कि मंदिर आएं! लोग मजा करें कि मंदिर आएं! वह मंदिर पवित्र दिनों के लिए बनाया हुआ है, उस पर तख्ती लगा दी। यह आखिरी वक्तव्य है, अब इससे ज्यादा प्रगतिशील और कुछ हो भी नहीं सकता।

आदमी बहुत बेईमान है। वह सभी अच्छे शब्दों के पीछे अपनी गलतियों के सहारे खोज लेता है। प्रगतिशील के पीछे वह सब तरह की नासमझिया खोज लेता है। भाग्य के पीछे वह सब तरह के आलस्य को छिपा लेता है। परमात्मा के नाम के पीछे सब तरह के तमस को लेकर बैठ जाता है।

कृष्ण कहते हैं, जब तमस बढ़ता है, उसका घनीभूत रूप होता है मन में, तो कर्तव्य—कर्मों में अप्रवृत्ति और प्रमाद होता है। निद्रादि अंतःकरण की मोहिनी वृत्तियां, ये सभी उत्पन्न होती हैं।

और ज्यादा नींद आती मालूम पड़ती है। नींद का मतलब इतना ही है कि वह ज्यादा सोया रहता है। हर चीज में जागा हुआ नहीं रहता; सोया—सोया रहता है। गीता भी पड़ेगा, तो ऐसे पढ़ रहा है, जैसे नींद में पढ़ रहा हो। सुन भी रहा है, तो ऐसे सुन रहा है, जैसे सोया हो और सुन रहा है।

धार्मिक मंदिरों में सभाओं में जाकर देखें, लोग सोए हुए हैं। कुछ डाक्टर तो कहते हैं कि नींद न आती हो, तो धार्मिक सभा में जाकर बैठें। वहां निश्चित आ जाती है। जिस पर ट्रैक्येलाइजर भी सफल नहीं होता, उसको भी आ जाती है। राम की कथा सुनो, एकदम नींद आने लगती है!

एक आलस्य है, जो मन को पकड़े हुए है सब तरफ। निद्रा बढ़ती है; मोहिनी वृत्तियां पैदा होती हैं।

मोहिनी वृत्ति का अर्थ है, उस चीज में ज्यादा मन लगता है, जहां बेहोशी बढ़े। शराब हो, नाच हो, संगीत हो, कामवासना हो, जहां भी निद्रा बढ़े, जहां भी जागरण की कोई जरूरत न हो, वहां उस तरफ जाने का भाव प्रवाहित होता है।

जब यह जीवात्मा सत्वगुण की वृद्धि में मृत्यु को प्राप्त होता है, तब तो उत्तम कर्म करने वालों के मलरहित अर्थात दिव्य स्वर्गादि लोकों को प्राप्त होता है।

और जब जीवनभर के अंत में जीवन का सारा निचोड़ और सार है, मृत्यु के क्षण में आपने जीवन में जो भी कमाया है, वह सारभूत सब आणविक होकर आपके साथ खड़ा हो जाता है।

अगर कोई व्यक्ति जीवनभर तमस से भरा रहा है, तो मरने के पहले बेहोश हो जाता है। अधिक लोग मरने के पहले बेहोश हो जाते हैं। मृत्यु होश में नहीं घटती। जो जीए ही नहीं होश में, वे मर कैसे सकते हैं! सिर्फ सत्व—प्रधान व्यक्ति ही मरते वक्त होश से भरे होते हैं। वह लक्षण है कि उसने जीवन में जागा हुआ होने का, अप्रमाद में रहने का प्रयास किया, तो मृत्यु जागते घटती है। वह मृत्यु को देख पाता है। और जो मृत्यु को देख पाता है, वह अमृत हो जाता है।

रजोगुण से भरा हुआ व्यक्ति मृत्यु के क्षण में भी जीवन की ही सोचता रहता है। वह तब भी सोचता रहता है, कितने काम अधूरे रह गए। थोड़ा मौका मिल जाए, तो ये भी पूरे कर दूं। वह कभी यह नहीं सोचता कि सब भी पूरे करके क्या होगा? और काम तो अधूरे रह ही जाएंगे। क्योंकि वासनाओं का कोई अंत नहीं है। कितना ही करो, कभी भी करो, आधे में ही मरना पड़ेगा।

कोई भी आदमी पूर्ण विराम पाकर नहीं मर सकता, कि कहे कि सब काम पूरे हो गए, सब वासनाएं तृप्त हो गईं, जो करना था सब कर लिया, अब जीने का कोई कारण नहीं। नहीं, कोई आदमी ऐसा नहीं मर पाता। कुछ न कुछ बाकी रहेगा ही। और जैसे—जैसे मौत करीब आती है, वैसे—वैसे लगता है कि बहुत बाकी रह गया। समय कम और करने को ज्यादा, और करने की क्षमता रोज क्षीण होती चली जाती है।

तमोगुण से भरा हुआ व्यक्ति मरते वक्त बेहोश हो जाता है। रजोगुण से भरा हुआ व्यक्ति मरते वक्त भी मन में क्रियाएं जारी रखता है। सत्वगुण से भरा हुआ व्यक्ति मरते वक्त शांत जागरूकता में मरता है, होशपूर्वक मरता है। इन तीनों के परिणाम होंगे आने वाले जीवन पर।

जो सत्वगुण की स्थिति में मृत्यु को उपलब्ध होगा, कृष्ण कहते हैं, वह दिव्य स्वर्गादिक लोकों में प्रवेश कर जाता है।

सत्व की स्थिति में जो मरता है, वह परम सुख की अवस्था में प्रवेश कर जाता है। स्वर्ग परम सुख की अवस्था है। लेकिन ध्यान रखें, अंतिम अवस्था नहीं है। सुख की ही अवस्था है; आनंद की अवस्था नहीं है। और आनंद और सुख में इतना ही फर्क है कि सुख की अवस्था शाश्वत नहीं है, समाप्त होगी। और आनंद की अवस्था शाश्वत है, समाप्त नहीं होगी।

सुख की अवस्था के बाद फिर दुख आएगा। जैसे दिन के बाद रात आती है, ऐसा सुख के बाद फिर दुख आएगा। चाहे सुख कितना ही लंबा हो, लेकिन दुख से छुटकारा नहीं है। दुख पीछे खड़ा हुआ प्रतीक्षा कर रहा है। सुख एक कमाई है, जो चुक जाएगी। इसलिए स्वर्ग में गया हुआ वापस लौट आएगा; कितने ही समय के बाद, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। वापस लौटना सुनिश्चित है।

सुख अंतिम नहीं है। उसके साथ दुख जुड़ा है। आनंद अंतिम है। उसके साथ फिर कुछ भी नहीं जुड़ा है। जो आनंद में प्रविष्ट हो गया, उसका पुनरागमन नहीं है; वह वापस नहीं लौटता।

सत्व की स्थिति में मरा हुआ व्यक्ति स्वर्ग में प्रवेश पाता है। जिसने जीवनभर साधुता साधी हो, सत्व को जगाया हो, होश को निर्मित किया हो, वह स्वर्ग में प्रवेश करता है।

रजोगुण के बढ़ने पर मृत्यु को प्राप्त होकर कर्मों की आसक्ति वाले मनुष्यों में उत्पन्न होता है।

और अगर रजोगुण पीछे पड़ा रहा हो, मरते क्षण में भी योजनाएं बनती रही हों, फाइव इयर प्लान तैयार होते रहे हों, तो ऐसा आदमी मरकर कर्मों की आसक्ति वाले मनुष्यों में उत्पन्न होता है।

कर्मों की आसक्ति वाले मनुष्य हैं। कोई धन के लिए दौड़ रहा है, कोई पद के लिए दौड़ रहा है, कोई प्रतिष्ठा के लिए दौड़ रहा है। कुछ करना है उन्हें। कुछ करके दिखाना है, चाहे कोई देखने को उत्सुक हो या न हो। चाहे कुछ करने से फल आता हो, न आता हो। सिकंदर और नेपोलियन सब कर—करके मर जाते हैं, कुछ परिणाम आता नहीं। लेकिन कुछ करके दिखाना है!

यह जो करने की वृत्ति पैदा होती है, इसके लक्षण मां के पेट में बच्चा होता है, तब भी दिखाई पड़ने शुरू हो जाते हैं। वह जो रजोगुणी बच्चा है, वह मां के पेट में भी हलन—चलन ज्यादा मचाता है। इसलिए मां जान जाती है कि पेट में लड़की है या लड़का। अगर. लड़का है, तो थोड़ा उपद्रव ज्यादा करता है। क्योंकि पुरुष ज्यादा रजोगुण—प्रधान है। स्त्री ज्यादा तमोगुण—प्रधान है। इसलिए लड़की होती है, तो वह शांत पड़ी रहती है। लड़का होता है, तो वहां थोड़ी कुछ क्रांति खड़ी करता है। उसमें भी अगर राजनीतिज्ञ होने वाला हो..!

मुल्ला नसरुद्दीन का लड़का था। तो वह उसके संबंध में सोचता था कि यह क्या बने, क्या न बने! तो उसने एक दिन कुरान रख दी, पास में एक सौ का नोट रख दिया, और एक तलवार रख दी। सोचा, तलवार उठा लेगा अंदर जाकर कमरे में, तो समझेंगे कि योद्धा बनेगा। कुरान उठा लेगा, तो समझेंगे कि धर्मगुरु, पुरोहित, साधु, फकीर, धर्म की यात्रा पर जाएगा। सौ का नोट उठा लेगा, तो समझेंगे कि धन, व्यवसाय, नौकरी, पेशा, कहीं धन कमाएगा। छिपकर देखता रहा। लड़का अंदर गया। वह नसरुद्दीन का ही लड़का था। उसने कुरान उठाकर बगल में दबाई; सौ का नोट खीसे में रखा, तलवार लेकर चल पड़ा। नसरुद्दीन ने कहा, यह राजनीतिज्ञ बनेगा! उसने कुछ छोड़ा ही नहीं। तीनों चीजें ले गया। वह जो रजोगुण से भरा हुआ व्यक्तित्व है.।

जीन पियागे ने बहुत अध्ययन किया है छोटे बच्चों का चालीस वर्षों तक निरंतर। उसका कहना है, पहले दिन से भी लक्षण अलग हो जाते हैं। वह जो तमोगुण—प्रधान बच्चा है, वह पड़ा रहता है। मां के पेट से जन्म के बाद भी वह तेईस घंटे, बाईस घंटे सोता है। वह जो रजोगुण—प्रधान है, वह हाथ—पैर चलाने लगता है, चीजों को पकड़ने की कोशिश शुरू कर देता है, चीखता—चिल्लाता है। वह खबर देता है कि मैं हूं। मेरी तरफ ध्यान दो। उसके चीखने—चिल्लाने का मतलब है कि क्या, मेरी तरफ कोई ध्यान नहीं दे रहा? ध्यान दो, मैं भी यहां हूं!

वह जो सत्वगुण—प्रधान है, अक्सर उसकी आंखें खुल जाएंगी और एकटक एक तरफ देखता रहेगा। उसने ध्यान के कुछ प्रयोग पिछले जन्मों में साधे होंगे। तो उसकी आंखें अक्सर एकटक, एक जगह उलझ जाएंगी। चीजों में उसका उतना रस नहीं होगा। इधर से उधर, यह देखना, वह देखना नहीं; यह पकड़ना, वह पकड़ना नहीं। शरीर उसका शांत होगा और आंखें थिर होंगीं। उसकी आंखों की थिरता कहेगी कि भीतर एक सात्विकता है।

मरते वक्त हम अपना अगला जन्म निश्चित कर रहे हैं। जो गुण सघन हो जाता है, वही हमें अगले जन्म की यात्रा पर भेद पैदा करता है।

रजोगुण के बढ़ने पर मृत्यु को प्राप्त होकर कर्मों की आसक्ति वाले मनुष्यों में उत्पन्न होता है।

आपने नाम सुना डिजरायली का। छोटा बच्चा था, तो कुछ भी उपद्रव करने की वृत्ति थी। कोई उस पर ध्यान न दे, तो बहुत अड़चन हो जाती थी। घर में कोई मेहमान आ जाए, तो वह जरूर कोई उपद्रव खड़ा कर देता था। मां—बाप परेशान थे। क्योंकि घर में कोई न हो, तो वह ठीक रहता। लेकिन मेहमान आए, कि वह कुछ उपद्रव खड़ा कर देगा। क्योंकि मेहमानों का ध्यान किसी और पर नहीं होना चाहिए, उस पर ही होना चाहिए।

एक बार तो वह चर्च पर चढ़ गया। और जहां चर्च का त्रिशूल लगा था ऊपर, उससे जाकर अटक गया। सारा गांव इकट्ठा हो गया। और लोग चिल्ला रहे हैं कि तू उतर आ वापस। किसी दूसरे की चढ़ने की हिम्मत भी नहीं उस चर्च की मीनार पर। और वह वहां प्रसन्नता से खड़ा है।

जब उसके बाप ने उससे पूछा कि तू चाहता क्या था वहां चढ़कर? उसने कहा, क्या चाहता था? पूरा गाव देख ले!

वह इंग्लैंड का प्रधानमंत्री बना।

लार्ड क्लाइव को हिंदुस्तान भेजा गया था। और कुल कारण इतना था कि मां—बाप परेशान हो गए। उसके उपद्रव से पूरा गाव परेशान हो गया। एक बार बाप एक साइकिल खरीद लाया क्लाइव के लिए। उसकी मां ने कहा, यह किस लिए लाए हो? क्या इससे इसके उपद्रव कम हो जाएंगे! उसके बाप ने कहा, उपद्रव कम नहीं होंगे; क्षेत्र थोड़ा बड़ा हो जाएगा। यहीं—यहीं मोहल्ले में परेशान किए दे रहा है। क्षेत्र जरा बड़ा हो जाएगा। साइकिल हाथ में रहेगी, तो पूरे गांव को परेशान करेगा। तो थोड़ी मात्रा कम हो जाएगी। बड़ा क्षेत्र होगा, उपद्रव बंट जाएगा। हम परेशान हो गए। अब कोई और उपाय नहीं।

गांव में जोर की वर्षा हुई; पानी भर गया नालियों में। तो क्लाइव के घर में और मोहल्ले में सबसे ज्यादा पानी था। और घर में पानी भरने लगा। सब हैरान हुए कि क्लाइव कहां है!

वह नाली में लेटा हुआ था पानी रोके हुए ताकि वह घर में भर जाए पानी! उसको निकालकर उसके बाप ने फौरन मिलिट्री में भेज दिया। उसने कहा कि इसको यहां रोकना ठीक ही नहीं। यह जब तक मरेगा—मारेगा नहीं.....यह तो उपद्रव है!

वह आदमी, लार्ड क्लाइव, हिंदुस्तान में अंग्रेजों का राज्य जमाने में बड़े से बड़ा आधार सिद्ध हुआ।

रजोगुण से भरा हुआ व्यक्ति कुछ विक्षिप्त कर्मों में दौड़ना चाहता है। अहंकार प्रकट होकर दिखाई पड़े; अहंकार सूरज की तरह जले और हजारों लोग देखें; बस, वही उसकी कामना होती है।

और तमोगुण के बढ़ने पर मरा हुआ पुरुष मूढ़ योनि में उत्पन्न होता है।

मूढ़ योनि की बड़ी गलत परिभाषाएं हुई हैं। अनेक गीता के व्याख्याकारों ने मूढ़ योनि का अर्थ लिया है कि वह पशुओं में चला जाता है। वह गलत है। क्योंकि लौटकर नीचे गिरने का कोई उपाय जगत में नहीं है। कोई मनुष्य की स्थिति में एक बार आ जाए, तो वापस पशु नहीं हो सकता। क्योंकि वापस पशु होने का तो मतलब यह हुआ कि मनुष्यता तक पहुंचने की जो कमाई थी, उसका क्या होगा।

चेतना कभी पीछे नहीं लौटती। रुक सकती है। आगे न जाए, यह हो सकता है। अवरुद्ध हो जाए, लेकिन पीछे नहीं लौट सकती। एक बच्चा अगर दूसरी कक्षा में आ गया, तो उसको पहली कक्षा में वापस भेजने का कोई उपाय नहीं।

वह दूसरी में पचास साल रुके, तो रुक सकता है, कोई हर्जा नहीं। लेकिन उसको पहली में वापस करने की कोई व्यवस्था नहीं है। क्योंकि वह पहली पार कर ही चुका। और जो हम जान चुके, उसे न—जाना नहीं किया जा सकता। जो हम कर चुके, उस अनकिया नहीं किया जा सकता।

इसलिए मेरी दृष्टि में जिन—जिन व्याख्याओं में कहा गया है कि तमस से भरा हुआ व्यक्ति पशुओं की योनि में चला जाता है, ये व्याख्याएं गलत हैं। और जिन्होंने की हैं, वे केवल शब्दों के आधार पर व्याख्याएं कर रहे हैं।

मूढ़ योनि का मतलब है कि मनुष्यों में ही, जैसे कर्म से भरे हुए लोग हैं, सत्व से भरे हुए लोग हैं, वैसे ही तमस से भरे हुए मूढ़ लोग हैं।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि पांच प्रतिशत बच्चे मूढ़ योनि में हैं, जिनको हम ईडियट कहें, इम्बेसाइल कहें। पांच प्रतिशत बच्चे। न कोई बुद्धि है, न कुछ करने का भाव है। अपने जीवन की रक्षा तक की सामर्थ्य नहीं है। जो मूढ़ बच्चा है, घर में आग लग जाए तो भागकर बाहर नहीं जाएगा। उसको यह भी पता नहीं है कि मुझे अपने को बचाना है। इतना भी कर्म पैदा नहीं होता। यह योनि मूढ़ योनि है। जिसको मनोवैज्ञानिक ईडियोसि कहते हैं, उसको ही कृष्ण ने छू कहा है।

मूढ़ का मतलब पशु नहीं है। अगर पशु ही कहना होता, तो पशु ही कह दिया होता, मूढ़ कहने की कोई जरूरत न थी। पशु मूढ़ नहीं होते, सिर्फ मनुष्य ही मूढ़ हो सकता है। पशु मूर्ख नहीं होते, सिर्फ मनुष्य ही मूर्ख हो सकता है।

जो सत्व—प्रधान हैं, वे भी पांच प्रतिशत होते हैं। यह बड़ी आश्चर्यजनक बात है। मनोविज्ञान के आधार पर पाच प्रतिशत लोग टैलेंटेड होते हैं, प्रतिभाशाली होते हैं। वैज्ञानिक हैं, कवि हैं, दार्शनिक हैं, संत हैं। पांच प्रतिशत लोग एक छोर पर प्रतिभासंपन्न होते हैं। और ठीक पांच प्रतिशत लोग दूसरे छोर पर छू होते हैं। बाकी नब्बे प्रतिशत लोग बीच में होते हैं। ये मध्यवृत्तीय लोग हैं, मध्यवर्गीय लोग हैं।

ये जो मध्यवर्गीय लोग हैं, इनमें मूढ़ता भी सम्मिलित है, बुद्धिमत्ता भी सम्मिलित है। ये दोनों का मिश्रण हैं।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि स्थिति करीब—करीब ऐसी है, जैसा शिव का डमरू होता है, उसको हम उलटा कर लें। शिव का डमरू बीच में तो पतला होता है, दोनों तरफ बड़ा होता है। बीच में संकरा हो जाता है। इसको हम उलटा कर लें। दोनों तरफ संकरा और बीच में चौड़ा। तो दोनों तरफ संकरे छोरों पर पांच—पांच प्रतिशत लोग हैं।

वे जो पांच प्रतिशत लोग हैं, वे सत्व के कारण इस जगत में प्रतिभा से भरे हुए पैदा होते हैं। प्रतिभासंपन्न होना ही स्वर्ग में होना है। प्रतिभा सुख है। सुख की सूक्ष्म अनुभूति। और पांच प्रतिशत लोग मूढ़ होते हैं, जिनको कुछ भी होश नहीं, जिनको खाने—पीने का भी होश नहीं, जिनको उठने—बैठने का भी पता नहीं। बाकी लोग बीच में हैं, नब्बे प्रतिशत लोग।

ठीक मध्य में बड़े से बड़ा वर्ग है। करीब पचास प्रतिशत लोग ठीक मध्य में हैं। ये पचास प्रतिशत लोग दोनों तरफ यात्रा कर सकते हैं। चाहें तो कभी भी छू हो सकते हैं, और चाहें तो कभी भी प्रतिभा अर्जित कर सकते हैं। और यह निर्धारण मरने के क्षण में हो जाता है कि आप कैसे मर रहे हैं। तम से भरे हुए मर रहे हैं, रज से भरे हुए मर रहे हैं, सत्य से भरे हुए मर रहे हैं। बीच के जो लोग हैं, ये रजो—प्रधान हैं। तमो—प्रधान एक छोर पर हैं। सत्व—प्रधान दूसरे छोर पर हैं।

इस पूरी व्यवस्था को बदलने का एक ही उपाय है कि आप अपने भीतर गुणों की तारतम्यता को बदल लें। और यह कोई मरते क्षण के लिए मत रुके रहें कि मरते वक्त एकदम से सत्व—प्रधान हो जाएंगे। कोई कभी नहीं हो सकता।

मरते वक्त कुछ किया नहीं जा सकता। आपने जो जीवनभर में किया है, उसको ही इकट्ठा किया जा सकता है। जो कमाया है, वही। और आपके हाथ में फिर बदलाहट नहीं है। क्योंकि जीवन क्षीण हो रहा है, आप कुछ कर नहीं सकते।

अनेक लोग सोचते हैं, मरते वक्त राम का नाम ले लेंगे। जिन्होंने जीवनभर नहीं लिया राम का नाम, मरते वक्त उनके गले से वह शब्द न उठेगा। उनके होंठ सूख जाएंगे। उनके हृदय में कहीं छाया भी राम की न मिलेगी। उस वक्त तो वही शब्द उठेगा, जो उन्होंने जिंदगीभर सोचा है। कोई धन सोच रहा था, तो धन उठ सकता है। नोट दिखाई पड़ सकते हैं। तिजोरिया दिखाई पड़ सकती हैं। राम नहीं दिखाई पड़ेंगे।

वही जीवन के अंत में प्रकट होता है, जिसे हमने जीवनभर सम्हाला, बुलाया, निमंत्रण दिया है। इसलिए कल की प्रतीक्षा मत करें। और मृत्यु की राह मत देखें। जीवन ही जगह है, जहां हम अपनी मृत्यु को भी कमाते हैं।

ध्यान रहे, मृत्यु कमाई जाती है, मुफ्त नहीं मिलती। जितना आप कमाते हैं, वैसी मृत्यु हो जाती है। और जैसी मृत्यु, फिर वैसा नया जन्म हो जाता है। मृत्यु बड़ी सार्थक घटना है। क्योंकि नया जन्म उस पर निर्भर होगा। वह बीज है। नया जन्म, उससे वृक्ष बनेगा। जीवन को सत्व की तरफ ले चलें, तो आप स्वर्ग की तरफ अनिवार्य रूप से चलते जा रहे हैं।

स्वर्ग एक मनोदशा है। आप कहां हैं, यह सवाल नहीं है, कि कहीं आकाश में स्वर्ग है, वहा आप हैं। स्वर्ग एक मनोदशा है। आप जहां भी हों, सत्व से भरा हुआ व्यक्ति स्वर्ग में है।

गीता दर्शन–(भाग–7)
अध्याय—14 (प्रवचन—छठवां) — रूपांतरण का सूत्र: साक्षी—भाव

सूत्र:

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्विक निर्मलं फलम्।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम्।।16।।
सत्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ श्व च।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ।।17।।
ऊर्ध्व गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठीन्त राजसाः।
जधन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ।।18।।
सात्विक कर्म का तो सात्विक अर्थात सुख, ज्ञान और वैराग्यादि निर्मल फल कहा है। और राजस कर्म का फल दुख, एवं तामस कर्म का फल स्रान कहा है।

तथा सत्वगुण से ज्ञान उत्पन्न होता है और रजोगुण से निःसंदेह लोभ उत्पन्न होता है, तथा तमोगुण से प्रमाद और मोह उत्पन्न होते हैं और अज्ञान भी होता है।

इसलिए सत्वगुण में स्थित हुए पुरूष स्वगीदि उच्च लोकों को जाते हैं। और रजोगुण में स्थित राजस पुरुष मध्य में अर्थात मनुष्य लोकों में ही रहते है एवं तमोगुण के कार्यरूप निद्रा, प्रमाद और अधोगति मैं स्थित हुए तामस पुरूष अधोगति को अर्थात नीच योनियों को प्राप्त होते हैं।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्न :
आपने कल बताया कि लाओत्से तमस से, जीसस रजस से तथा महावीर सत्व से सीधे गुणातीत अवस्था में छलांग लगा गए। सत्व से गुणातीत में जाना समझ में आता है, लेकिन तमस और रजस से गुणातीत अवस्था में जाना किस प्रकार संभव है, यह समझ में नहीं आता!
गुणातीत अवस्था का अर्थ है, गुणों के बाहर हो जाना। जैसे स्वस्थ होने का अर्थ है, बीमारी के बाहर हो ?ई जाना। फिर बीमारी कौन—सी थी, यह सवाल नहीं है। कोई व्यक्ति टी. बी. से बीमार हो, तो टी. बी. के बाहर होकर स्वस्थ हो जाएगा। कोई व्यक्ति मलेरिया से बीमार हो, तो मलेरिया के बाहर होकर स्वस्थ हो जाएगा। सभी बीमारियां बाधा डालती हैं स्वस्थ होने में। सभी बीमारियों के बाहर जाने में श्रम करना होगा। सत्य भी बीमारी है। रजोगुण भी बीमारी है। तमोगुण भी बीमारी है। बीमारियां अलग—अलग हैं, पर तीनों बीमारिया हैं और तीनों बांधती हैं।

सत्वगुण से समझ में आता है, क्योंकि हम सोचते हैं, सत्वगुण बांधता नहीं। सत्वगुण भी बांधता है। और अगर बंधने की वृत्ति हो, तो सत्वगुण से बाहर जाना उतना ही कठिन है, जितना तमोगुण से बाहर जाना। और कभी—कभी तो ऐसा भी हो सकता है कि ज्यादा कठिन हो। क्योंकि सत्वगुण में एक सुख है, जो तमोगुण में नहीं है।

हर गुण के फायदे हैं और हानियां हैं। तमोगुण की हानि यह है कि आप आलस्य से भरे हैं; बाहर जाने की वृत्ति पैदा नहीं होती। लेकिन तमोगुण का एक फायदा है कि वहां सिवाय दुख और अंधकार के कुछ भी नहीं है। इसलिए बाहर जाने की प्रेरणा पैदा हो सकती है।

रजोगुण का एक लाभ है कि बड़ी ऊर्जा है और सक्रिय होने की वृत्ति है। इसलिए बाहर जाने में इस वृत्ति का उपयोग किया जा सकता है। लेकिन एक नुकसान है, कि रजोगुणी व्यक्ति इतना व्यस्त रहता है कर्मों में कि उसे स्वयं का बोध ही नहीं आता। वह कर्मों में खो गया होता है। उसे स्व की कोई प्रतीति नहीं रहती। वह करीब—करीब कर्मों में बेहोश होता है।

सत्वगुण का लाभ है कि वह हलके से हलका गुण है। उसका वजन न के बराबर है। कोई उसे हटाना चाहे, तो जरा भी बाधा नहीं है। सत्वगुण रोकेगा नहीं, हलका है; बिलकुल वजनशुन्य है, भारहीन है। लेकिन खतरा है। और खतरा यह है कि सत्वगुण सुख से भरा है। सुख को कोई भी छोड़ना नहीं चाहता है।

अगर मेरी बात समझ में आ जाए, तो तीनों गुणों के लाभ हैं और तीनों की हानियां हैं। तो ऐसा नहीं है कि कोई एक गुण ज्यादा लाभ का है गुणातीत जाने में या कोई गुण ज्यादा बाधक है। हर गुण के दोनों पहलू हैं, निगेटिव और पाजिटिव। उसका विधायक रूप भी है, उसका नकारात्मक रूप भी है।

लाओत्से जैसा व्यक्ति तामसिक गुण के विधायक रूप का उपयोग करके पार हो गया। बर्ट्रेंड रसेल जैसा व्यक्ति सत्वगुण के नकारात्मक रूप से उलझकर पार होने से रुक गया।

जीसस जैसा रजोगुणी व्यक्ति अपने कर्म को सेवा बनाकर परम अनुभव को उपलब्ध हुआ, गुणातीत हो गया। लेकिन वही गुण नेपोलियन में भी है, वही गुण लेनिन में भी है; पर वे उसके नकारात्मक रूप का उपयोग कर रहे हैं और एक राजनीतिक उपद्रव में खो जाते हैं।

मेरी द्दष्टि ठीक से ख्याल में आ जाए, तो साफ है। विधायक का उपयोग कर लें, तो किसी भी गुण से बाहर हो जाएंगे। और नकारात्मक का उपयोग किया, तो किसी भी गुण से बंध जाएंगे। और दोनों हर गुण के साथ हैं।

दुनिया में बहुत कम पंडित परम स्थिति को उपलब्ध होते हैं; शायद नहीं ही होते। सत्वगुण बौध लेता है। ज्ञानी होने का दंभ बांध लेता है। वे सत्वगुण के नकारात्मक रूप का उपयोग कर रहे हैं। कर्मठ व्यक्ति अक्सर उपद्रव में उलझ जाते हैं। और निष्क्रिय, आलसी व्यक्ति तो कुछ करता ही नहीं है; आलस्य में ही खो जाता है।

आप कहीं भी हों, निराशा का कोई कारण नहीं है। अगर आप जहां हैं, उस जगह से विधायक सूत्र को खोज लें।

फिर बाहर होने का कुल मतलब इतना है कि आपका तादात्म्य व्यक्तित्व से टूट जाए। मैं यह शरीर हूं यह भाव टूट जाए। मैं यह मन हूं, यह भाव टूट जाए। क्योंकि शरीर और मन तक ही गुणों का प्रभाव है। शरीर और मन के पीछे जो छिपा है, उस पर गुणों की कोई सत्ता नहीं है। वह गुणातीत अभी भी है। इस क्षण भी आप गुणातीत हैं, पूर्ण निष्पाप। लेकिन जिस शरीर और मन को आपने पकड़ा है, वह गुणों से भरा है।

ऐसा समझें कि कोई आदमी तो बिलकुल पवित्र है, लेकिन गंदे वस्त्र पहने हुए है। उससे जो दुर्गंध आ रही है, वह उसकी नहीं है, उसके वस्त्रों की है।

आपका जो व्यक्तित्व है, वही गुणों के प्रभाव में है। और तीन तरह के व्यक्तित्व हैं मौलिक, मूल रूप से, जिनको कृष्ण वर्णन कर रहे हैं, तामसिक, राजसिक, सात्विक। पूरब का मनोविज्ञान बड़ा गहरा है और उसने व्यक्तित्व की आखिरी जड़ पकड़ ली है। ये तीन तरह के व्यक्ति हैं। फिर और लोग भी अगर थोड़े—बहुत भेद से हों, तो वे इन तीन के ही जोड़—घटाने हैं। बाकी ये तीन मूल स्वर हैं।

आप जहां भी हों, और उचित होगा कि ईमानदारी से पहचान लें कि कहां हैं! क्योंकि मन बड़े धोखे देता है। और उसका गहरे से गहरा धोखा यह है कि वह आपको यह बताए, जो आप नहीं हैं। क्योंकि फिर आप कुछ भी करें, उसके परिणाम नहीं होंगे।

तामसी से तामसी व्यक्ति भी सोचेगा कि मैं सात्विक हूं तब यात्रा मुश्किल है। क्योंकि सात्विक वह है नहीं और सात्विकता की जो उसकी धारणा है, वह उसे ऐसी साधना पद्धतियां पकड़ा देगी, जो उसके काम की नहीं हैं। उसे जानना जरूरी है कि वह तामसिक है, क्योंकि उसकी यात्रा वहीं से शुरू होगी जहां वह खड़ा है। वहीं से चलना शुरू होगा।

तो आप क्या है, इसका निष्पक्ष, स्पष्ट, पक्षपातरहित, अहंकारमुक्त विश्लेषण चाहिए। आप गुरुओं के पास भी जाते हैं, लेकिन उनसे भी आप निष्पक्ष वक्तव्य लेने नहीं जाते। उनसे भी आप गवाही लेने जाते हैं। अगर गुरु आपसे कहे कि तुम तामसी हो, तो आप दुखी लौटेंगे। इस गुरु का आप पीछा ही छोड़ देंगे। आप जाकर कहेंगे, यह गुरु गलत है।

इधर मैं देखता हूं एक युवती ने आज ही मुझे आकर कहा। जिसमें किसी तरह की संभावना नहीं है उस बात की। वह एक बड़े गुरु के पास गई थी और गुरु ने कहा कि—वह युवती पश्चिम से आई है—उसे कहा कि शीघ्र ही तू स्वयं भी एक बहुत बड़ी गुरु हो जाने वाली है। पश्चिम में जाकर तेरे जीवन से अनेक लोगों को लाभ होगा। युवती बड़ी प्रसन्न लौटी। अहंकार को बड़ी गहरी तृप्ति मिली।

उस युवती में ऐसी कोई संभावना नहीं है। इस जन्म में तो कोई संभावना नहीं है। और इस कहने की वजह से अगर कोई छिपी संभावना कभी प्रकट भी हो सकती थी, तो वह भी समाप्त हो जाएगी। लेकिन वह खुश होकर लौटी। और उस व्यक्ति को गुरु मानकर लौटी।

अब यह सारा जाल है। जाल ऐसा है कि गुरु भी शिष्य को तभी फांस पाता है, जब वह उसके अहंकार को प्रसन्न करे। क्योंकि आप चोट नहीं चाहते, आप प्रशस्ति लेने जाते हैं। तो जिनको कुछ भी नहीं है, वे भी प्रशस्ति पाकर प्रसन्न होते हैं।

अब वह पागल होकर लौटी। जिस व्यक्ति ने उसको कहा है, वह भी गुरु के योग्य नहीं है। क्योंकि यह बात झूठ है और गलत है। और अगर इस युवती को वहम सवार हो जाए गुरु होने का, तो यह भारी नुकसान करेगी।

दुनिया में गलत गुरु जितना नुकसान करते हैं, उतने अपराधी भी नुकसान नहीं करते। क्योंकि अपराधी क्या छीन सकता है आपसे? धन छीन लेगा, प्राण छीन सकता है ज्यादा से ज्यादा! लेकिन प्राण मिटते नहीं, और धन का कोई मूल्य नहीं है। लेकिन गलत गुरु आप से उस अवसर को छीन लेगा, जो सब कुछ है। और उसे पता भी नहीं है कि वह आपसे कुछ छीन रहा है। और छीनने की सबसे ज्यादा सुविधापूर्ण व्यवस्था यह है कि आपके अहंकार को कोई तृप्त करे।

गुरजिएफ जैसे गुरु के पास अगर जाएंगे, तो वह जो आपके भीतर साफ—साफ है, उसकी ही बात करेगा। गुरजिएफ अपने शिष्यों को पहले तो शराब पिलाता था। और जब तक वह शराब पीकर बेहोश न हो जाते, तब तक वह उन्हें स्वीकार नहीं करता था। क्योंकि उस बेहोशी में ही उनका सच्चा रूप प्रकट होता।

जब आप शराब पीकर पूरी तरह बेहोश हो जाते हैं, तब आपका जो निम्नतम आपने छिपा रखा है, वह प्रकट होगा। और गुरजिएफ कहता है कि जब तक मैं तुम्हारे निम्नतम को न देख लूं तब तक मैं कोई काम शुरू न करूंगा। क्योंकि वहीं से काम शुरू होना है। तुम्हारा श्रेष्ठ तो कल्पना है। तुम्हारा निकृष्ट तुम्हारा यथार्थ है।

आपका मन भी धोखा देगा। जो आप नहीं हैं, आपका मन सदा कहेगा, आप यही हैं। इस धोखे से सावधान होना जरूरी है।

क्या करें? सबसे पहले तो इस बात की खोज करें कि तामसी तो नहीं हैं। सब तरह से पहले तो सिद्ध करने की कोशिश करें कि तामसी हैं अपने को। सब उपाय खोजें, सब तर्क खोजें, जिनसे सिद्ध होता हो कि मैं तामसी हूं। अगर कोई उपाय ही न मिले सिद्ध करने का, तो खयाल छोड़े। फिर अपने को राजसी सिद्ध करने की कोशिश करें। जब राजसी सिद्ध करने का भी कोई उपाय न मालूम पड़े, कोई तर्क न मिले, तो ही समझें कि आप सात्विक हैं। अन्यथा सात्विक मत समझें।

निकृष्ट से शुरू करें। और पहले निकृष्ट को ही सोचें कि मैं हूं। और अगर मिल जाए सूत्र कि यही मैं हूं तो आप सौभाग्यशाली हैं, क्योंकि फिर काम शुरू हो सकता है।

गुरजिएफ कहता था, तुम्हारी जो सबसे बड़ी कमजोरी है, वह तुम्हें पहले पकड़ में आ जानी चाहिए। क्योंकि कमजोरी ही तुम्हारा छिद्र है। उसी छिद्र से तुम्हारी जीवन ऊर्जा व्यर्थ हो रही है।

एक घड़े को हम पानी भरने के लिए कुएं में डालते हैं। पूरा घड़ा बेमानी है एक छोटे—से छेद के कारण। वह एक छोटा—सा छेद ही भरे हुए घड़े को ऊपर तक आते—आते खाली कर देगा।

पहले देख लेना जरूरी है कि छेद कहां है। छेद को रोक दें, तो ही घड़ा सार्थक है। तुम्हारी मौलिक कमजोरी से मुक्ति हो जाए तो ही तुम कुछ भर पाओगे, परमात्मा तुम में भर पाएगा। अन्यथा तुम्हारे छिद्र सब बहा देंगे।

पहला, अपने प्रति सच्चा होना जरूरी है कि मैं कहां हूं। इसमें अति ईमान की जरूरत है; प्रामाणिक होने की जरूरत है। क्योंकि किसी और को धोखा नहीं दे रहे हैं। कोई और धोखे में आने वाला नहीं है। आप ही धोखे में पड़ेंगे और भटक जाएंगे।

और ध्यान रखें कि तमस में होना कुछ बुरा नहीं है। क्योंकि तमस से भी लोग मुक्त हुए हैं। कोई सात्विक होना ही श्रेष्ठ नहीं है। क्योंकि सत्य में भी पड़े हुए सैकड़ों लोग संसार में भटक रहे हैं।

कहां हैं, यह बड़ा महत्वपूर्ण नहीं है। लेकिन शास्त्रों ने और न जानने वाले शास्त्रों की टीका करने वाले लोगों ने लोगों को ऐसा समझा दिया है कि सात्विक होना अपने आप में कुछ खूबी की बात है और तामसिक होना बुरी बात है।

तो तामसिक तो हम गाली की तरह उपयोग करते हैं। किसी की निंदा करनी हो, तो हम कहते हैं, तामसी। तो जब मैंने कल आपको कहा कि लाओत्से तामसिक था, तो आपको भीतर बड़ी बेचैनी हुई होगी। क्योंकि आप मान ही नहीं सकते कि कोई संत तमस के साथ संत हो गया हो! कोई ऐसा कहेगा भी नहीं। लाओत्से के मानने वाले मुझसे नाराज हो जाएंगे। मैंने कहा कि जीसस रजोगुणी हैं। इससे ईसाई को कष्ट हो सकता है।

लेकिन मैं कोई तुलना नहीं कर रहा हूं। और न मैं यह कह रहा हूं कि इनमें कोई जीसस, लाओत्से या कृष्ण कोई छोटे—बड़े हैं। मैं सिर्फ यथार्थ तथ्य की बात कर रहा हूं। और अगर तथ्य की ही बात करनी हो, तो जो तमस से मुक्त हुआ है, वही अदभुत है। जो सत्य से मुक्त हुआ है, उसमें कोई बहुत विशेष अदभुतता नहीं है। गहन अंधकार से जो प्रकाश में सीधी छलांग लगा गया है, उसका मूल्य बहुत है।

तो आप भयभीत न हों, और न किसी तरह की निंदा लें। सिर्फ तथ्यों पर ध्यान रखें। हम मूल्यांकन करने लगते हैं, उससे कठिनाई शुरू हो जाती है।

अगर चित्त सात्विक है, तो साधना अलग होगी। अगर चित्त तामसिक है, तो साधना अलग होगी। अगर चित्त राजस है, तो साधना अलग होगी। इसे थोड़ा खयाल में ले लें। क्या फर्क पड़ेगा? अगर चित्त तामसिक है, तो तपश्चर्या आपके लिए

नहीं है। तपश्चर्या फिर भ्रांति होगी। सारी दुनिया प्रशंसा कर रही हो तप की, लेकिन तप आपके लिए नहीं है। और अगर आप तपश्चर्या में पड़े, तो आप भटक जाएंगे। आप सिर्फ कष्ट पाएंगे। आप सिर्फ परेशान होंगे, अपने को दुख देंगे। और आप बड़ी मुश्किल में पड़ेंगे कि मुझे वह घटना क्यों नहीं घट रही है, जो तपश्चर्या करने वालों को घट रही है! क्योंकि तपश्चर्या करने वाला कहता है, उसे महाआनंद मिला। और आपको नहीं मिल रहा है। आपको नहीं मिलेगा। क्योंकि आलस्य से भरा हुआ अगर व्यक्तित्व हो, तो तपश्चर्या इतनी विपरीत है कि उससे सिर्फ कष्ट मिलेगा।

सिर्फ राजस व्यक्ति को तपश्चर्या योग्य होगी। उसे तपश्चर्या ही योग्य होगी, क्योंकि तप उसे क्रिया का मौका देगा। सात्विक व्यक्ति को भी तपश्चर्या अर्थ की नहीं है। उसे भी कठिनाई होगी। न तो लाओत्से तपश्चर्या कर सकता है और न बुद्ध।

बुद्ध ने छः वर्ष तक तपश्चर्या की और दुख पाया। यह बड़ी अनूठी घटना है। और इसे समझाना आज तक नहीं हुआ कि यह कैसे हुआ! क्योंकि बुद्ध छः वर्ष तक कठोर तपश्चर्या किए और दुख पाए। और उन्हें कोई सत्य नहीं मिला। न कोई निर्वाण मिला; न कोई शांति मिली; न कोई आनंद मिला। और छः वर्ष के दुखद अनुभव के बाद बुद्ध ने सब तप छोड़ दिया। और जिस दिन उन्होंने सब तप छोड़ा, उसी दिन उन्हें परम ज्ञान की उपलब्धि हुई।

बुद्ध सात्विक व्यक्ति हैं, राजस नहीं हैं। तो क्रिया, तप, उपवास उनके लिए सिवाय कष्ट के और कुछ भी न लाए। शरीर दीन हुआ, क्षीण हुआ, आत्मा सबल न हुई। स्नान करते वक्त निरंजना नदी से निकलते थे, तो इतनी भी ताकत नहीं थी उस दिन कि बाहर निकल आएं।

तब उन्हें खयाल आया कि मैं यह तप कर—करके सिर्फ दुर्बल और दीन हो रहा हूं। और इस साधारण—सी नदी को पार नहीं कर पा रहा हूं बाहर निकलना मुश्किल मालूम पड़ रहा है। एक वृक्ष की जड़ को पकड़कर लटके हुए हैं। इतनी ताकत नहीं शरीर में कि किनारे के ऊपर आ जाएं। तो बुद्ध को उस क्षण में लगा कि यह भवसागर है इतना बड़ा, इसको मैं कैसे पार कर पाऊंगा, यह निरंजना जैसी छोटी नदी पार नहीं होती!

उसी दिन उनके लिए तप व्यर्थ हो गया। उस रात वे बिलकुल सब छोड्कर सोए। राज्य तो पहले छोड़ चुके थे, यह साधना भी छोड़ दी। उस रात उनके मन में कोई भी उपद्रव नहीं था। न राज्य था, न मोक्ष था, न धन की खोज थी, न धर्म की खोज थी। उस दिन कोई खोज ही न थी। वे बिना खोज के रात सो गए। सुबह जब उनकी आंख खुली, उन्होंने पाया, जो भी मिलना था, वह मौजूद है।

जो सत्व—प्रधान है, उसके लिए क्रिया बहुत लाभ की नहीं है। उसे कोई जरूरत नहीं है। वह सिर्फ मौन हो जाए; वह सिर्फ शांत हो जाए। वह सब भांति भीतर सब तरह के कोलाहल को हटा दे। उस शांत क्षण में उसे वह सब मिल जाएगा, जो कि राजस व्यक्ति अत्यंत कठोर तपश्चर्या करके पाता है।'

लेकिन अगर राजस व्यक्ति समझे कि मैं सिर्फ बैठ जाऊं, कुछ न करूं और सब हो जाएगा जैसा बुद्ध को हुआ, तो वह गलती में है। उसे तो गुजरना ही पड़ेगा।

व्यक्तित्व के ऊपर निर्भर है।

तमस से भरे हुए व्यक्ति को व्यर्थ के दौड़— धूप में नहीं पड़ना चाहिए। उसे पहले तो अपने तमस को स्वीकार कर लेना चाहिए कि यह मेरा भाग्य इस जन्म में। अनंत जन्मों में मैंने इसे कमाया। यह मेरा है। इसका मुझे उपयोग करना है; इससे लड़ना नहीं है। जो भी आपके पास है, ध्यान रखें, उसका उपयोग करना है, उससे लड़ना नहीं है। क्योंकि उससे लड़कर आप टूटेंगे और नष्ट होंगे। उसका उपयोग करें; उसका सेतु बनाएं, मार्ग बनाएं।

अगर आलस्य आपके पास है, तो आलस्य ही मार्ग बन सकता है। तब निक्रियता आपकी साधना होगी। तब आप आलस्य को ही साधना बना लें। तब आप सिर्फ आलस्य में पड़े ही मत रहें, आलस्य बाहर घेरे रहे, और भीतर आप आलस्य के प्रति जागे रहें। आलस्य को देखें और साक्षी हो जाएं।

पड़े—पड़े भी, बिस्तर पर पड़े—पड़े भी मोक्ष तक पहुंचा जा सकता है। लेकिन तब आलस्य को साधना बना लेना जरूरी है। और तब आलस्य के प्रति सजग हो जाना जरूरी है। भीतर साक्षी जग जाना चाहिए।

साक्षी के लिए न तो कर्म की जरूरत है, न अकर्म की; जो भी हो रहा है, उसके प्रति साक्षी होने की जरूरत है, विटनेसिंग की जरूरत है। तो आप अगर आलसी हैं, तो आलस्य के प्रति सजग हों, उसे देखें।

और ऐसा जरूरी नहीं है कि आप अगर तमस से आज भरे हैं, तो कल भी तमस से ही भरे रहेंगे। ऐसा कुछ जरूरी नहीं है। क्योंकि प्रतिपल चीजें बदल रही हैं। और प्रतिपल आपके भीतर के तमस, रजस और सत्व की मात्रा बदल रही है।

बचपन में जो व्यक्ति तामसिक हो, जरूर नहीं कि जवानी में भी तामसिक रह जाए। हो सकता है, राजसी हो जाए; क्योंकि सब हार्मोन बदल रहे हैं। शरीर एक सतत प्रवाह है। शरीर के सारे केमिकल्स बदल रहे हैं, रासायनिक व्यवस्था बदल रही है। जवान होते—होते दूसरी स्थिति हो सकती है। का होते—होते फिर तीसरी स्थिति हो जाएगी। यह प्रतिपल बदलाहट हो रही है।

आज आप आलसी हैं, तो जरूरी नहीं कि कल भी आलसी होंगे। और अगर आप आलस्य के प्रति सजग हो गए, तो निश्चित आप में बदलाहट आएगी। वह साक्षी एक नया तत्व है, जो आपके प्रत्येक रासायनिक ढंग को भीतर से बदल देगा। आप दूसरे आदमी होने लगेंगे। आप धीरे— धीरे पाएंगे कि आलस्य की उतनी जकड़ नहीं रही आपके ऊपर, जैसी पहले थी। आलस्य अब कोई बोझ नहीं रहा; एक हलका विश्राम हो गया।

और अब आप चाहें तो थोड़ा कर्म कर सकते हैं, यद्यपि यह कर्म भी राजसी वाला कर्म नहीं होगा। इसमें भाग—दौड़ नहीं होगी। यह भी शांत होगा। यह नदी बहेगी, लेकिन इसकी गति बहुत शांत होगी; शोरगुल नहीं होगा। यह कोई पहाड़ी नदी नहीं होगी। यह कोई पत्थरों पर आवाज करती हुई नहीं बहेगी। इसमें कर्म भी आएगा, तो धीमी लहर की भांति आएगा, जिससे कोई आवाज नहीं होती। और इसका कर्म भी अत्यंत शांत होगा।

लाओत्से को जिन्होंने चलते देखा है, वे देखेंगे कि उसका चलना भी ऐसा है, जैसे वह सोया हो, इतना विश्रांति से भरा हुआ। और राजसी व्यक्ति अगर सोए भी, तो उसकी निद्रा में भी वह सोया हुआ नहीं रहता। वह नींद में भी काफी चहलकदमी करता है।

आपने देखा नहीं है लोगों को। रात किसी को सोते हुए अध्ययन करें! सिर्फ बैठ जाएं उसके किनारे और रातभर देखें कि वह क्या कर रहा है। आप बड़े चकित होंगे। क्योंकि कोई किसी को देखता नहीं है।

अमेरिका में स्लीप लैब्स बनाए हैं उन्होंने। कोई दस बड़ी प्रयोगशालाएं हैं, जहां हजारों लोगों के ऊपर अध्ययन किया जा रहा है। रातभर अध्ययन किया जाता है कि सोया हुआ आदमी क्या—क्या कर रहा है। यह पहली घटना है मनुष्य जाति के इतिहास में, जब नींद का वैज्ञानिक अध्ययन हो रहा है। तो बड़े चमत्कारी परिणाम हुए।

एक तो यह बात पता चली है कि यह हमारा खयाल गलत है कि लोग पड़े रहते हैं। लोग पड़े नहीं रहते, लोग बड़ी क्रियाएं करते हैं। करवटें बदलते हैं; हाथ—पैर चलाते हैं; मुंह बनाते हैं; मुंह बिचकाते हैं; आवाजें करते हैं; आंखें चलाते हैं। सारा काम जारी रहता है। गरदन हिलाते हैं। कुछ लोग बोलते हैं। कुछ लोग अनर्गल बकते हैं। कुछ लोग उठकर चलते भी हैं कमरे में। उनको भी पता नहीं सुबह कि वे रात कमरे में चलते हैं। कुछ लोग घर का चक्कर लगा आते हैं; फ्रिज खोलकर खा भी आते हैं; और उनको पता भी नहीं होता कि रात में उन्होंने यह काम किया है। चोरी की है लोगों ने नींद में, और उनको पता नहीं। लोगों ने हत्याएं तक की हैं नींद में, और उनको पता नहीं।

न्यूयार्क में एक आदमी रोज रात अपनी छत से, साठ मंजिल मकान की छत से, दूसरे की छत पर कूद जाता था। वापस कूद आता था। पर यह नींद में ही होता था। नियमित कम था। कोई रात दो बजे! धीरे—धीरे यह बात मुहल्ले—पड़ोस में पता चल गई। लोग देखने भी खड़े होने लगे। कोई आदमी होश में नहीं कूद सकता। दोनों मकानों के बीच काफी फासला है और खतरा बड़ा है। क्योंकि साठ मंजिल का गड्ढ़ है बीच में।

लेकिन एक रात काफी लोग इकट्ठे हो गए। और जब वह आदमी कूदा, तो उन्होंने सिर्फ जोश में आवाज लगा दी। उस आदमी की नींद टूट गई। नींद टूटते ही वह बीच के खड्ड में गिर गया। वह खुद भी पगला गया। जैसे ही नींद टूट गई उसकी, उसकी समझ के बाहर हो गया कि यह क्या हो रहा है! वह आदमी मर गया।

उस आदमी की यह घटना अकेली नहीं है। ऐसे सैकड़ों लोग हैं। मनोविज्ञान उनको एक खास तरह की बीमारी से पीड़ित पाता है, सोम्नाबुलिज्य, निद्रा में क्रिया करने की बीमारी। हत्याएं कर दी हैं लोगों ने; गरदनें दबा दी हैं; और जाकर अपने बिस्तर पर सो गए हैं। सुबह उन्हें कुछ याद नहीं। जैसे आप सपना भूल जाते हैं सुबह, ऐसा वे उस घटना को भी भूल गए हैं। वह बिलकुल नींद में हुआ है। ये नींद में जो लोग चलते हैं, ये आंख खुली रखते हैं, इसलिए टकराते नहीं हैं। बराबर निकल जाते हैं। सामान रखा हो, तो बचकर निकल जाते हैं। आंख उनकी खुली रहती है। लेकिन एक फर्क होता है। आंख उनकी झपती नहीं जब वे नींद में चल रहे होते हैं। आंख बस खुली रहती है। जैसे मरे हुए आदमी की आंख खुली हो, झपे नहीं। उनकी आंख झपती नहीं है। अंधेरे में काम करके वे अपना वापस अपनी जगह आकर सो जाते हैं।

नींद में भी आप भिन्न—भिन्न हैं। एक महावीर हैं, जिनके बाबत कहा जाता है कि वे रात करवट नहीं बदलते। दूसरी तरफ ऐसे लोग हैं, जो साठ मंजिल के मकान से छलांग भी लगाते हैं।

रात्रि भी एक बड़ी क्रिया है। और रात्रि कोई छोटी घटना नहीं है। आप साठ साल जीएंगे, तो बीस साल सोते हैं। एक तिहाई जिंदगी नींद में जाती है। रोज नियमित आठ घंटा आप नींद में उतरते हैं, एक दूसरे लोक में प्रवेश करते हैं। वहां भी क्रिया जारी है।

रात सोते हुए आदमियों का अध्ययन करके भी कहा जा सकता है कि कौन सात्विक है, कौन राजसिक है, कौन तामसिक है। तामसिक की निद्रा ऐसी होगी, जैसे वह बेहोश पड़ा है।

इस फर्क को ठीक से समझ लें। उसकी निद्रा मूर्च्छा जैसी होगी। जैसे उसे बेहोशी है, कोमा है। तो रात नींद में भी पता चलेगा कि उसके चेहरे पर एक बेहोशी छाई हुई है; सूखापन है; उदास है; सब चीजें सिकुड़ गई हैं, जैसे प्राण कहीं भीतर खो गए हैं और शरीर निर्जीव हो गया है।

ऐसा व्यक्ति सुबह जब उठेगा, तो ताजा नहीं होगा; उसमें जिंदगी की लहर नहीं होगी। ऐसा व्यक्ति एकदम से नहीं उठ सकता। सुबह उठेगा; फिर करवट बदलेगा; फिर सो जाएगा। फिर करवट बदलेगा; फिर सो जाएगा। उसे उठने में कम से कम घटाभर लगेगा। नींद में और जागने के बीच वह घंटेभर की यात्रा करेगा। बार—बार जागेगा और बार—बार सो जाएगा। यह मूर्च्छा है। यह नींद नहीं है। क्योंकि नींद तो टूट चुकी है, लेकिन मूर्च्छा टूटने में समय लग रहा है।

जो आदमी राजसी है, वह रातभर श्रम करेगा; हाथ—पैर चलाएगा, मुंह चलाएगा, बोलेगा, आवाज करेगा। यह आदमी रातभर गति में रहेगा। इसकी नींद विक्षिप्त है। मूर्च्छित नहीं है, लेकिन विक्षिप्त है। और सुबह जब यह उठेगा, तो यह उठ आएगा एकदम से, क्योंकि यह राजसी है। वस्तुत: राजसी आदमी बिस्तर से उठता नहीं, कूदता है, उठता नहीं। नींद टूटी कि छलांग लगाकर वह बाहर हो जाएगा, जैसे एक झंझट से छूटे। फिर मौका मिला भाग—दौड़ का। तो वह बाहर निकल जाएगा। लेकिन यह आदमी थका हुआ पाएगा सुबह।

तामसी व्यक्ति मूर्च्छित पाएगा सुबह। ताजा नहीं हुआ। जिंदगी बोझिल लगेगी। राजसी व्यक्ति सुबह थका हुआ पाएगा, जैसे बड़े काम करके आ रहा है।

यह ध्यान रखें कि राजसी व्यक्ति दिनभर के काम के बाद दस ग्यारह बजे रात सबसे ज्यादा ताजा अपने को अनुभव करेगा। सोने के पहले वह सबसे ज्यादा ताजा होगा, क्योंकि दिनभर के काम के बाद उसको बड़ी राहत मिली।

ये जो क्लब चल रहे हैं, नाच—घर चल रहे हैं, वे राजसी लोग चला रहे हैं। वे सब से ज्यादा ताजे होते हैं, उनकी जिंदगी का जो पीक प्याइंट है, वह रात ग्यारह—बारह बजे आता है। तब वे सबसे ज्यादा जिंदा होते हैं। दिनभर के उपद्रव के बाद उन्हें लगता है कि वे प्रसन्न हैं।

लेकिन राजसी व्यक्ति सुबह हमेशा थका हुआ होगा; रात ताजा होगा। तामसी व्यक्ति सदा थका होगा। वे कभी ताजे नहीं हैं। वे सदा सोए—सोए हैं। मजबूरी है कि उन्हें उठना पड़ता है।

सात्विक व्यक्ति जब रात सोएगा, तो उसकी नींद में एक हलकापन और एक प्रकाश होगा। उसकी नींद न तो मूर्च्छित होगी

कि वह बेहोश पड़ा है; और न विक्षिप्त होगी कि वह व्यर्थ के क्रिया—कलाप कर रहा है। उसकी नींद एक गहरा विश्राम होगी, जैसे कोई ध्यान में लेटा हो। जैसे जागा भी हो और सोया भी हो। जरा—सी खटके की आवाज होगी, तो वह जाग सकता है। लेकिन उसकी नींद उथली नहीं है। खटके की आवाज में वह जो आलसी है, वह जाग नहीं सकता। खटका क्या, किसी आवाज में नहीं जाग सकता।

मुल्ला नसरुद्दीन से एक दिन सुबह उसकी पत्नी बोली कि रात बड़ी कठिनाई हो गई। भूकंप आया, बड़ी बिजलियां गरजी, सारे गांव में उथल—पुथल मच गई; सैकड़ों मकान गिर गए। नसरुद्दीन ने कहा, पागल, मुझे क्यों न उठाया! मैं भी देखता।

वह जो तामसी है, वह सदा बासा है। जिसको हम फ्रेशनेस कहें, प्रफुल्लता कहें, ताजगी कहें, नयापन कहें, वह उसमें नहीं है। वह सदा बासा है। उसके मुंह का स्वाद सदा बासा है। वह कभी खिला हुआ नहीं है, सदा मुरझाया हुआ है। राजसी व्यक्ति सुबह—सुबह मुरझाया हुआ लगेगा, क्योंकि रातभर व्यर्थ काम में संलग्न रहा है। सांझ होते—होते ताजा होने लगेगा।

सभ्यताओं में भी इसके अंतर होते हैं। योरोप, पश्चिम की सभ्यता राजसी है। इसलिए पश्चिमी सभ्यता का जो पूरा उभार है, वह सांझ के बाद है। पेरिस है, या लंदन है, या न्यूयार्क है; वहां जो असली जिंदगी है, वह दिन में नहीं है, वह रात में है। जब लोग नाच—घरों में चले गए हैं, शराब पी रहे हैं, जुआ खेल रहे हैं, तब असली जिंदगी है। अगर पेरिस देखना है, तो रात देखना। दिन में पेरिस का कोई अर्थ नहीं है। क्योंकि पेरिस जगता ही रात में है।

पश्चिम की सारी सभ्यता रात्रि में सजग होती है। पूरब ने एक व्यवस्था की थी, वह पूरी व्यवस्था ब्रह्ममुहूर्त में जागने वाली थी। सांझ जल्दी सो जाने वाली, और सुबह जब सूरज उगे, उसके पहले उठ आने वाली थी। वह सात्विक व्यवस्था की चेष्टा थी।

वह जो सात्विक व्यक्ति है, रात बिलकुल शांति से सोता है। न तो विक्षिप्त होता है, न मूर्च्छित होता है। सूरज के उगने के पहले या करीब—करीब सूरज के उगते वह उठ आता है। सूरज का उगना, उसके भीतर की चेतना का भी जग जाना है।

होना भी यही चाहिए। क्योंकि सूरज के साथ सारे पक्षी जागते हैं। सूरज के साथ सारे पौधे जागते हैं। सूरज के साथ पृथ्वी जागती है। और अगर आप इस पृथ्वी के वास्तविक प्राकृतिक हिस्से हैं, तो सूरज के साथ ही जागना उचित है। सूरज के आते ही आपके भीतर भी जीवन सजग हो जाना चाहिए और उतनी ही ताजगी से भर जाना चाहिए जितनी ताजगी सुबह की है। यह तो नैसर्गिक कम है। सात्विक व्यक्ति सुबह सूरज के साथ उठ आएगा। न तो वह आलसी की तरह पड़ा रहेगा और घंटों लगाएगा उठने में, न वह राजसी की तरह छलांग लगाकर बाहर निकलेगा। वह उठेगा आहिस्ता से, शांति से, आश्वस्त; उसमें कोई भाग—दौड़ नहीं है। पड़े रहने का भी कोई मोह नहीं है। दौड़कर संसार में उतर जाने की भी कोई वृत्ति नहीं है। वह नींद से बाहर आएगा, सरलता से। नींद और जागरण के बीच कोई फासला नहीं है उसे बड़ा, जिसको छलांग लगानी है या जिसको समय देकर पूरा करना है। उसकी नींद एक शांत, प्रशांत, गहरी धारा है।

सात्विक व्यक्ति सुबह सबसे ज्यादा ताजा होगा। रात होते—होते थक जाएगा। जब राजसी क्लब जाने की तैयारी कर रहा होगा, तब उसकी आंखें झप रही होंगी, तब वह बैठ भी नहीं सकता, तब वह सो जाने के लिए तैयार है। पर यही नैसर्गिक भी है। दिनभर के काम के बाद थक जाना नैसर्गिक है।

पर भेद हैं। और आपको अपना गुण देखकर चलना चाहिए कि नैसर्गिक क्या है।

यह जो नींद के संबंध में निरंतर गहरी खोज हुई हैं, उससे कई बातें.....। जैसा मैंने कल आपको कहा कि स्त्री ज्यादा तमस से भरी है, पुरुष ज्यादा राजस से। लेकिन चूंकि भारत जैसे मुल्कों में पुरुषों ने सभ्यता बनाई और मनु जैसे महावेत्ताओं ने बड़ी कोशिश की कि एक सात्विक सभ्यता का जन्म हो जाए।

सारी ब्राह्मण संस्कृति एक बड़ी चेष्टा है, एक महान प्रयोग, कि सारी संस्कृति सात्विक हो जाए। कठिन है। क्योंकि इसमें जो सात्विक नहीं हैं, वे अड़चन में पड़ेंगे। और उनकी संख्या काफी बड़ी है। इसलिए यह प्रयोग सफल नहीं हो सका। यह प्रयोग असफल हुआ। महान प्रयोग था। और महान प्रयोग के असफल होने की संभावना सदा ज्यादा है।

इसलिए हिंदुओं ने बड़ी चेष्टा की पाच हजार साल तक एक बड़े गहरे प्रयोग को व्यवस्था देने के लिए। लेकिन वह असफल हुआ। क्योंकि राजसी और तामसी लोगों का बहु—संप्रदाय है। सात्विक लोग बहुत थोड़े—से हैं। वे थोड़े—से लोग कितने ही सुख में जी रहे हों और वे सबको बताएं कि तुम भी इतने ही सुख में पहुंच सकते हो, मगर उनकी बात उन लोगों के किसी काम की नहीं है, जिनके गुण विपरीत हैं।

चूंकि पुरुषों ने इस सात्विकता का प्रयोग किया, स्त्रियों को भी उन्होंने सुबह जल्दी उठाने की चेष्टा की। सच तो यह है कि भारत में रिवाज यह था कि पुरुष के पहले स्त्री उठ आए। घर का काम कर ले। सब साफ—सुथरा कर दे। वह गृहिणी है। इसके पहले कि पुरुष उठे, वह घर को ताजा स्वच्छ पाए।

लेकिन पश्चिम की खोजें यह बता रही हैं कि किसी भी स्त्री को सूरज उगने के पहले भूलकर नहीं उठना चाहिए। पति को पहले उठना चाहिए; वह राजसिक है। उसमें ज्यादा क्रिया का जोर है। चाय वगैरह का काम पति को कर लेना चाहिए फिर पत्नी को उठना चाहिए। वैसे पति अपने आप धीरे— धीरे उस रास्ते पर जा रहे हैं बिना किसी खोज के।

और स्त्रियां अगर जल्दी सुबह उठ आएं, तो दिनभर आलस्य अनुभव करेंगी। पश्चिम की खोज किन्हीं दूसरे कारणों से है, लेकिन सार्थक है।

वैज्ञानिक कहते हैं कि चौबीस घंटे में दो घंटे शरीर का तापमान नीचे गिर जाता है। वे ही दो घंटे गहरी नींद के घंटे हैं। चौबीस घंटे में दो घंटे प्रत्येक व्यक्ति के शरीर का तापमान नीचे गिरता है। वे ही दो घंटे गहरी नींद के घंटे हैं। और हर व्यक्ति का अलग— अलग समय गिरता है। पुरुषों का आमतौर से तीन बजे रात और पांच बजे सुबह के बीच गिरता है, आमतौर से। इसलिए तीन और पांच के बीच पुरुष को गहरी से गहरी नींद का क्षण है। स्त्रियों का आमतौर से छ: और आठ के बीच गिरता है। इसलिए छ: और आठ के बीच उनके लिए गहरी से गहरी नींद का क्षण है।

जब आपका तापमान गिरता है, अगर उस समय आप उठ आएं, तो आप दिनभर परेशान होंगे। और इसे तो आप थर्मामीटर लगाकर जांच भी ले सकते हैं। चौबीस घंटे की रिपोर्ट आप ले सकते हैं अपनी और आप पा सकते हैं कि किन दो घंटों में आपका तापमान गिरता है। वे दो घंटे तो आपको सोना ही है। उन दो घंटों में आप उठेंगे, तो आप दिनभर बेचैन होंगे। ऐसा लगेगा, कुछ चूक गया, कुछ कठिनाई है; कुछ अड़चन है। एक भीतरी कठिनाई का बोध दिनभर बना रहेगा।

लेकिन हमारे हिसाब से भी, रजस और तमस के विश्लेषण के हिसाब से भी स्त्री ज्यादा तामसी है। तामसी का मतलब है कि ज्यादा आलस्य, कम श्रम और ज्यादा विश्राम, वह उसका स्वभाव है। इसमें कुछ बुराई नहीं है। ऐसा है, यह तथ्य है। पुरुष का स्वभाव है, ज्यादा काम और कम विश्राम।

सात्विक व्यक्ति की साधना मूल रूप से ध्यान की साधना होगी।

और ध्यान भी मंत्र—योग, क्रिया—योग इत्यादि नहीं। ध्यान भी झेन जैसा, शून्यता का भाव। सात्विक व्यक्ति हलका है और शून्य हो सकता है सरलता से।

बुद्ध की सारी चेष्टा कि तुम शून्य होओ, सिर्फ सात्विक लोगों पर सार्थक हो सकती है, सभी पर नहीं। तो बुद्ध ने जोर दिया है कि तुम्हारे भीतर कोई आत्मा भी नहीं है। क्योंकि आत्मा का खयाल भी तुम्हें भरे हुए रखेगा। कोई भी नहीं है। भीतर तुम एक विराट शून्य हो, खाली आकाश।

इसी धारणा को गहरा करता जाए अगर कोई व्यक्ति और सात्विक वृत्ति का हो, तो वह परम सिद्धि को उपलब्ध हो जाएगा। राजसी व्यक्ति को तपश्चर्या और क्रियाओं से गुजरना होगा। और क्रियाओं और तपश्चर्या के साथ साक्षी— भाव को जगाना होगा। आलसी व्यक्ति क्रियाओं और तपश्चर्या में नहीं जा सकता। उसको अपनी अकर्मण्यता को ही अपनी क्रिया माननी होगी और अपनी अकर्मण्यता के प्रति साक्षी— भाव को जगाना होगा।

साक्षी— भाव तीनों के साथ काम करेगा। लेकिन सात्विक शून्य के साथ साक्षी को जोड़ेगा। राजसिक कर्म के साथ साक्षी को जोड़ेगा। तामसिक आलस्य के साथ साक्षी को जोड़ेगा। और साक्षी सूत्र है, जिससे भी आप जोड़ दें, वही पुल बन जाएगा, वही सेतु बन जाएगा।

अब सूत्र।
सात्विक कर्म का तो सात्विक अर्थात सुख, ज्ञान और वैराग्य आदि निर्मल फल कहा है। और राजस कर्म का फल दुख, संताप, पीड़ा; एवं तामस कर्म का फल अज्ञान कहा है। सत्वगुण से ज्ञान उत्पन्न होता है, रजोगुण से निस्संदेह लोभ उत्पन्न होता है, तमोगुण से प्रमाद और मोह उत्पन्न होते हैं और अज्ञान भी होता है।

सत्वगुण में स्थित हुए पुरुष स्वर्गादि उच्च लोकों को जाते हैं और रजोगुण में स्थित राजस पुरुष मध्य अर्थात मनुष्य लोकों में होते हैं एवं तमोगुण के कार्यरूप निद्रा, प्रमाद और आलस्य आदि में स्थित हुए तामस पुरुष अधोगति को अर्थात नीच योनियों को प्राप्त होते हैं। सात्विक कर्म का फल सुख, ज्ञान और वैराग्य है।

एक—एक शब्द को ठीक से समझें। सात्विक कर्म का अर्थ है, जो कर्म आपके करने के पागलपन से पैदा न हुआ हो; पहली बात। आप लोगों से बात करते हैं। अक्सर बात आप इसलिए करते हैं कि अगर आप बात न करें, तो आपको भीतर बेचैनी मालूम होगी। आप लोगों से बात नहीं कर रहे हैं, एक कचरा आपके सिर पर पड़ा है, उसे आप निकाल रहे हैं। आपको प्रयोजन नहीं है कि दूसरे व्यक्ति को इससे कुछ लाभ होगा। दूसरे से आपको कोई मतलब ही नहीं है। अ ब स कोई भी हो; सिर्फ बहाना है दूसरा। और आपके सिर में जो घूम रहा है बवंडर, उसे आप निकाल रहे हैं।

इसलिए लोग एक—दूसरे की बातचीत से ऊबते हैं। ऊब इसीलिए पैदा होती है कि वे आए थे अपना कचरा निकालने, आप उनको मौका ही नहीं दे रहे हैं। और आप ही कचरा डाले जा रहे हैं। जिस आदमी से आप ऊबते हों, उसका मतलब सिर्फ इतना ही है कि वह आपको मौका नहीं दे रहा है। और जो उबाने वाले, पक्के बोर होते हैं, वे आपको मौका देंगे ही नहीं। वे संध भी नहीं छोड़ते बीच में। दो बातों के बीच संध भी नहीं छोड़ते कि आप कुछ भी बीच में उठा दें और सिलसिला अपने हाथ में ले लें। वे कहे ही चले जाते हैं!

यह जो बोलना है, यह कोई संबंध नहीं है। और यह बोलने का जो कृत्य है, यह सात्विक नहीं रहा, राजसिक हो गया। आपको एक कर्म करने का पागलपन है भीतर; आप बिना किए नहीं रह सकते हैं। इसलिए मजबूरी है, कर रहे हैं। कुछ लोग सेवा में लगे हैं।

मेरे पास एक मित्र आए। और उन्होंने कहा कि बीस साल से सेवा कर रहा हूं। हरिजनों की सेवा की, आदिवासियों की सेवा कर रहा हूं। स्कूल खोले, अस्पताल खोले। लेकिन शांति नहीं मिलती।

तो मैंने उनसे कहा, इतना कम से कम अच्छा है कि तुम काम में लगे हो बीस साल से। शांति नहीं मिल रही, लेकिन अगर तुम यह उपद्रव इतना न करते—हरिजन की सेवा, आदिवासी की सेवा और यह सब अस्पताल और स्कूल—तो तुम इतनी अशांति इकट्ठी कर लेते कि तुम पागल हो जाते। और तुम यह मत सोचना कि तुम हरिजन के कारण सेवा कर रहे हो। तुम्हें सेवा करनी ही पड़ती। हरिजन न हों, तो किसी और की करनी पड़ती। वह तो हरिजन हैं, सौभाग्य! आदिवासी हैं, कृपा प्रभु की। अगर न हों, तो तुम किसी न किसी की सेवा करते ही। सेवा तुम्हें करनी ही पड़ती। यह तुम्हारी भीतरी मजबूरी है। यह हरिजन तो खूंटी है, जिस पर तुमने टागा है अपने को।

इसलिए आप यह मत सोचें कि दुनिया अच्छी हो जाएगी, तो सेवा करने वालों को कोई अवसर न रहेगा। वे अवसर खोज ही लेते हैं। वे खोज ही लेंगे। वे कोई न कोई उपाय खोज लेंगे, क्योंकि उन्हें कुछ करना है।

अगर करने की बीमारी से आपका कर्म निकल रहा है, तो वह सात्विक नहीं है। सात्विक वह कर्म है, जो करुणा से निकल रहा है, जो दूसरे को ध्यान में रखकर निकल रहा है; जिसमें आपका कोई भीतरी पागलपन नहीं है। और अगर कुछ करने को न हो, तो आप बेचैन न होंगे। आप शांत बैठे होंगे; आनंदित होंगे। अगर आपको करने को कुछ भी न बचे, तो आप उतने ही आनंदित होंगे, जितना आप करते हुए आनंदित हैं।

लेकिन सेवा करने वालों का कर्म छीन लो, वे मुश्किल में पड़ जाते हैं। वे पूछते हैं, अब क्या करें! खाली बैठना उन्हें कठिन है।

खाली सिर्फ वही बैठ सकता है, जो अपने साथ आनंदित है। जो स्वयं में आनंदित है, वही बैठ सकता है खाली । जो स्वयं में आनंदित नहीं है, वह कहीं न कहीं लगाए रखेगा अपने को, किसी कर्म में उलझाए रखेगा। वह उलझाव अपने से बचने की तरकीब है। वह एक एस्केप है, पलायन है, जिसमें अपने को भूला रहता है और कहीं लगा रहता है।

सात्विक कर्म का अर्थ है, जो कर्म तुम्हारे हलकेपन से, तुम्हारी शांति से, तुम्हारे निर्भार होने से निकलता हो। तुम्हें करने की कोई मजबूरी नहीं है। लेकिन कोई परिस्थिति थी, जहां कुछ करने से किसी को लाभ होता, मंगल होता किसी का, किसी का शुभ होता, तो कर्म जब निकले, वह सात्विक है।

सात्विक कर्म सुख पैदा करेगा। सात्विक कर्म ही सुख पैदा करेगा। सुख का मतलब ही यह है कि जो तुम्हारे आनंद से निकले कर्म, वही तुम्हें सुख देगा। इसे थोड़ा ठीक से समझ लें।

जो किसी और कारण से तुम्हारे भीतर से निकलेगा कर्म, वह तुम्हें सुख नहीं देगा। क्योंकि वस्तुतः सुख किसी चीज में नहीं है, हम डालते हैं। और अगर हममें न हो, तो हम नहीं डाल सकते। मैं आपसे यहां बोल रहा हूं। अगर यह मेरे आनंद से निकल रहा है, तो यह बोलना आनंदपूर्ण हो जाएगा, क्योंकि मेरे आनंद में डूबा हुआ निकल रहा है। लेकिन अगर किसी और कारण से निकल रहा हो, तो इससे मुझे सुख नहीं मिल सकता।

आप जो भी करते हैं, करने से आप कुछ नहीं पाते। आप करने में क्या डालते हैं भीतर से, उसी को पाते हैं। हम जो डालते हैं, वही हमें मिलता है।

अगर कोई आदमी सेवा करके भी दुखी है, तो इसका मतलब है, कर्म सात्विक नहीं है। अगर आप कुछ भी करके दुखी हो रहे हैं, तो इसका अर्थ है कि आप जो कर रहे हैं, वह सात्विक नहीं है। वह राजसिक होगा।

राजसिक कर्म से दुख निकलता है, क्योंकि राजसिक कर्म भीतरी दुख से पैदा होता है। मैं एक भी राजनीतिज्ञ को सुखी नहीं पाता हूं। बड़े कर्म में वे लीन हैं। विराट कर्म उन्हीं से चल रहा है! सारे अखबार उन्हीं से भरे होते हैं।

सात्विक आदमी के कामों की तो कोई खबर अखबार में होती नहीं। क्योंकि वे इतने चुपचाप होते हैं कि उनका शोरगुल पैदा नहीं होता। कभी—कभी सात्विक आदमी की भी खबर आती है अगर कोई राजसिक आदमी उनके काम में जुड़ जाए; कि विनोबा से मिलने अगर कभी कोई गवर्नर चला जाए, तो खबर छपती है, कि पंडित नेहरू

विनोबा के पास चले जाएं, तो खबर छपती है। छपती है नेहरू की वजह से। लेकिन मजबूरी है। क्योंकि विनोबा के पास गए, इसलिए वह नाम भी छापना पड़ता है।

सात्विक व्यक्ति तो खबर की दुनिया के बाहर चुपचाप काम में लगा होता है। राजनैतिक बड़े काम करता है, विराट कर्म का जाल उसी का है; सारा खेल उसका है। यह सारा प्रपंच परमात्मा का जो चलाता है, उसमें नब्बे परसेंट राजनैतिक चलाता है। लेकिन सुखी बिलकुल नहीं है। इतना करके भी सुख की कोई छाया भी नहीं मिलती।

ढेर राजनीतिज्ञ मेरे पास आते हैं। जब वे पदों पर नहीं रह जाते, तब तो जरूर आते हैं। लेकिन वे कहते हैं, कोई सुख नहीं है, कोई शांति नहीं है। कोई मार्ग बताएं। इतने कर्म के बाद अगर कोई सुख न मिल रहा हो, तो कर्म का फल क्या है!

एक आदमी कहे कि मैं मीलों दौड़ता हूं लेकिन मंजिल दिखाई भी नहीं पड़ती है, पास आने की तो बात अलग है! तो उससे हम कहेंगे, फिर तू दौड़ता क्यों है! क्योंकि दौड़ना अगर मंजिल तक न ले जाए तो क्यों अपनी शक्ति व्यय कर रहा है! इससे तो बैठ रह। और अगर दौड़ने से मंजिल पास नहीं आती, तो यह भी डर है कि कहीं तू उलटी दिशा में तो नहीं दौड़ रहा है। नहीं तो दूर निकल जाए। और दौड़ने से मंजिल दूर हो जाए, इससे तो बैठा हुआ आदमी भी कम से कम एक लाभ में है। पास न जाए, दूर तो निकल ही नहीं सकता। बैठा हुआ आदमी कम से कम भटक तो नहीं सकता। उतनी सुरक्षा है।

लेकिन यह दौड़ने वाला राजनैतिक है। इसके कर्म बड़े हैं, परिणाम न के बराबर है।

सिकंदर दुखी मरता है, विराट कर्म के बाद। नेपोलियन दुखी मरता है, विराट कर्म के बाद। हिटलर आत्मघात करता है; लेनिन

मरते वक्त अति दुखी है। और मरते वक्त लेनिन अपनी वसीयत में लिखता है कि स्टैलिन के हाथ में सत्ता न रहे। और दुखी इसीलिए है। जब तक वह बीमार था, तब तक स्टैलिन ने सत्ता हथिया ली। वह और भी बड़ा राजसिक व्यक्ति है। लेनिन ने क्रांति की, लेकिन सत्ता स्टैलिन के हाथ चली गई।

क्रांतिकारी अक्सर सत्ता नहीं भोग पाते, क्योंकि उनकी शक्ति और उनकी ऊर्जा सत्ता हथियाने में नष्ट हो जाती है। जब तक वे सत्ता पाते हैं, तब तक भीतर से कमजोर हो जाते हैं। जब सत्ता उनके हाथ में आती है, तब कोई शक्तिशाली व्यक्ति, जिसकी शक्ति अभी बची है, वह कब्जा कर लेता है।

हर क्रांति में यह होता है कि जो लोग क्रांति करते हैं, वे फेंक दिए जाते हैं। और जो क्रांति नहीं करते, वे मालिक हो जाते हैं। अक्सर होगा ऐसा। बाप कमाएगा और बेटा उसको खर्च करेगा। क्योंकि बाप कमाने में खर्च हो जाते हैं।

लेनिन दुख से मरा और वसीयत करके गया। लेकिन वसीयत को कौन सुनने वाला है! ताकत स्टैलिन के हाथ में थी। वसीयत दबा दी गई।

लेकिन स्टैलिन दुखी मरता है, दुखी जीता है। दुख वहां तक पहुंच जाता है कि बाद—बाद के दिनों में कहा जाता है कि उसने अपना एक डबल रख छोड़ा था, ठीक स्टैलिन की शक्ल का आदमी। हिटलर ने भी अपना एक डबल रख छोड़ा था। स्टैलिन खुद बाहर नहीं जाता था, क्योंकि लोगों को इतना कष्ट दिया है कि वह सुरक्षित नहीं था।

अब यह बड़े मजे की बात है, बड़ी विडंबना है, कि स्टैलिन ने सारी जिंदगी यही तो कोशिश की कि यशस्वी हो जाऊं, बड़ा शक्तिशाली हो जाऊं। और जब शक्ति हाथ में आई, तब कमरे में छिपकर उसको रहना पड़ता था। उसकी जगह सलामी वगैरह लेने उसका डबल जाता था। क्योंकि अगर गोली मार दी जाए, तो दूसरा आदमी मरेगा, स्टैलिन सुरक्षित रहेगा।

कहा जाता है कि मर जाने के बाद भी दो—तीन महीने तक रूस में खबर नहीं दी गई कि स्टैलिन मर गया है। वह डबल काम करता रहा। वह जो दूसरा नकली आदमी बनाकर रख छोड़ा था, वही जाएगा; सभाओं में सलामी लेने, व्याख्यान देने, वह जाएगा। यह बड़ी अजीब ढंग की उपलब्धि हुई कि जहां स्वागत भी अपना न हो सके, जहां स्वागत के लिए दूसरे को भेजना पड़े!

और स्टैलिन एक प्रेत की तरह हो गया, जो पीछे छिपा हुआ है। और किसी पर उसका भरोसा नहीं है। किसी पर भरोसा नहीं हो सकता। क्योंकि वह खुद धोखा देकर, खुद लेनिन को धोखा देकर कब्जे में आया है। इसलिए जितने लोगों ने उसको सहायता दी, सबको उसने मरवा डाला। क्योंकि जो आदमी भी उसको सहायता देगा, ताकतवर सिद्ध होगा, वह उसको खतम कर देगा।

इसलिए पिछले चालीस साल में, जिनमें स्टैलिन ताकत में था, उसमें उसने हर आदमी को, जिसने उसको साथ दिया और जो सीढ़ी बना और जिसने उसको ऊपर भेजा, उसने जल्दी उसकी गर्दन अलग की। क्योंकि यह आदमी अगर अपने लिए सीढ़ी बन सकता है, तो कल किसी दूसरे को भी चढ़ाने में सीढ़ी बनेगा।

स्टैलिन जैसे लोगों का कोई मित्र नहीं हो सकता। क्योंकि मित्र इतने पास आ जाएगा कि खतरनाक है। स्टैलिन से दूर ही लोग रह सकते हैं, पास नहीं हो सकते। और परम दुख में मर रहा है।

स्टैलिन की लड़की ने बाद में संस्मरण लिखे हैं। उसने संस्मरण में लिखा है कि मेरे पिता जितने दुखी थे, ऐसा दुखी आदमी मैंने कहीं देखा नहीं। दुखी होगा ही।

सात्विक कर्म भीतर के सुख से निकलते हैं। और हर कर्म आपके सुख को हजार गुना कर देगा। क्योंकि हर कर्म आपके सुख की प्रतिध्वनि को आप तक लौटाता है।

आप जो देते हैं अपने कर्म में, वह हजार गुना होकर आप पर बरसने लगता है। यह सारा जगत एक प्रतिध्वनि है। आप एक गीत गाते हैं, तो सब तरफ से गीत गूंजकर आप पर गिरता है। आप एक गाली देते हैं, तो गाली लौट आती है हजार गुनी होकर। जो कांटे बोता है, कांटे काटता है। जो फूल बोता है, वह फूल काट लेता है। सात्विक कर्म सुख लाएगा, एक। ज्ञान लाएगा, दो। यह बड़ी अनूठी बात है।

सात्विक कर्म ज्ञान क्यों लाएगा? ज्ञान मिलना चाहिए शास्त्र से, गुरु से। लेकिन कृष्ण कहते हैं, सात्विक कर्म ज्ञान लाएगा। यह किस ज्ञान की बात कर रहे हैं?

जब आप कोई सात्विक कर्म करते हैं, तब आप एकदम शांत हो जाते हैं। कभी भी अच्छा काम करके देखें, और उस रात आप गहरी नींद सोएंगे। कोई बुरा काम करके देखें, उस रात आप सो भी नहीं पाएंगे। कोई बुरा काम करें, वह भीतर खटकता ही रहेगा, कांटे की तरह चुभता ही रहेगा। कोई भला काम करें, और एक हलकापन फैल जाता है; एक सुबह हो जाती है भीतर। छोटा—सा!

एक बीमार आदमी जा रहा हो और उसको आप हाथ का सहारा देकर रास्ता पार करवा दें। रास्ता पार कराते—कराते ही आपके भीतर कुछ होने लगेगा। सब हलका हो जाएगा, शांत हो जाएगा।

रास्ते पर एक नोट पड़ा हो। उठाने का खयाल आ जाए उससे ही बेचैनी शुरू हो जाएगी। फिर उठाकर उसे जेब में रख लें। फिर वह पहाड़ की तरह भारी मालूम पड़ेगा। फिर आप और कुछ भी करते रहें, लेकिन भीतर एक बेचैनी है।

अमेरिका की अदालतों में एक यंत्र का उपयोग करते हैं, लाई डिटेक्टर, झूठ को पकड़ने का यंत्र। वह पकड़ लेता है झूठ। वह झूठ इसलिए पकड़ लेता है कि झूठ बोलते ही हृदय को झटका लगता है। उस झटके को पकड़ लेता है।

उस यंत्र के ऊपर अदालत में आदमी को खड़ा कर देते हैं। उससे कुछ पूछते हैं। उससे पूछते हैं, इस समय घड़ी में कितने बजे हैं? घड़ी सामने है। झूठ बोलने का कोई कारण नहीं है। वह कहता है, नौ बजे हैं। उससे पूछते हैं, दीवाल पर कौन—सा रंग है? झूठ बोलने का कोई कारण नहीं है। वह कहता है, हरा रंग है। ऐसे चार—छः सवाल पूछते हैं। नीचे यंत्र उसके हृदय की धड़कन को नोट कर रहा है। हृदय की धड़कन का ग्राफ बन रहा है नीचे।

फिर उससे पूछते हैं, क्या तूने चोरी की? तो भीतर से तो आवाज आती है, की। क्योंकि उसने की है। ऊपर से वह कहता है, नहीं की। नीचे झटका लग जाता है। नीचे जो हृदय का कंपन है, वह दोहरी खबर देता है, एकदम से झटका आ जाता है। नीचे का ग्राफ बताता है कि यह आदमी कुछ और कहना चाहता था और इसने कुछ और कहा।

तो अब तो हर अदालत में अमेरिका में उपयोग कर रहे हैं। झूठ बोलना बहुत मुश्किल है, आप कितने ही तैयार होकर गए हों। जितने तैयार होकर गए हों, उतना ही मुश्किल है। क्योंकि आप क्या करिएगा इस बात को! भीतर यह होगा ही। जो आप जानते हैं, सही है, वह तो आप जानते हैं। उसे भूलने का कोई उपाय नहीं। और जो आप जानते हैं, सही नहीं है, आप उसे कितना ही कहें, हृदय झटका खाएगा। क्योंकि दोहरी बातें हो गईं। एक स्वर न रहा; भीतर दो स्वर हो गए।

यह जो आदमी ऐसे दो स्वर प्रकट कर रहा है यंत्र के ऊपर, जो आदमी बुरा कर रहा है, वह चौबीस घंटे इस तरह की ही बेचैनी में जी रहा है।

झूठ बोलने वाले आदमी की बड़ी तकलीफ है। उसको एक झूठ के लिए हजार झूठ बोलने पड़ते हैं। एक बुरा काम कर ले, तो उसको बचाने के लिए फिर हजार बुरे काम करने पड़ते हैं। फिर एक सिलसिला शुरू होता है, जिसका कोई अंत नहीं है। और इसमें वह उलझता चला जाता है। इस सबका इकट्ठा परिणाम दुख है।

लेकिन कृष्ण कहते हैं, सात्विक कर्म का फल सुख और ज्ञान है। जैसे ही आप हलके होंगे, शांत होंगे, प्रसन्न होंगे, प्रफुल्लित होंगे, एट ईज होंगे, एक गहरा विश्राम होगा; भीतर दो स्वर नहीं हैं, एक ही भाव है; और सब चीजें साफ हैं, सच्ची हैं, सीधी हैं। इस सीधे —सच्चेपन में, इस भोलेपन में, इस निर्दोषता में, आपकी आंखें अपने को पहचानने में समर्थ होंगी। वही ज्ञान है।

स्वयं को पहचानने के लिए भीतर धुआं नहीं चाहिए, द्वंद्व नहीं चाहिए कलह नहीं चाहिए। भीतर सन्नाटा चाहिए। और सन्नाटा केवल उसी में हो सकता है, जो सात्विक हो। नहीं तो सन्नाटा बहुत मुश्किल है।

आपको पूरे समय सुरक्षा में ही लगे रहना पड़ता है। पूरे समय भय पकड़े है। पूरे समय कोई आपका पीछा कर रहा है। कोई आपको पकड़ने—उलझाने में लगा हुआ है। जिन—जिन को आपने धोखा दिया है, वे आपकी तलाश में हैं। जिन—जिन का आपने बुरा किया है, वे भी आपके बुरे के लिए, प्रतिकार की प्रतीक्षा कर रहे हैं। ये सब चारों तरफ आपके दुश्मन हो जाते हैं।

असल में, सात्विक व्यक्ति अपने चारों तरफ मित्रता बो रहा है, प्रेम बो रहा है। उसे भय का कोई कारण नहीं है। सुरक्षा की कोई चिंता नहीं है। भीतर कोई कलह नहीं है।

इससे जो सहज भाव पैदा होगा, जो आंतरिक स्वास्थ्य पैदा होगा, वही स्वास्थ्य आपकी आखों को भीतर की तरफ खोलेगा। धुआं हट जाएगा। जैसे सुबह की धुंध हट गई हो और सूरज साफ हो जाए, वैसे ही आपके दुष्कृत्यों की धुंध हट जाएगी, दुर्भाव की धुंध हट जाएगी, और आप आत्म—साक्षात्कार में सफल हो पाएंगे। इसलिए ज्ञान।

और भी उससे भी जटिल बात है, वैराग्य। सुख, ज्ञान और वैराग्य फल हैं सात्विक कर्म के। यह बहुत समझने जैसा है और बहुत गहरा और सूक्ष्म है।

जो आदमी जितना सात्विक है, उतना ही उसका राग गिरने लगेगा, उतना ही उसमें एक वैराग्य— भाव उदय होने लगेगा। क्यों? राग का क्या मतलब है?

राग का मतलब है, मेरा सुख दूसरे पर निर्भर है। यह राग का मतलब है, अटैचमेंट का, कि मेरा सुख दूसरे पर निर्भर है। मेरी पत्नी पर मेरा सुख निर्भर है। मेरे पति पर निर्भर है। मेरे बेटे पर, मेरे पिता पर, मित्र पर, धन पर, मकान पर, किसी दूसरे पर कहीं मेरा सुख निर्भर है। और जिस पर मेरा सुख निर्भर है, उसे मैं पकड़कर रखना चाहता हूं कि वह छूट न जाए। यही राग है।

लेकिन सात्विक व्यक्ति जानता है कि सुख मेरे भीतर है; इसका वह रोज अनुभव करता है। जब भी वह सात्विक कर्म करता है, सात्विक भाव करता है, वह पाता है, सुख बरस जाता है। सुख मेरे हाथ में है। सुख की वर्षा का सारा आयोजन मेरे हाथ में है। इशारा, और सुख बरस जाता है।

स्वभावत:, वह जानने लगता है कि सुख मेरा किसी पर निर्भर नहीं है। इसलिए उसका राग क्षीण होता है, वैराग्य बढ़ता है। अगर पत्नी उसके पास है, तो वह सुखी है। और पत्नी उससे दूर है, तो वह सुखी है। और उसके सुख में फर्क नहीं पड़ता। जब पत्नी पास है, तब वह पत्नी का सुख लेता है। जब पत्नी दूर है, तब पत्नी के न होने का सुख लेता है। पर उसके सुख में अंतर नहीं पड़ता। और दोनों का सुख है, ध्यान रहे।

और आमतौर से आदमी, जब पत्नी है, तब पत्नी के होने का दुख भोगता है। और जब पत्नी नहीं है, तब न होने का दुख भोगता है। आप प्रयोग करके देखना, पत्नी को थोड़े दिन बाहर भेजें। फिर आप दुखी होंगे कि पत्नी दूर है। और आप भलीभाति जानते हैं कि जब पास थी, तब नरक था। मगर थोड़े दिन दूर रहे, तो भूल जाता है नरक और कल्पना कर—करके आप स्वर्ग बना लेते हैं। पत्नी आते ही से सब स्वर्ग रास्ते पर लगा देगी। वापस आई कि नरक शुरू हुआ।

लोगों का अनुभव है, पति—पत्नियों का, कि न तो वे साथ रह सकते हैं और न दूर रह सकते हैं। इसलिए उनका द्वंद्व जो है, उससे छुटकारे का कोई उपाय भी नहीं है। पास रहते हैं, तो कष्ट पाते हैं। दूर रहते हैं, तो कष्ट पाते हैं।

जिन लोगों के पास धन है, वे धन के कारण परेशान हैं। जिनके पास धन नहीं है, वे धन के न होने के कारण परेशान हैं। कोई गरीबी से पीड़ित है, कोई अमीरी से पीड़ित है।

मेरे पास, दोनों तरह के पीड़ित लोगों का मुझे अनुभव है। गरीब यह सोचता है, धन मिल जाए, तो बड़ा सुख हो। धनी कहता है कि सब है, लेकिन सिवाय चिंता के इससे कुछ मिलता नहीं!

शायद आपको खयाल ही नहीं है कि सुख बाहर से कभी किसी को मिला नहीं है। न गरीबी से मिला है, न अमीरी से, न पत्नी के होने से, न न होने से। सुख एक आंतरिक संपदा है। जब उसे आप अपने भीतर खोज लेते हैं, तब आपको मिलता है। तब हर हालत में मिलता है। तब ऐसी कोई दशा नहीं है, जब सुख नहीं मिलता। तब हर स्थिति में आप सुख खोज लेते हैं।

अगर घर में बच्चे खेल रहे हैं और शोरगुल कर रहे हैं, तो आप उनकी, बच्चों की खिलखिलाहट में सुख लेते हैं। और बच्चे चले गए और घर खाली है, तो आप घर के सन्नाटे में सुख लेते हैं। तब घर का सन्नाटा सुखद है। और जब बच्चे लौट आते हैं, और किलकारियां भरते हैं, और नाचते हैं, कूदते हैं, तब आप उनके नाचने—कूदने में सुख लेते हैं। जीवन चारों तरफ उछलता हुआ, आप उसमें सुख लेते हैं।

लेकिन सुख आपके भीतर है। कभी आप सन्नाटे पर आरोपित कर देते हैं, कभी बच्चों की किलकारी पर आरोपित कर देते हैं। जो दुखी आदमी है, बच्चे शोरगुल करते हैं, तो वह कहते हैं, शांति नष्ट हो रही है। बंद करो आवाज! घर में कोई न हो, तो वह कहता है, बिलकुल अकेला हूं। बड़ी उदासी मालूम होती है।

आपके ढंग पर, आपकी जीवन—व्यवस्था पर, लाइफ स्टाइल पर निर्भर है। सात्विकता एक जीवन का ढंग है, जिसमें सुख भीतर है। इसलिए कृष्ण बड़ी मौलिक बात कहते हैं कि वैराग्य उसका फल है।

सुखी आदमी हमेशा विरागी होगा। आपने इससे उलटी बात सुनी होगी कि अगर सुख चाहिए हो, तो वैराग्य को साधो, वह बिलकुल गलत है। क्योंकि कृष्ण यह नहीं कह रहे हैं, वैराग्य साधो, तो सात्विकता आ जाएगी। कृष्ण कह रहे हैं, सात्विक हो जाओ, तो वैराग्य उसका फल है।

लेकिन न मालूम कितने लोग समझाए चले जा रहे हैं कि तुम वैरागी हो जाओ। छोड़ दो सब, फिर बड़े सुखी हो जाओगे।

मैं छोड़े हुए लोगों को जानता हूं। यहां घर के कारण दुखी थे; वहा अब आश्रम के कारण दुखी हैं। पहले यहां पत्नी—बच्चों के कारण दुखी थे, अब वहा दुखी हैं संन्यासियों के पास रहकर संन्यासियों के कारण। दुख में अंतर नहीं है।

असल में दुख इस तरह छूटता ही नहीं। सात्विक हो जाओ, तो वैराग्य उसका फल होगा।

और ध्यान रहे, जब दुखी आदमी छोड्कर भागता है, तो उसका छोड्कर भागना एक रोग की तरह है। और जब सुखी आदमी छोड़ता है, उसके छोड़ने में एक ज्ञान है। उसका छोड़ना ऐसा है,

जैसे सूखा पता वृक्ष से गिरता है। न तो वृक्ष को घाव पैदा होता है, न पत्ते को पता चलता है, न कहीं कोई खबर होती है। सूखा पत्ता है। सूख गया। अपने आप चुपचाप कब झड़ जाता है हवा के झोंके में, किसी को पता नहीं चलता। वृक्ष की नींद भी नहीं टूटती। वह अपनी शांति में खड़ा है। एक कच्चे पत्ते को तोड़े, पत्ते को भी चोट पहुंचती है, वृक्ष पर भी घाव बनता है। वृक्ष भी सहमता है।

अब तो नापने के उपाय हैं वृक्ष की संवेदना को। वृक्ष की संवेदना का यंत्र लगा दें और पत्ता तोड़े। और संवेदना का यंत्र कहेगा, वृक्ष को चोट पहुंची, घाव पहुंचा, दुख हुआ।! और ध्यान रखें, वृक्ष भी याद रखता है। अगर आप रोज—रोज वृक्ष का पत्ता तोड़ते हैं या माली हैं और काटते हैं, तो आप चकित होंगे जानकर, रूस में बड़े प्रयोग हुए हैं, जब माली वृक्ष के पास आता है..। बहुत पहले कबीर ने कहा था, माली आवत देख के कलियन करी पुकार। वह कबीर ने कविता में कहा था। अभी रूस में उसके वैज्ञानिक प्रयोग हुए हैं।

जैसे ही माली को वृक्ष करीब आते देखता है, उसके सारे प्राण के रोएं—रोएं सिहर उठते हैं। और इसकी जांच, अब तो वैज्ञानिक यंत्र हैं हमारे पास, जो खबर दे देते हैं कि वृक्ष कैप रहा है, घबड़ा रहा है। और ऐसा नहीं कि जिस वृक्ष को काटा है, वही घबड़ाता है। उसके पास के वृक्ष भी उसकी पीड़ा से प्रभावित होते हैं और घबड़ाते हैं और डांवाडोल होते हैं। लेकिन सूखा पत्ता जब गिरता है, तो वृक्ष को कहीं भी कुछ पता नहीं चलता।

सुखी आदमी जब कुछ छोड़ता है, तो सूखे पत्ते की तरह गिर जाता है। इसलिए बुद्ध जब छोड़ते हैं राज्य, वह और बात है। और अगर आप घर छोड्कर चले गए, वह कोई राज्य भी नहीं है, आपका घाव आपको सताएगा। आप चले जाएंगे जंगल में, लेकिन सोचेंगे घर की। चले जाएंगे जंगल में, लेकिन कोई मिलने आ जाएगा, तो आप कहेंगे, महल छोड़ आया हूं। चाहे आप झोपड़ा छोड़ आए हों। लाखों की संपत्ति पर लात मार दी है। बड़ी सुंदर पत्नी थी। हालांकि किसी की पत्नी सुंदर नहीं होती। सदा दूसरे की पत्नी सुंदर होती है, अपनी कभी होती नहीं।

मुल्ला नसरुद्दीन शादी कर लाया था। तो पत्नी ने पहले ही दिन कहा कि यह जो बाथरूम है, इस पर पर्दा लगा दो, क्योंकि पड़ोसी देखते हैं। नसरुद्दीन ने बेफिक्र रह। एक दफा देख लेने दे, पर्दा वे खुद अपनी खिड़कियों पर लगाएंगे। तू बिलकुल फिक्र मत कर। यह खर्चा मेरे ऊपर मत डाल। बस, एक दफा उनको देख लेने दे।

सभी पति ऐसा ही सोचते हैं। क्योंकि जो दूर है, वह लुभावना है। जो पास है, वह व्यर्थ हो जाता है। जो हाथ में नहीं है, वह आकर्षक है। जो हाथ में है, वह बोझ हो जाता है।

पर अगर आप जंगल चले गए, तो आप चर्चा करेंगे कि आप कोई नूरजहां, कोई मुमताजमहल छोड़ आए हैं। कोई बड़ा महल, कोई बड़ा राज्य.।

वह सूचना आप जो दे रहे हैं, उससे पता चलता है कि वह छूट नहीं पाया। घाव पीछे रह गया है। जिनको त्यागी गई चीजों की याद रह जाती है, उनका घाव पक्का है, वह भर नहीं रहा। वह घाव दर्द दे रहा है।

कृष्ण कहते हैं, सात्विक कर्म का फल वैराग्य है।

यह बडा क्रांतिकारी वचन है और बड़ा वैज्ञानिक। शुभ जो करेगा, धीरे— धीरे उसका राग क्षीण हो जाएगा और वैराग्य का उदय होगा। राजस कर्म का फल दुख; तामस कर्म का फल अज्ञान।

राजस कर्म का फल दुख होगा, क्योंकि वह दुख से निकलता है। आप कर्मों में लगे हैं इसलिए कि आप इतने ज्यादा भीतर परेशान हैं कि कर्मों में लगकर अपने को भुलाने की कोशिश कर रहे हैं। इसलिए छुट्टी का दिन बहुत कठिन हो जाता है। उसे गुजारना मुश्किल हो जाता है।

लोग छुट्टी का दिन गुजारने बाहर भागते हैं। मीलों का सफर करेंगे। भागे हुए जाएंगे, कहीं होटल में खा—पीकर भागे हुए आएंगे। अमेरिका और योरोप में तो बिलकुल बंपर टु बंपर कारें लगी हैं। लाख कारें एक साथ एक बीच पर पहुंच जाएंगी। वह सब उपद्रव जिसको वे छोड्कर भागे थे, साथ ही चला आ रहा है! वहा बीच पर कोई जगह ही नहीं है। वहां सारा मेला भरा हुआ है। वहीं वे बैठे हैं। शांति की तलाश में आए थे। मगर अकेले नहीं आए थे, और भी लोग शांति की तलाश में निकल पड़े थे!

अब तो लोग कहते हैं कि अमेरिका में अगर शांति चाहिए हो, तो छुट्टी के दिन घर में बैठे रहो। क्योंकि पड़ोसी सब जा रहे हैं शांति की तलाश में। थोड़ी शांति शायद मिल जाए। लेकिन कहीं जाना मत, क्योंकि जहां भी तुम जाओगे, वहीं आदमी पहुंच गया है तुमसे पहले।

हमारे भीतर दुख है। उसे हम भुला रहे हैं किसी न किसी तरह के कर्म में। खाली बैठकर हमें बेचैनी होती है, क्योंकि खाली बैठकर दुख हमारा साफ हो जाता है।

ध्यान रहे, दुख से बचने का हमें एक ही उपाय है, विस्मरण। कोई भी तरकीब से भूल जाएं। दूसरी तरफ मन लग जाता है। ताश खेलने लगे, दुख भूल गया। कुछ काम करने लगे, दुकान पर चले गए सेवा करने लगे, कुछ न मिला तो गीता ही पढ़ने लगे, राम—राम जपने लगे, माला ले ली एक हाथ में, उसके गुरिए सरकाने लगे; कुछ कर रहे हैं। लेकिन कुछ करने से एक फायदा है कि वह जो भीतर दुख दिखाई पड़ता था, वह नहीं दिखाई पड़ता, मन डायवर्ट हुआ! किसी और दिशा में लग गया। लेकिन घडीभर बाद, कब तक माला फेरिएगा! फिर माला बंद की, दुख का फिर स्मरण आया।

दुखी लोग राजस कर्म में लग रहे हैं। और जहां से कर्म निकलता है, वहीं पहुंचा देता है। प्रारंभ हमेशा अंत है। इस सूत्र को खयाल रखें, प्रारंभ हमेशा अंत है। क्योंकि बीज ही वृक्ष होगा। और अंत में फिर वृक्ष में बीज लग जाएंगे। और जिस बीज से वृक्ष हुआ है, वही हजारों बीज उस वृक्ष पर लगेंगे, दूसरे नहीं। अगर आपके दुख से कर्म निकला है, तो दुख बीज है, कर्म वृक्ष है। फिर हजार बीज उसी दुख के लग जाएंगे।

इसलिए राजस कर्म दुख में ले जाता है, क्योंकि दुख से पैदा होता है।

और तामस कर्म का फल अज्ञान है। तामस कर्म का अर्थ है, नहीं करना था और करना पड़ा। करने की कोई इच्छा नहीं थी।

सात्विक कर्म का अर्थ है, करने की कोई विक्षिप्तता नहीं थी। किसी और को जरूरत थी, इसलिए किया। राजस कर्म का अर्थ है, करने का पागलपन था। तुमको जरूरत थी या नहीं, हमने किया।

एकनाथ संत हुए महाराष्ट्र में। वे तीर्थयात्रा पर जा रहे थे। एक चोर ने प्रार्थना की कि महाराज, मैं भी साथ चलूं? एकनाथ ने कहा, तू जरा झंझटी है। और तेरा हमें पता है। उसने कहा, मैं बिलकुल कसम खाता हूं कि चोरी नहीं करूंगा, कम से कम तीर्थयात्रा में। चोर था, उसकी बात का भरोसा हो सकता है। क्योंकि आमतौर से चोर भरोसा नहीं देते। लेकिन जब कोई चोर भरोसा देता है, तो उसका वचन माना जा सकता है।

एकनाथ ने उसे साथ ले लिया। लेकिन दूसरे ही दिन से उपद्रव शुरू हो गया। उपद्रव यह था कि एक के बिस्तर का सामान दूसरे के बिस्तर में चला जाए। किसी का कमीज किसी दूसरे की दरी के नीचे दबा हुआ मिले। किसी की जेब का पैसा दूसरे की जेब में। चोर चोरी नहीं करता था, लेकिन रात में सामान बदल देता था। खुद नहीं चुराता था, क्योंकि उसने कसम खा ली थी। लेकिन पुरानी आदत और कर्म!

आखिर दो—चार दिन में एकनाथ ने कहा कि यह करता कौन है! क्योंकि मिल जाती हैं चीजें आखिर में। लेकिन परेशानी होती है। तो वे जागते रहे। रात में देखा, चोर कर रहा है। वह एकनाथ का ही सामान निकालकर बगल वाले की पेटी में कर रहा था।

उन्होंने कहा कि तू यह क्या कर रहा है? उसने कहा, महाराज, चोरी नहीं करूंगा, इसका वचन दिया है। लेकिन कर्म न करूं, तो बड़ी मुश्किल है। और फिर तीन महीने बाद घर लौटूंगा, तो अभ्यास जारी रहना चाहिए। यह तीर्थयात्रा कब तक चलेगी! अंततः तो मुझे चोरी ही करनी है। किसी की हानि नहीं कर रहा हूं।

जो राजस व्यक्ति है, उसके कर्म का निकलना उसके भीतर की बेचैनी है। सात्विक का कर्म दूसरे पर दया है। राजसिक का कर्म खुद की बीमारी है। तामसिक का कर्म दूसरे के द्वारा पैदा की गई मजबूरी है। उसको धक्का दो कि चलो, उठो। जाओ, यह करो। मजबूरी है। बंदूक लगाओ उनके पीछे, तो वे दों—चार कदम चलते हैं। बंदूक हटा लो, वे वहीं बैठ जाते हैं।

यह जो दूसरे के द्वारा मजबूरी से किया गया कर्म है तामस का, यह गहन अज्ञान लाएगा। जैसे सात्विक कर्म ज्ञान लाता है, दूसरे पर दया के कारण खुद को हलका करता है। यह दूसरे के द्वारा जबरदस्ती के कारण दूसरे पर घृणा पैदा होगी, हिंसा पैदा होगी; दूसरे को मार डालने का भाव होगा कि सारी दुनिया मेरे पीछे पड़ी है!

आलसी आदमी को ऐसे ही लगता है कि बाप पीछे पड़ा है, पत्नी पीछे पड़ी है, मां पीछे पड़ी है। सारी दुनिया मेरे पीछे पड़ी है कि कुछ करो। और उसे कुछ करने जैसा लगता ही नहीं। उसे लगता है, वह चुपचाप बैठा रहे। सारी दुनिया उसकी दुश्मन है!

ध्यान रहे, सात्विक व्यक्ति अपने चारों तरफ प्रेम बोता है। तामसिक वृत्ति का व्यक्ति अनजाने अपने चारों तरफ शत्रु पाता है। शत्रु उसको लगेंगे, क्योंकि वे सभी उसको निकालने की कोशिश में लगे हैं कि तुम कुछ करो। उसके मन में सबके प्रति घृणा, सबके प्रति द्वेष, सबके प्रति तिरस्कार, कोई मित्र नहीं है, सब दुश्मन हैं—ऐसा भाव पैदा होता है। उसका धुआं बढ़ जाता है। उसके भीतर का धुंध बढ़ जाता है। दूसरे पर दया से धुंध कटता है, दूसरे पर घृणा से धुंध बढ़ता है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, तामस कर्म का फल अज्ञान है। वह और भी डूबता जाता है। खुद को देखना और मुश्किल हो जाता है। खुद को पहचानना असंभव हो जाता है।

सत्वगुण से ज्ञान उत्पन्न होता है; रजोगुण से निस्संदेह लोभ; तमोगुण से प्रमाद और मोह और अज्ञान होता है।

सत्वगुण से ज्ञान। क्योंकि भीतर का अंधेरा टूटता है, आलोक आता है, हम स्वयं को पहचान पाते हैं।

रजोगुण से लोभ। और जितना ही कोई कर्मों में प्रवृत्त होता है, उतना ही लोभ को जगाना पड़ता है। क्योंकि लोभ को जगाए बिना कर्म में प्रवृत्त होना मुश्किल है। इसलिए आप ताश खेल रहे हैं। अकेला ताश खेलना आपको ज्यादा रस नहीं देगा। थोड़ा दांव जुए का लगा दें, थोड़े रुपए और रख दें वहा, तो गति आ जाएगी, क्योंकि अब लोभ के लिए सुविधा है।

तो हम कर्म भी तभी कर सकते हैं, जब कुछ लोभ सामने खड़ा हुआ दिखाई पड़े। इसलिए राजसिक व्यक्ति अपना लोभ पैदा करता रहता है रोज, ताकि कर्म कर सके। रजोगुण से लोभ उत्पन्न होता है। लोभ से राजसिकता बढ़ती है। जितनी राजसिकता बढ़ती है, उतना लोभ पैदा करना पड़ता है। इसलिए रोज आपको नई मंजिल चाहिए, नया लोभ चाहिए, नए टारगेट चाहिए, जहां आप पहुंचें। इसीलिए रोज विज्ञापनदाताओं को नए विज्ञापन खोजने पड़ते हैं। नई कारें बनानी पड़ती हैं। नये मकान की डिजाइन निकालनी पड़ती है। और आपको नया लोभ देना पड़ता है। विज्ञापन का पूरा का पूरा इंतजाम आपको लोभ देने के लिए है। इसलिए जितना राजसिक मुल्क होगा, उतनी ज्यादा एडवरटाइजमेंट होगी।

अमेरिका इस वक्त सबसे ज्यादा विज्ञापन करता है। अरबों डालर विज्ञापन पर खर्च होता है। क्यों? क्योंकि वे जो आदमी बैठे हैं सारे मुल्क में, उनको कर्म चाहिए।

अभी इसके पहले तक नारा था कि हर आदमी के पास एक कार हो, एक गैरेज हो। लेकिन अब वह गरीब आदमी का लक्षण है अमेरिका में। दो कार! अगर आपके पास दो कार नहीं, तो आप गरीब आदमी हैं। अब यह लोभ हो गया। अब जिनके भी दिमाग में पागलपन है, वे दो कार के पीछे पड़े हैं। हालांकि एक ही कार काम आती है। अब वे दो कार के पीछे पड़े हैं।

आपके पास मकान सिर्फ शहर में ही है? पहाड़ पर नहीं है? आप गरीब आदमी हैं। एक मकान पहाड़ पर भी चाहिए।

रोज नया लोभ देना पड़ता है, क्योंकि राजसिक पूरा मुल्क हो, राजस से भरे हुए लोग हों, कर्म का पागलपन हो, और लोभ की कमी हो, तो लोग पागल हो जाएंगे। उनको रोज नया लोभ दो, नई आवश्यकता पैदा करो।

तमोगुण से प्रमाद और मोह।

और जो आलस्य में पड़ा रहता है, वह धीरे- धीरे तंद्रा में, निद्रा में, प्रमाद में, बेहोशी में खोता चला जाता है। पर बेहोशी अज्ञान है। सत्वगुण में स्थित हुए पुरुष स्वर्गादिक उच्च लोकों को जाते हैं। रजोगुण में स्थित पुरुष मध्य मनुष्य लोक में, एवं तमोगुण में निद्रा, प्रमाद, आलस्य में डूबे हुए लोग, तामस पुरुष, अधोगति, नीच योनियों को प्राप्त होते हैं।

ये तीन स्थितियां हैं मन की, चित्त की। मेरे हिसाब में कहीं कोई स्वर्ग नहीं है पृथ्वी के ऊपर। और कहीं कोई नरक नहीं है पृथ्वी के नीचे। कहीं पाताल में छिपा कोई नरक नहीं है, आकाश में छिपा कोई स्वर्ग नहीं है। स्वर्ग और नरक मनुष्य की उच्चतम और निम्नतम स्थितियां हैं।

जब भी आप गहन सुख में होते हैं, आप स्वर्ग में होते हैं। और जब आप गहनतम संताप में होते हैं, तो आप नरक में होते हैं। लेकिन आमतौर से आप दोनों में नहीं होते, बीच में होते हैं। वही मनुष्य के मन की अवस्था है, मध्य। और दोनों तरफ डोलते रहते हैं। सुबह नरक, शाम स्वर्ग। पूरे वक्त आपके भीतर डांवाडोल स्थिति चलती रहती है। स्वर्ग और नरक के बीच यात्रा होती रहती है।

जो व्यक्ति सत्व में थिर हो जाता है, उसकी यह यात्रा बंद हो जाती है। वह भीतर के सुख में घिर हो जाता है। उसका थर्मामीटर सुख के उच्चांक को छू लेता है और वहीं ठहरा रहता है। फिर नीचे नहीं गिरता।

जो व्यक्ति तमस में बिलकुल थिर हो जाता है, उसका थर्मामीटर, उसकी चेतना की दशा निम्नतम बिंदु पर ठहर जाती है। उससे ऊपर नहीं उठती।

जो व्यक्ति राजस में भरा हुआ है, राजस में ठहरा हुआ है, वह मध्य में ही बना रहता है। सुख का आभास बना रहता है, दुख का डर बना रहता है। न दुख मिलता है, न सुख मिलता है। वह बीच में अटका-सा रहता है, त्रिशंकु की उसकी दशा होती है। और या फिर कभी-कभी छलांग लगाकर थोड़ा सुख ले लेता है, कभी छलांग लगाकर थोड़ा दुख ले लेता है।

ये तीन स्थितियां हैं। उच्चतम को हम स्वर्ग कहते हैं, वह मन की सुख की अवस्था है। निम्नतम को नरक कहते हैं, नीच गति कहते हैं, अधोगति कहते हैं, वह चेतना की निम्नतम स्थिति है। और मध्य, जहां मनुष्य है।

मनुष्य शब्द सोचने जैसा है। मनुष्य शब्द बना है मन से। मन की जो दशा है आमतौर से, मध्य में है। मन हमेशा बीच में है। वह सोचता है, कल सुख मिलेगा। सुख दूर है। मिला नहीं। और वह डरता है कि कल कहीं दुख न मिल जाए। तो कल दुख न मिले, इसका इंतजाम करता है। और कल सुख मिले, इसकी व्यवस्था करता है। कल भी वह यही करेगा, परसों भी यही करेगा, पूरी जिंदगी यही करेगा। रहेगा वह बीच में। और तब संतुष्ट नहीं होगा, अतृप्त होगा, फ्रस्ट्रेशन होगा। कहीं नहीं पहुंच रहा है। जहां खड़ा था, वहीं खडा है।

ये जो चेतना की स्थितियां हैं, इनको समझाने के लिए स्थान की तरह चर्चा की गई है शास्त्रों में। लेकिन उससे बड़ी भ्रांति हो गई है। लोग समझने लगे हैं, ये स्थान हैं। स्थान केवल समझाने के लिए हैं। स्थितियां हैं, स्थान नहीं। स्टेट्स आफ माइंड हैं, कोई भौगोलिक, ज्याग्राफी की जगह नहीं हैं।

यह तो अब छोटे—छोटे बच्चे भी जानते हैं कि नरक कहीं नहीं है, स्वर्ग कहीं नहीं है। भूगोल छान डाली गई है। और इसलिए शास्त्रों को निरंतर बदलना पड़ा। पहले शास्त्रों पर इतना दूर नहीं था स्वर्ग, जितना बाद में हो गया। पहले भगवान हिमालय पर रहते थे। फिर आदमी हिमालय पर पहुंचने लगा, तो भगवान को हटाना पड़ा। तो वह उनको कैलाश पर बैठा दिया, आखिरी चोटी पर। फिर वह भी कुछ अगम्य न रही। तो हमें आकाश में बिठाना पड़ा। अब हमारे अंतरिक्ष यान आकाश में पार जा रहे हैं। अब वहा भी भगवान सुरक्षित नहीं है।

इसलिए वेदांत ने कहा है कि भगवान निराकार है, तुम उसे कहीं खोज न पाओगे। तुम कहीं भी जाओ, तुम यह नहीं कह सकते, वह नहीं मिला, क्योंकि उसका कोई आकार नहीं है। पर यह आदमी जहां भी खोज लेता है, वहीं हमको कहना पड़ता है, यहां भगवान नहीं है।

स्थान की बात ही गलत है। स्थान से कुछ संबंध नहीं है। भगवान भी एक अवस्था है भगवत्ता की। जैसे ये तीन अवस्थाएं मन की हैं, ऐसी वह तीन के पार चौथी अवस्था है, गुणातीत। जब कोई तीनों के पार हो जाता है—न दुख, न सुख, न मध्य; न तामस, न राजस, न सात्विक—जब तीनों गुणों के पार कोई उठ जाता है, तब उस अवस्था का नाम भगवत्ता है।

इसलिए हम कृष्ण को भगवान कहते हैं या बुद्ध को भगवान कहते हैं। भगवान का कुल अर्थ इतना ही है। भगवान का यह मतलब नहीं कि उन्होंने दुनिया बनाई, कि बुद्ध ने कोई दुनिया

बनाई, कि कृष्ण ने कोई दुनिया बनाई। भगवान का कुल अर्थ इतना

ही है कि तीन गुणों के जो पार हो गया, वह भगवत्ता को उपलब्ध हो गया।

गीता दर्शन–(भाग–7)
अध्याय—14 (प्रवचन—सातवां) — असंग साक्षी

सूत्र—

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यीत।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति।।19।।
गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान्।
जन्मस्त्युत्रजराद्ः खैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते।।20।।
और हे अर्जुन, जिस काल में द्रष्टा तीनों गुणों के सिवाय अन्य किसी को कर्ता नहीं देखता है अर्थात गुण ही गुणों में बर्तते है, ऐसा देखता है और तीनों गुणों से अति परे सच्चिदानंदधनस्वरूप मुझ परमात्मा को तत्व से जानता है, उस काल में वह पुरुष मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है।

तथा यह पुरूष इन स्थूल शरीर की उत्पत्ति के कारणरूप तीनों गुणों को उल्लंघन करके जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था और सब प्रकार के दुखों से मुक्त हुआ परमानंद को प्राप्त होता है।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्न :
आपने तमस, रजस और सत्व और उनकी समान मात्राओं का होना क्रमश: लाओत्से, जीसस, महावीर और कृष्ण के व्यक्तित्व के माध्यम से स्पष्ट किया। इस संदर्भ में याद आता है कि आप अतीत में अत्यंत क्रांतिकारी थे। सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं धार्मिक तलों पर आपने सारे देश में उथल—पुथल पैदा कर दी थी। जिससे स्पष्ट था कि आप जीसस की तरह रजस—प्रधान हैं। फिर उन्नीस सौ सत्तर के बाद आपने अपने को बिलकुल भीतर सिकोड़ लिया और हमें लगता है कि अब आप सत्व—प्रधान हैं। क्या ऐसा परिवर्तन संभव है?
कुछ बातें ध्यान में लें, तो समझ में आ सकेगा। एक तो बुद्ध, महावीर, मोहम्मद और जीसस जैसे व्यक्तित्व ?ई हैं। इन व्यक्तित्वों ने एक ही गुण को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। मोहम्मद और जीसस हैं, रजोगुण उनकी अभिव्यक्ति का माध्यम है। बुद्ध और महावीर हैं, सत्वगुण उनकी अभिव्यक्ति का माध्यम है। लाओत्से और रमण हैं, तमस उनकी अभिव्यक्ति का माध्यम है। कृष्ण तीनों गुणों को एक सा अभिव्यक्ति के लिए प्रयोग कर रहे हैं।

एक और भी संभावना है, जिसका प्रयोग मैंने किया है। तीनों गुणों का एक साथ नहीं, एक—एक गुण का अलग—अलग। और मेरी दृष्टि में वही सर्वाधिक वैज्ञानिक है, इसलिए उसका चुनाव किया है।

तीनों गुण प्रत्येक व्यक्ति में हैं। दो गुणों से कोई भी व्यक्ति बन नहीं सकता। एक गुण के साथ किसी व्यक्ति के अस्तित्व की कोई संभावना नहीं है। उन तीनों का जोड़ ही आपको शरीर और मन देता है। जैसे बिना तीन रेखाओं के कोई त्रिकोण न बन सकेगा, वैसे ही बिना तीन गुणों के कोई व्यक्तित्व न बन सकेगा। उसमें एक भी गुण कम होगा, तो व्यक्तित्व बिखर जाएगा।

अगर कोई व्यक्ति कितना ही सत्व—प्रधान हो, तो सत्व—प्रधान का इतना ही अर्थ है कि सत्व प्रमुख है, बाकी दो गुण सत्व के नीचे छिप गए हैं, दब गए हैं। लेकिन वे दो गुण मौजूद हैं। और उनकी छाया सत्वगुण पर पड़ती रहेगी। प्रधानता उनकी नहीं है, वे गौण हैं। आपमें कोई भी गुण प्रकट हो, तब दो मौजूद होते हैं।

कृष्ण ने तीनों गुणों का एक साथ प्रयोग किया है। जैसे तीनों गुणों की तीनों भुजाएं समान लंबाई की हैं; त्रिभुज की तीनों रेखाएं समान लंबाई की हैं। कृष्ण का व्यक्तित्व तीनों का संयुक्त जोड़ है। और इसलिए कृष्ण को समझना उलझन की बात है।

एक गुण वाले व्यक्ति को समझना बहुत आसान है। जिसमें दो गुण दबे हों, उसके व्यक्तित्व में एक संगति होगी, कसिस्टेंसी होगी। लाओत्से के व्यक्तित्व में जैसी कसिस्टेंसी, संगति है, वैसी कृष्ण के व्यक्तित्व में नहीं है। लाओत्से का जो स्वाद एक शब्द में है, वही सारे शब्दों में है। बुद्ध के वचनों में एक संगति है, गहन संगति है। बुद्ध ने कहा है, जैसे तुम सागर को कहीं से भी चखो, वह खारा है, वैसे ही तुम मुझे कहीं से भी चखो, मेरा स्वाद एक है। जीसस या मोहम्मद, इन सबके स्वाद एक हैं।

लेकिन आप अनेक स्वाद कृष्ण में ले सकते हैं, तीन तो निश्चित ही ले सकते हैं। और चूंकि तीनों का मिश्रण हैं, इसलिए बहुत नए स्वाद भी उस मिश्रण से पैदा हुए हैं। इसलिए कृष्ण का रूप बहुरंगी है। और कोई भी व्यक्ति कृष्ण को पूरा प्रेम नहीं कर सकता, उसमें चुनाव करेगा। जो पसंद होगा, वह बचाएगा; जो नापसंद है, उसे काट देगा।

इसलिए अब तक कृष्ण के ऊपर जितनी भी व्याख्याएं हुई हैं, सब चुनाव की व्याख्याएं हैं। न तो शंकर कृष्ण को पूरा स्वीकार करते हैं, न रामानुज, न निंबार्क, न वल्लभाचार्य, न तिलक, न गांधी, न अरविंद, कोई भी कृष्ण को पूरा स्वीकार नहीं करता। उतने हिस्से कृष्ण में से काट देने पड़ते हैं, जो असंगत मालूम पड़ते हैं, विरोधाभासी मालूम पड़ते हैं, जो एक—दूसरे का खंडन करते हुए प्रतीत मालूम पड़ते हैं।

जैसे गांधी हैं, गांधी अहिंसा को इतना मूल्य देते हैं। तो कृष्ण अर्जुन को हिंसा के लिए उकसावा दे रहे हैं, यह उनके लिए अड़चन की बात हो जाएगी। गांधी सत्य को परम मूल्य देते हैं, कृष्ण झूठ भी बोल सकते हैं, यह गांधी की समझ के बाहर है। कृष्ण धोखा भी दे सकते हैं, यह गांधी का मन स्वीकार नहीं करेगा। और अगर कृष्ण ऐसा कर सकते हैं, तो गांधी के लिए कृष्ण पूज्य न रह जाएंगे।

तो एक ही उपाय है कि गांधी किसी तरह समझा लें कि कृष्ण ने ऐसा किया नहीं है। या तो यह कहानी है, प्रतीकात्मक है, सिंबालिक है। यह जो युद्ध है महाभारत का, यह वास्तविक युद्ध नहीं है गांधी के हिसाब से। ये कौरव और पांडव असली मनुष्य नहीं हैं, जीवित मनुष्य नहीं हैं, ये सिर्फ प्रतीक हैं बुराई और भलाई के। और युद्ध धर्म और अधर्म के बीच है, मनुष्यों के बीच नहीं। पूरी कथा है, एक पैरेबल है, तब फिर गांधी को अड़चन नहीं है। बुराई को मारने में अड़चन नहीं है, बुरे आदमी को मारने में गांधी को अड़चन है। अगर सिर्फ बुराई को काटना हो, तो कोई हर्जा नहीं है।

लेकिन अगर बुराई को ही काटना होता, तो अर्जुन को भी कोई सवाल उठने का कारण नहीं था। सवाल तो इसलिए उठ रहा था कि बुरे आदमी को काटना है। सवाल तो इसलिए उठ रहा था कि उस तरफ जो बुरे लोग हैं, वे अपने ही हैं, निजी संबंधी हैं। उनसे ममत्व है, उनसे राग है, और उनके बिना दुनिया अधूरी और बेमानी हो जाएगी।

कृष्ण का व्यक्तित्व असंगत होगा ही। तीन गुण एक साथ हैं, असंगति पैदा करेंगे।

एक और संभावना है, जिसका प्रयोग मैंने किया है। उसमें भी असंगति होगी, लेकिन वैसी नहीं जैसी कृष्ण में है।

तीनों गुण व्यक्ति में हैं। और व्यक्तित्व की पूर्णता तभी होगी, जब तीनों गुण अभिव्यक्ति में उपयोग में ले लिए जाएं, उनमें से कोई भी दबाया न जाए। कृष्ण भी दमन के पक्ष में नहीं हैं, मैं भी दमन के पक्ष में नहीं हूं। और जो भी व्यक्तित्व में है, उसका सृजनात्मक उपयोग हो जाना चाहिए।

मेरी प्रक्रिया तीनों गुणों को एक साथ अभिव्यक्ति के लिए न चुनकर तीन अलग—अलग काल—खंडों में एक—एक गुण को अभिव्यक्ति के लिए चुनना है! पहले मैंने तमस को चुना, क्योंकि वही आधारभूत है, बुनियाद में है।

बच्चा पैदा होता है मां के गर्भ से, तो नौ महीने मां के गर्भ में बच्चा तमस में होता है, गहन अंधकार में होता है। कोई क्रिया नहीं होती, परम आलस्य होता है। श्वास लेने तक की क्रिया बच्चा स्वयं नहीं करता, वह भी मां ही करती है। भोजन लेने की—बच्चे में खून भी प्रवाहित होता है, तो वह भी मां का ही खून रूपांतरित होता रहता है। बच्चा अपनी तरफ से कुछ भी नहीं करता है।

अक्रिया की ऐसी अवस्था परिपूर्ण तमस की अवस्था है। बच्चा है, प्राण है, जीवन है, लेकिन जीवन किसी तरह का कर्म नहीं कर रहा है। गर्भ की अवस्था में अकर्म पूरा है।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि मोक्ष की तलाश, स्वर्ग की आकांक्षा, निर्वाण की खोज, सिर्फ इसीलिए पैदा होती है कि हर व्यक्ति ने अपने गर्भ के क्षण में एक ऐसा अक्रिया से भरा हुआ क्षण जाना है, इतना शून्यता से भरा हुआ अनुभव किया है। वह स्मृति में टंगा हुआ है, वह आपके गहरे में छिपा है वह अनुभव जो नौ महीने गर्भ में हुआ। वह इतना सुखद था,

क्योंकि जब कुछ भी न करना पड़ता हो, कोई दायित्व न हो, कोई जिम्मेवारी न हो, कोई बोझ न हो, कोई चिंता न हो, कोई काम न हो, सिर्फ आप थे, जस्ट बीइंग, सिर्फ होना मात्र था! जिसको हम मोक्ष कहते हैं, वैसी ही करीब—करीब अवस्था मां के गर्भ में थी। वही अनुभूति आपके भीतर छिपी है।

इसलिए जीवन में आपको कहीं भी सुख नहीं मिलता और हर जगह आपको कमी मालूम पड़ती है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि यह तभी हो सकता है, जब आपके अनुभव में कोई ऐसा बड़ा सुख रहा हो, जिससे आप तुलना कर सकें।

हर आदमी कहता है, जीवन में दुख है। सुख का आपको अनुभव न हो, तो दुख की आपको प्रतीति कैसे होगी? और हर आदमी कहता है कि कोई सुख की खोज करनी है। किस सुख की खोज कर रहे हैं? जिसका कभी स्वाद न लिया हो, उसकी खोज भी कैसे करिएगा? और जिससे हमारा कोई परिचय नहीं है, उसकी हम जिज्ञासा कैसे करेंगे?

हमारे अचेतन में जरूर कोई अनुभव की किरण है, कोई बीज है छिपा हुआ है, कोई आनंद हमने जाना है, कोई स्वर्ग हमने जीया है, कोई संगीत हमने सुना है। कितना ही विस्मृत हो गया हो, लेकिन हमारे रोएं—रोएं में वह प्यास छिपी है, और वह खबर छिपी है, हम उसकी ही खोज कर रहे हैं।

मनोविज्ञान कहता है, मोक्ष की खोज एक विराट गर्भ की खोज है। और जब तक यह सारा अस्तित्व हमारा गर्भ न बन जाएगा, तब तक यह खोज जारी रहेगी।

यह बात बड़ी कीमती है, बहुत अर्थपूर्ण है। लेकिन इस संबंध में पहली बात समझ लेनी जरूरी है कि बच्चा नौ महीने अपने मां के गर्भ में ठीक तमस में पड़ा है। वहां न तो राजसी होने का सवाल है, न सात्विक होने का सवाल है, गहन तम में पड़ा है. गहन आलस्य है। बस सोया है, चौबीस घंटे सो रहा है। नौ महीने की लंबी नींद है।

फिर जैसे ही बच्चा पैदा होता है, तो फिर बाईस घंटे सोएगा, फिर बीस घंटे, फिर अठारह घंटे, धीरे— धीरे जागेगा। वर्षों लग जाएंगे, तब वह आकर आठ घंटे की नींद पर ठहरेगा। और जन्मों लग जाएंगे, जब नींद बिलकुल शून्य हो जाएगी, और वह परिपूर्ण जागरूक हो जाएगा कि निद्रा में भी जागता रहे। जिसको कृष्ण कहते हैं, जब सभी सोते हैं, तब भी योगी जागता है। इसके लिए जन्मों की यात्रा होगी।

तमस आधार है और सत्व शिखर है। इस भवन का जिसे हम जीवन कहें, तमस बुनियाद है, रजोगुण बीच का भवन है और सत्वगुण मंदिर का शिखर है।

यह जीवन की व्यवस्था है मेरी दृष्टि में। इसलिए मैंने जीवन के पहले खंड को तमस की ही साधना बनाया। जीवन के मेरे प्राथमिक वर्ष ठीक लाओत्से की रसानुभूति में ही बीते। इसलिए लाओत्से से मेरा लगाव बुनियादी है, आधारभूत है। सब भांति मैं आलस्य में था और आलस्य ही साधना थी। जहां तक बने कुछ न करना। करना मजबूरी हन्ईहो, तो उतना ही करना, जितना अपरिहार्य हो जाए। अकारण हाथ भी न हिलाना, पैर भी न चलाना।

मेरे घर में ही ऐसी हालत हो गई थी कि मैं बैठा हूं और मेरी मां मेरे सामने ही बैठकर कहती, कोई दिखाई नहीं पड़ता, किसी को सब्जी लेने बाजार भेजना है! मैं सुन रहा हूं मैं सामने ही बैठा हूं। और मैं जानता था, घर में आग भी लग जाती, तो भी वह यही कहती, यहां कोई दिखाई नहीं पड़ता; घर में आग लग गई, कौन बुझाए! पर चुपचाप अपनी निक्तियता को देखना, सिर्फ उसके प्रति साक्षी और ध्यान से भरे रहना। कुछ घटनाओं से आपको कहूं तो खयाल में आ जाए।

मेरे विश्वविद्यालय में आखिरी वर्ष में एक दर्शनशास्त्र के आचार्य थे। और जैसा कि दार्शनिक अक्सर झक्की और एक्सेंट्रिक होते हैं, वे भी थे। और उनका जो झक्कीपन था, वह यह था कि वे स्त्री को नहीं देखते थे। दुर्भाग्य से, मैं और एक युवती, दो ही उनके विद्यार्थी थे उनके विषय में। तो उनको आंख बंद करके ही पढ़ाना पड़ता था। मेरे लिए यह सौभाग्य हो गया, क्योंकि वे पढ़ाते थे और मैं सोता था। वे आंख खोल नहीं सकते थे, क्योंकि युवती थी।

लेकिन वे मुझ पर बहुत प्रसन्न थे, क्योंकि वे सोचते थे कि मेरा भी शायद यही सिद्धात है, युवती को मैं भी नहीं देखता। और यूनिवर्सिटी में कम से कम उन जैसा एक आदमी और भी है, जो स्त्रियों की तरफ आंख बंद रखता है। इससे वे बड़े प्रसन्न थे। वे कई बार मुझे कहे भी, जब कभी अकेले में मिल जाते, तो वे मुझे कहते कि तुम अकेले हो, जो मुझे समझ सकते हो।

लेकिन एक दिन सब गड़बड़ हो गया।

दूसरी उनकी आदत थी कि एक घंटे का नियम वे नहीं मानते थे। इसलिए उनको अंतिम पीरियड ही यूनिवर्सिटी देती थी लेने के लिए। क्योंकि चालीस मिनट के बाद वे कहते थे, शुरू करना मेरे बस में है, अंत करना मेरे बस में नहीं है। तो साठ मिनट में पूरा हो, अस्सी मिनट में पूरा हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। तो घंटा बजे, उससे मैं बंद नहीं करूंगा, जब मेरी बात पूरी हो जाए, तभी बंद करूंगा। तो करीब अस्सी मिनट, नब्बे मिनट बोलते थे, मैं सोता था। और युवती को कह रखा था कि जब घंटा पूरा होने लगे, तो मुझे इशारा करे। वह कृपा करके इतनी व्यवस्था कर देती थी कि इशारा कर देती, मैं उठ जाता।

एक दिन उसे बीच में जाना पड़ा; कोई बुलावा आ गया, कुछ कारण आ गया, वह बीच से चली गई। मैं सोया रहा, वे बोलते रहे। घंटा पूरा हो गया, उन्होंने आंख खोली, मैं सोया था। उन्होंने मुझे हिलाया और जगाया। बोले कि नींद लग गई? मैंने कहा, अब आपको पता ही चल गया, तो मैं कह दूं। मैं रोज ही सो रहा हूं। मुझे स्त्रियों से कोई ऐतराज नहीं है। और यह बड़ा सुखद है, डेढ़ घंटे आप बोलते हैं, मैं सो लेता हूं।

सोना मैंने करीब—करीब ध्यान बना रखा था। जितना ज्यादा सो सकूं? उतना ज्यादा सोता था।

एक बड़े मजे की बात है कि अगर आप जरूरत से ज्यादा सोए, तो सोने में जागरण निर्मित होने लगता है। अगर आप जरूरत से कम सोए, तो नींद एक मूर्च्छा होगी। अगर आप जरूरत से ज्यादा सोए, तो सो तो नहीं सकते। शरीर की जरूरत पूरी हो जाती है।

धीरे— धीरे शरीर की कोई जरूरत नहीं रह जाती और आप सोए हुए हैं, तो भीतर कोई जागकर देखने लगता है।

अगर आप छत्तीस घंटे पड़े हुए सोए रहें, तो आपको थोड़ी—सी झलक मिलेगी उस बात की, जिसको कृष्ण कह रहे हैं, तस्याम जागर्ति संयमी। क्योंकि नींद की कोई शरीर को जरूरत न रह जाएगी। और शरीर को आप नींद की अवस्था में पड़ा रहने दें। तो भीतर से जागरण का स्वर शुरू हो जाएगा।

उन दिनों में ही निरंतर सो—सोकर मैंने जाना कि सोए में जागना हो सकता है। रात भी सोता, सुबह भी सोता, दोपहर भी सो जाता, जब मौका मिलता। घर के लोगों को, प्रियजनों को, परिवार के लोगों को यही खयाल था कि मैं निपट आलसी हूं मुझसे जीवन में कुछ हो नहीं सकता। एक हिसाब से वह ठीक ही था उनका खयाल। मेरी तरफ से नींद मेरे लिए साधना थी।

मेरे एक और प्रोफेसर थे। मेरे प्रोफेसर भी थे, मेरे मित्र भी थे। और जैसा आलसी मैं था, ठीक वैसे ही आलसी थे। अकेले वे भी रहते थे, अकेला मैं भी रहता था। उन्होंने कहा, बेहतर होगा, हम दोनों साथ ही रहें। मैंने कहा, इसमें थोड़ी अड़चन होगी। हो सकता है, आपकी नींद में मेरे कारण बाधा हो, मेरी नींद में आपके कारण बाधा हो। फिर भी आप चाहें तो.। पर साथ रहने में कुछ व्यवस्था बनानी जरूरी थी और दोनों ही आलसी थे। वे अब भी वैसे ही हैं; उन्होंने उस गुण का त्याग नहीं किया। उन्होंने कभी उसे साधना भी नहीं बनाया, अन्यथा वह छूट जाता।

ध्यान रहे, जिस तत्व को भी आप साधना बना लें, थोड़े दिन में उसके पार आप चले ही जाएंगे। साधना का मतलब ही ट्रासेंडेंस है, अतिक्रमण है। और जिसको भी आप पूरी तरह भोग लें, आप उसके भीतर नहीं रह सकते। अगर आप आलस्य को भी पूरी तरह भोग लें, आप अचानक पाएंगे कि आलस्य विदा हो गया। जिससे मुक्त होना हो, उसे पूरा भोग लेना जरूरी है।

इसलिए मैंने तमस को पहले पूरा ही भोग लेना उचित समझा। साथ रहे, तो पहले ही दिन रात हमें तय करना पड़ा कि कल से हमारी व्यवस्था कैसी होगी। अबू तक अलग—अलग थे, इसलिए व्यवस्था का कोई सवाल नहीं था। उन्होंने कहा कि जो व्यक्ति पहले सुबह उठे, वह दूध लेने जाए। मैंने कहा, यह बिलकुल स्वीकार है। मैं भी खुश था, वे भी खुश थे। दोनों भांति में थे। तो मैंने सोचा कि ऐसा सुबह पहले उठने की जरूरत क्या है! और वे भी यही सोच रहे थे।

नौ बजे के करीब मेरी नींद खुली, तो मैंने देखा, वे सोए हैं, तो मैं फिर सो गया। दस बजे के करीब उनकी नींद खुली होगी, उन्होंने देखा कि मैं सोया हूं। वे भी सोना चाहे, लेकिन एक अड़चन थी, उनको ग्यारह बजे यूनिवर्सिटी तो पहुंचना ही था, वे नौकरी में थे। मैं तो विद्यार्थी था, मुझे जाने की कोई आवश्यकता भी न थी, जरूरी भी नहीं था। ऐसे भी मैं कम ही जाता था।

आखिर मजबूरी में उनको उठना पड़ा; दूध लेने जाना पड़ा। जब तक वे आए, तब तक मैं उठकर बैठा था। उन्होंने कहा कि यह दोस्ती नहीं चल सकती, क्योंकि यह तो रोज का सवाल है। मुझे ग्यारह बजे यूनिवर्सिटी जाना ही है। तो मैं ज्यादा से ज्यादा दस बजे तक प्रतीक्षा कर सकता हूं। तुम पूरे दिन प्रतीक्षा कर सकते हो। इसका मतलब हुआ कि दूध मुझे रोज ही लाना पड़ेगा; यह दोस्ती नहीं चल सकती।

जिस बात को भी करने से बचा जा सके, मैंने प्राथमिक चरण में पूरी तरह बचने की कोशिश की। दो वर्ष मैं विश्वविद्यालय में था, मैंने कभी अपना कमरा नहीं झाड़ा। अपने पलंग को दरवाजे पर रख छोड़ा था, जिससे सीधा दरवाजे से पलंग पर प्रवेश करूं और सीधे बाहर निकल जाऊं। और अकारण पूरे कमरे को क्यों! न उसमें प्रवेश करना, न उसको साफ करने का कोई सवाल था। पर उसका अपना सुख था।

और चीजें जैसी हैं, उनमें जितना कम रद्दोबदल करना पड़े क्योंकि रद्दोबदल का मतलब होता है, कुछ करना पड़ेगा। उनको वैसे ही रहने देना। पर इससे अनूठे अनुभव भी हुए। और हर गुण का अनूठा अनुभव है। कितना ही कचरा था और कितनी ही गंदगी थी, उसके बीच ऐसे ही रहने का भाव आ गया जैसे कितनी ही स्वच्छता के बीच रहने की स्थिति हो।

जिस विश्वविद्यालय में मैं था, उसके भवन तब तक निर्मित नहीं हुए थे। नया विश्वविद्यालय निर्मित हुआ था और मिलिट्री के बैरेक्स का ही उपयोग हास्टल्स के लिए हो रहा था। तो अक्सर सांप आ जाते थे, क्योंकि घने जंगल में ही, खुले जंगल में बैरेक्स थे। तो मैं पड़ा हुआ अपने बिस्तर पर उनको देखता रहता था। वे आ जाते, बैठ जाते, कमरे में विश्राम कर लेते। न कभी उन्होंने कुछ किया, न मैंने कभी उनके लिए कुछ किया।

करने का भाव ही न हो, तो बहुत—सी चीजें सहज स्वीकार हो जाती हैं। और करने का भाव न हो, तो जिंदगी में असंतोष की मात्रा एकदम नीचे गिरने लगती है। उन दिनों में कोई असंतोष का कारण नहीं था। क्योंकि जब आप कुछ कर ही न रहे हों, तो आपकी कोई मांग नहीं रह जाती। और जब आप कुछ कर ही न रहे हों, तो फल का कोई सवाल नहीं है। जब आप कुछ कर ही न रहे हों, तो जो भी मिल जाए.।

तो कभी—कभी कोई मित्र दया करके कमरे को साफ कर जाता, तो मैं बड़ा अनुगृहीत होता था। मेरे अध्यक्ष विभाग के, परीक्षा के समय सुबह स्वयं उठकर सात बजे मेरे दरवाजे पर गाड़ी लेकर खड़े हो जाते थे कि मुझे आठ—दस दिन जब तक परीक्षा चले, मुझे हाल में वे छोड़ दें, क्योंकि मैं सोया न रह जाऊं।

सबकी दया और करुणा अनायास मिलती थी। क्योंकि सभी को खयाल था कि जिस बात को भी करने से बचा जा सके, मैं बचूंगा। बड़ी आश्चर्य की घटनाएं घटती थीं। वह इसलिए कह रहा हूं कि आपको खयाल आ सके कि जिंदगी बहुत रहस्यपूर्ण है।

प्रोफेसर्स परीक्षा के पहले मुझे आकर कह जाते कि यह प्रश्न जरूर देख लेना। मैं कभी किसी से पूछने नहीं गया। उनके बताने पर भी उनको भरोसा नहीं था कि मैं देखूंगा। वे मेरी तरफ ऐसे देखते कि समझ में आया? इसको जरूर ही देख लेना। इसका आना पक्का है। जाते—जाते वे मुझको कह जाते, यह पेपर मैंने ही निकाला है, इसे बिलकुल

देख ही लेना। इसमें कोई शक—सुबहा ही नहीं है, यह आएगा ही। फिर भी उन्हें मैं कभी भरोसा नहीं दिला सका कि उनको भरोसा आ जाए कि मैं देखूंगा।

मैं यह कह रहा हूं कि अगर आप जगत से छीनने—झपटने जाएं, तो हर जगह प्रतिरोध है। और अगर आप कुछ न करने की हालत में हों, तो सब द्वार आपको देने को खुल जाते हैं।

उन दिनों बिस्तर पर पडे रहना, ऊपर सीलिंग में देखते रहना, वैकेंट, खाली। बहुत बाद में मुझे पता चला कि मेहर बाबा की साधना वही थी। मुझे तो यह अनायास हुआ। क्योंकि बिस्तर पर पड़े —पड़े करना भी क्या? अगर नींद जा चुकी हो, तो पड़े रहना, सीलिंग को देखते रहना। अगर आप चुपचाप बिना पलक झपाए...... और पलक नहीं झपाना, यह कोई साधना नहीं थी। वह भी जैसे कर्म का हिस्सा है, क्यों झपाना! पड़े रहना। वह भी जैसे आलस्य का हिस्सा है कि पलक भी क्यों झपाना! पड़े रहना। रोकने का कृत्य नहीं था। जहां तक बने कुछ न करना।

अगर आप अपने मकान की सीलिंग को ही देखते हुए पड़े रहें घंटे, दो घंटे, आप पाएंगे, चित्त इतना आकाश जैसा कोरा हो जाता है, शून्य हो जाता है।

अगर आलस्य को कोई साधना बना ले, तो शून्य की अनुभूति बड़ी सहज हो जाती है।

उन दिनों में न मैं ईश्वर को मानता था, न आत्मा को। न मानने का कारण कुल इतना था कि इन्हें मानने से फिर कुछ करना पड़ेगा। आलसी के लिए अनीश्वरवाद संगत है। क्योंकि अगर ईश्वर है, तो काम शुरू हो गया। फिर कुछ करना पड़ेगा। अगर आत्मा है, तो कुछ करना पड़ेगा।

लेकिन कुछ न करते हुए, बिना ईश्वर और आत्मा को मानते हुए, उस चुपचाप पड़े रहने में ही उस सब की झलक मिलनी शुरू हो गई, जिसको हम आत्मा कहें, ईश्वर कहें। और मैने तब तक तमस को नहीं छोड़ा, जब तक तमस ने मुझे नहीं छोड दिया। तब तक मैंने तय किया था कि चलता रहूंगा ऐसा ही, बिना कुछ किए।

मेरी अपनी समझ यह है कि अगर आप तमस को ठीक से जी लें, तो उसके बाद रजोगुण अपने आप पैदा हो जाएगा। क्योंकि वह दूसरा गुण है, जो आपकी दूसरी मंजिल में छिपा हुआ है। पहली मंजिल पूरी हो गई; आप सीढ़ियां पार कर आए, रजोगुण शुरू हो जाएगा। आपमें सक्रियता का उदय होगा।

लेकिन यह सक्रियता बहुत अनूठी होगी। यह सक्रियता राजनीतिज्ञ की विक्षिप्तता नहीं होगी। अगर आलस्य को आपने साधना बनाया हो और आलस्य आपका शून्यता में जाने का द्वार बना हो, तो यह सक्रियता वासना की सक्रियता नहीं हो सकती, करुणा की ही हो सकती है। यह सक्रियता अब बांटने का एक कम होगी।

तो उस सक्रियता को भी मैंने पूरी तरह जी लिया। बीच में कुछ बाधा डालना मेरी वृत्ति नहीं है। जो भी हो रहा हो, उसे होने देना। और ऐसे अगर कोई होने दे, तो बहुत जल्दी गुणातीत हो जाएगा।

क्योंकि तब स्वयं करने वाला नहीं रह जाता, गुण ही करने वाले रह जाते हैं। वह आलस्य का गुण था, जिसने अपने को पूरा कर लिया।

फिर रजोगुण था। तो मैं दौड़ता रहा मुल्क में। जितनी यात्रा मैंने दस—पंद्रह साल में की, दों—तीन जीवन में भी एक आदमी नहीं कर सकता। जितना उन दस—पंद्रह सालों में बोला, उतने के लिए दस—पंद्रह जीवन चाहिए। सुबह से लेकर रात तक चल ही रहा था, बोल ही रहा था, सफर ही कर रहा था।

जरूरत, गैर—जरूरत विवाद और उपद्रव भी खड़े कर रहा था। क्योंकि जितने वे विवाद खड़े हो जाएं, उतना मेरे रजोगुण को निकल जाने की सुविधा थी। तो गांधी की आलोचना हाथ में ले ली, या समाजवाद की आलोचना हाथ में ले ली। उनसे मेरा कोई संबंध नहीं था। राजनीति से मेरा कोई भी लगाव नहीं है; रत्तीभर भी मुझे कोई रस नहीं है।

लेकिन जब सारा मुल्क एक विक्षिप्तता में पड़ा हो, सारी मनुष्यता, और अगर आपको भी दौड़ना हो उस मनुष्यता के बीच, तो खेल के लिए ही सही, आपको कुछ उपद्रव अपने आस—पास निर्मित कर लेने चाहिए, कुछ विवाद खड़े कर लेने चाहिए। तो उस रजोगुण की यात्रा में ढेर विवाद खड़े हुए, और मैंने उनका काफी सुख लिया।

अगर कर्म की विक्षिप्तता से वे पैदा होते, तो उनसे दुख पैदा होता। लेकिन सिर्फ रजोगुण के निकास की भांति, अभिव्यक्ति की भांति वे थे, तो उन सबमें खेल था और रस था। वे विवाद एक अभिनय से ज्यादा नहीं थे।

पंजाब में पंजाब के एक बड़े वेदांती थे, हरिगिरी जी महाराज। उनसे वेदांत पर एक बड़ा विवाद हुआ। मेरे लिए एक खेल था, उनके लिए गंभीरता थी। क्योंकि उनके सिद्धात का सवाल था। वे करीब—करीब विक्षिप्त हो जाते थे।

पुरी के शंकराचार्य से पटना में विवाद हो गया। मेरे लिए खेल था, उनके लिए पूरे व्यवसाय का सवाल था। वे इतने विक्षिप्त हो गए, इतने क्रोध में आ गए कि मंच से गिरते—गिरते बचे। सारा शरीर कंपित हो गया।

पर रजोगुण को पूरा निकल जाने देना जरूरी है। बहुत मित्रों ने मुझे रोकना चाहा, पर मैं अपनी तरफ से नहीं रुकना चाहता था। रजोगुण ही झर जाए, उसकी निर्जरा हो जाए, तो ही रुकूंगा।

महीने में तीन सप्ताह मैं ट्रेन में ही बैठा हुआ था। सुबह बंबई था, तो रात कलकत्ता था, तो दूसरे दिन अमृतसर था, तो चौथे दिन लुधियाना था, दिल्ली था। पूरा मुल्क जैसे एक भ्रमण के लिए क्षेत्र था। और जगह—जगह उपद्रव स्वाभाविक थे, क्योंकि जब आप कर्म करेंगे, तब उपद्रव बिलकुल स्वाभाविक है। क्योंकि कर्म के प्रतिकर्म पैदा होते हैं, किया से प्रतिक्रिया जन्मती है।

आलस्य के दिनों में मैं बोलता नहीं था, या न के बराबर बोलता था। कोई बहुत पूछे, तो थोड़ा बोलता था। रजोगुण के दिनों में कोई न भी पूछे, तो बोलता था। लोगों को ढूंढकर बोलता था; और बोलने में एक आग थी। मेरे पास अब भी लोग आते हैं, वे कहते हैं, अब आप वैसा नहीं बोलते कि दिल थर्रा जाता था। एक जोश, अंगार था।

वह अंगार मेरा नहीं था। वह उस गुण का था, जिसकी हम चर्चा कर रहे हैं। वह रजोगुण को जलाने का एक ही उपाय था, कि वह भभक कर जले। वह पूरा का पूरा अंगारा बन जाए, तो जल्दी राख हो जाएगा। जितने धीरे— धीरे जलेगा, उतना समय लेगा। इकट्ठा जल जाए, पूर्णता से जले, तो जल्दी राख हो जाएगा।

अब वह जल चुका है। और अब जैसे साझ को सूरज सिकोड़ ले अपनी सारी किरणों को और जैसे सांझ को मछुआ अपने जाल को निकाल ले, ऐसे मैं सब सिकोड़ लूंगा। सिकोड़ लूंगा, कहना ठीक नहीं है। ऐसा सब सिकुड़ जाएगा। क्योंकि तीसरा तत्व शुरू होगा। इसलिए आप देख भी रहे हैं कि मैं धीरे— धीरे सब हाथ हटाता जा रहा हूं। आपकी जगह पचास हजार लोग सुन सकते थे, लेकिन मैं राजी हूं कि पचास लोग सुनें। पचास से पांच पर राजी हो जाऊंगा। बोलने से न बोलने पर राजी हो जाऊंगा।

तो जैसे—जैसे रजोगुण पूरा फिंक जाता है और सत्य की प्रक्रिया शुरू होती है, वैसे—वैसे सभी क्रियाएं फिर शून्य हो जाएंगी।

तमोगुण में भी सारी क्रियाएं शून्य होती हैं। लेकिन वह शून्यता निद्रा जैसी होती है। सत्वगुण में भी सारी क्रियाएं शून्य हो जाती हैं। लेकिन वह शून्यता जागरूकता जैसी होती है। तमस और सत्य में एक समानता है कि दोनों शून्य होंगे। तमस का रूप निद्रा जैसा होगा; सत्य का रूप जागरण जैसा होगा।

और इसी को मैं जीवन की ठीक प्रक्रिया मानता हूं कि जीवन का प्रथम चरण तमस में गुजरे, द्रितीय चरण रज में गुजरे, तृतीय चरण सत्व में गुजरे। और तीनों चरण में आप अपने को अलग रखने की कोशिश में लगे रहें, तो आप साधना में हैं। और तीनों चरणों में आप जानते रहें कि यह मैं नहीं कर रहा हूं ये गुण कर रहे हैं। यह मुझसे नहीं हो रहा है; मैं सिर्फ देखने वाला हूं मैं सिर्फ साक्षी हूं। जब आलस्य हो तब भी, जब कर्म हो तब भी, जब सत्य हो तब भी। मैं

सिर्फ देखने वाला हूं मैं मात्र द्रष्टा हूं। ऐसी प्रतीति बनी रहे, तो तीनों गुण चुक जाएंगे अपने से और आप गुणातीत में ठहर जाएंगे।

पहुंचना है चौथे में, तीनों के पार। जिसको चौथा कहना ठीक नहीं; जहां। कोई भी नहीं है, जहां तीनों नहीं हैं।

कृष्ण ने तीनों को इकट्ठा व्यक्त किया है। मैंने तीनों को अलग—अलग एक—एक परिधि में बांटकर उपयोग किया है। इसलिए मेरी बातों में भी असंगति मिलेगी। जो मैंने तमस के क्षणों में कहा है और जीया है, वह मेरे रजस के क्षणों से उसका कोई मेल नहीं बैठेगा। और जो मैंने रजस के क्षणों में कहा है, वह मेरे सत्व के क्षणों में कही गई बातों से उसका बहुत विरोध हो जाएगा।

इसलिए जब कोई मेरे पूरे विचार पर सोचने बैठेगा, तो उसे तीन हिस्सों में तोड़ देना पड़ेगा। और तीनों के बीच बड़े विरोध होंगे। होना ही चाहिए। क्योंकि तीन अलग गुणों के माध्यम से वे बातें प्रकट हुई हैं। और तीनों के बीच संगति असंभव होगी।

अगर मेरे व्यक्तित्व में संगति खोजनी हो, तो वह चौथे में मिलेगी, वह जो गुणातीत है। इन तीन में संगति नहीं मिल सकेगी। इन तीनों के पीछे जो छिपा साक्षी— भाव है, उसमें ही संगति मिल सकती है।

प्रश्न :
सात्विक कर्म का फल सुख, ज्ञान एवं कहा है। रजस एवं तमस कर्म का फल दुख और अज्ञान कहा है। यदि रजस और तमस गुणों को साधना का आधार बनाया जाए, तो उनके फलों में क्या भिन्नता आ जाएगी?
फलों में तो कोई भिन्नता न आएगी। फल— भोक्ता में भिन्नता आएगी। फल तो वही होंगे। अगर सात्विक कर्म का फल सुख है, तो सुख ही होगा, चाहे आप जागरूक हों और न हों। अगर जागरूक होंगे, तो आप जानेंगे कि सुख मुझ से दूर और अलग है, मेरे आस—पास है। मैं सुख नहीं हूं मैं सुख को देखने वाला हूं।

चाहे रजस का फल हो दुख, फल तो वही होगा। संत को भी वही फल होगा, असंत को भी वही फल होगा। लेकिन असंत समझेगा कि मैं दुख हूं और संत समझेगा कि मैं दुख का द्रष्टा हूं। वहां भेद होगा।

इसलिए बड़े मजे की बात है। दुख का फल तो बराबर होगा, लेकिन संत दुखी नहीं हो पाएगा और असंत दुखी होगा। और दुख दोनों को होगा। जो दुख के साथ जुड़ जाएगा, तादात्म्य कर लेगा, आइडेंटिटी बना लेगा, वह दुखी होगा।

जैसे आपका कपड़ा कोई छीन ले। और आप अगर सोचते हों कि कपड़ा ही मैं हूं तो कपड़े के साथ आपकी आत्मा जा रही है। और आप सोचते हों कि कपड़ा सिर्फ मेरे ऊपर है, कोई ले भी गया, तो कपड़ा ही ले गया है, मैं नहीं चला गया हूं। कपड़ा दोनों हालत में चला जाएगा। लेकिन एक हालत में आपको गहन पीड़ा से भर जाएगा, दूसरी हालत में आप हंसते रह जाएंगे।

शरीर तो दोनों का छूटेगा। लेकिन जिसने अपने को शरीर ही समझा हो, वह रोएगा, छाती पीटेगा। और जिसने जाना हो कि मैं शरीर का देखने वाला हूं शरीर से भिन्न और अलग हूं, वह शरीर को जाते हुए देखेगा, जैसे एक और वस्त्र छिन गया, जराजीर्ण हो गया था, नए वस्त्र की खोज में पुराने को छोड़ दिया।

तीनों के फल होंगे। लेकिन साधक के लिए, जो उन तीनों के प्रति जागरूकता साध रहा है....।

और जागरूकता तो सभी को साधनी पड़ेगी, चाहे आप किसी गुण में हों। चाहे आपके हाथ पर जंजीरें लोहे की हों, चाहे आपके हाथ पर जंजीरें सोने की हों, चाहे आपके हाथ पर जंजीरें हीरे से मढ़ी हों, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। जंजीर खोलने की कला तो एक ही होगी। वह सोने की है कि लोहे की, इससे कोई भेद नहीं पड़ता। आपके चारों तरफ दुख बंधा है कि सुख, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। खोलने की कुंजी तो एक ही है, और वह कुंजी है, साक्षी—भाव। चाहे दुख हो तो, चाहे सुख हो तो, आपको अपने को दूर खड़े होकर देखने की कला में निष्णात करना है।

अभ्यास एक है, कि मैं अलग हूं। कुछ भी घट रहा हो, वह घटना अ ब स कुछ भी हो, उस घटना से मैं दूर खड़ा देख रहा हूं। मैं दर्शक हूं।

तीसरा प्रश्न :
कल आपने समझाया कि सात्विक कर्मों का परिणाम है, सहज वैराग्य। जो व्यक्ति रजस या तमस के माध्यम से साधना कर रहा है, क्या उसका भी वैराग्य सहज ही होगा? क्या वैराग्य के प्रकटीकरण में भी भिन्नता आ जाएगी?
नहीं, वैराग्य हमेशा सहज होगा। सहज का मतलब समझ लें।

वैराग्य को ओढ़ा नहीं जा सकता, जबरदस्ती थोपा नहीं जा सकता। वैराग्य जब भी होगा, सहज होगा। और अगर सहज न हो, तो वह वैराग्य सिर्फ ऊपर—ऊपर होगा, भीतर उसके राग होगा। नाम वैराग्य होगा, लेकिन नए ढंग का राग होगा।

आप एक चीज को छोड़ सकते हैं दूसरी चीज को पकड़ने के लिए। लेकिन यह वैराग्य नहीं है। वैराग्य का मतलब है, छोड़ना, बिना किसी को पकड़ने के लिए। सिर्फ मुट्ठी को खुला छोड़ देना है।

साधु—संत लोगों को समझाते हैं—तथाकथित साधु—संत—कि तुम यहां छोड़ो, तो परलोक में पाओगे। उनकी बातें सुनकर अगर कोई यहां छोड़ दे, तो वह छोड नहीं रहा है। वह सिर्फ परलोक में पकड रहा है। उसका वैराग्य झूठा है, ओढ़ा हुआ है। राग ही काम कर रहा है। और वह मन ही मन में बड़ा प्रसन्न हो रहा है कि मैंने यहां धन दिया, तो हजार गुना परलोक में मुझे मिलेगा। वह सौदा कर रहा है, त्याग नहीं कर रहा। वह इनवेस्टमेंट कर रहा है। वह आगे की तैयारी कर रहा है। वह यहीं से आगे के लिए भी धन जोड़ रहा है।

और साधु समझाते हैं कि धन को इकट्ठा करके क्या करोगे? पुण्य इकट्ठा करो। क्योंकि धन तो छिन जाएगा; पुण्य कभी नहीं छिनेगा। लोभी उनकी बातों में आ जाएंगे। क्योंकि लोभी ऐसा ही धन खोज रहा है, जो छिन न सके। यह भाषा लोभ की है, त्याग की भाषा नहीं है।

सहज वैराग्य का अर्थ है, आपको दिखाई पड़ेगा, धन व्यर्थ है। आप इसलिए नहीं छोड़ रहे हैं कि इससे कोई बडा धन मिल जाएगा। आप धन की पकड़ ही छोड़ रहे हैं। आप बड़े को भी नहीं चाहते हैं। आप इस संसार को इसलिए नहीं छोड़ रहे हैं कि परलोक मिल जाएगा। आप कुछ पाना ही नहीं चाहते। पाने की बात ही मूढ़तापूर्ण समझ में आ गई। यह बोध हो गया कि पाने की आकांक्षा में ही दुख है, फिर वह पाना यहां हो कि परलोक में हो। अब आप कुछ पाना नहीं चाह रहे। आप अब जो हैं, वही होने में प्रसन्न हैं, तो वैराग्य।

वैराग्य का मतलब है, मैं जहां हूं, जैसा हूं? जो हूं उसकी स्वीकृति। उससे कोई असंतोष नहीं। राग का अर्थ है, जो भी मैं हूं उससे असंतुष्ट हूं। और कुछ और हो जाऊं, तो मेरा संतोष हो सकता है।

राग का संतोष है भविष्य में, वैराग्य का संतोष है अभी और यहीं। इसलिए वैराग्य सदा सहज होगा, एक।

साधना कोई भी हो, वैराग्य सदा फल होगा। साधना चाहे तमस की हो, चाहे रजस की, चाहे सत्य की, फल सदा वैराग्य होगा। साधना का फल वैराग्य है। ध्यान का फल वैराग्य है। ज्ञान का फल वैराग्य है।

अगर आप दौड़ रहे हैं, कर्म कर रहे हैं. जैसा कि कृष्ण अर्जुन को कह रहे हैं कि तू कर्म कर, डर मत। लेकिन कर्म करने में भोक्ता मत रह, कर्ता मत रह, साक्षी हो जा।

अर्जुन को कृष्ण कह रहे हैं, तू रजस की साधना कर। क्योंकि कृष्ण जानते हैं भलीभांति कि अर्जुन का गुण है क्षत्रिय का। वह रजस उसका स्वभाव है, वह उसकी प्रमुखता है। और जीवनभर उसने रजस को साधा है, आलस्य को दबाया है। सत्य को दबाया है, रजस को उभारा है। क्योंकि क्षत्रिय अगर सत्व को उभारे, तो क्षत्रिय न हो सकेगा, ब्राह्मण हो जाएगा। अगर ब्राह्मण रजस को उभारे, तो नाम का ही ब्राह्मण रह जाएगा, क्षत्रिय हो जाएगा।

परशुराम नाम के ब्राह्मण हैं। हाथ में उनके फरसा है। और क्षत्रियों से, कथा है कि उन्होंने अनेक बार पृथ्वी को खाली कर दिया। वह महाक्षत्रिय हैं। इसलिए परशुराम में सत्व प्रमुख नहीं हो सकता, रजस ही प्रमुख होगा। परशुराम की दोस्ती बुद्ध से नहीं बैठ सकती, मोहम्मद से बैठ सकती है। जहां सक्रियता प्रमुख हो, वहां रजस ऊपर होगा।

कृष्ण भलीभांति जानते हैं अर्जुन का सारा व्यक्तित्व, सारा ढांचा रजस का है। इसलिए वे कह रहे हैं, तू भागने की बातें मत कर। यह तेरा स्वभाव नहीं है, यह तेरा स्वधर्म नहीं है। तू भाग न सकेगा। अगर तू भाग भी गया जंगल में, तो झाडू के नीचे तू बैठ न सकेगा। तू वहीं जंगल में शिकार करना शुरू कर देगा। वहीं कोई झगड़े खड़े कर लेगा। तेरे क्षत्रिय होने से तेरा छुटकारा इतना आसान नहीं है। जो तेरा व्यक्तित्व है, उसी गुण की साधना में तू उतर, यही कृष्ण का पूरा संदेश है।

इसलिए वे कह रहे हैं, तू लड़। लेकिन एक शर्त, कि तू लड़ जरूर, युद्ध जरूर कर, लेकिन योद्धा अपने को मत समझ, कर्ता अपने को मत समझ। समझ कि तू परमात्मा के हाथ एक निमित्त, एक उपकरण, एक साधन है।

चाहे साधना सत्व की हो, चाहे कोई सदगुणों को जीवन में उतारने में लगा हो, सत्य को, करुणा को, अहिंसा को साध रहा हो, सब भांति अपने आचरण को पवित्र कर रहा हो, शुचि कर रहा हो, शुद्ध कर रहा हो, वहा भी कर्ता— भाव पकड सकता है। वहां भी यह हो सकता है कि देखो, मेरे जैसा साधु कोई भी नहीं है! कि मेरी जैसी पवित्रता कहां है!

तो भूल हो गई। तो यह सत्वगुण जंजीर बन जाएगा। वहा भी जानना है कि यह जो भलापन हो रहा है, यह भी मेरे भीतर जो प्रकृति ने सत्व का गुण रखा है, उसका परिणमन है, उसका परिणाम है। मैं तो सिर्फ देखने वाला हूं। मैं देख रहा हूं कि मेरा सत्व सक्रिय हो रहा है, मेरे भीतर से करुणा बह रही है, अहिंसा बह रही है। मैं अहिंसक नहीं हूं।

मैं तो वैसे ही देख रहा हूं, जैसे हिमालय देखता होगा कि गंगा बह रही है। आकाश से पानी गिरता है, गंगोत्री भर जाती है, गंगोत्री से गंगा बहती है। हिमालय यह नहीं कह रहा है कि मैं गंगा को बहा रहा हूं। हिमालय सिर्फ देख रहा है कि गंगा मुझसे बह रही है। ऐसे ही सत्व की क्रियाएं मुझसे हो रही हैं। आकाश से वर्षा हो रही है, प्रकृति उनको दे रही है, मैं सिर्फ देखने वाला हूं।

अगर आप हिमालय की तरह खड़े हुए साक्षी हो गए, तो सत्व बंधन नहीं बनेगा, अन्यथा सत्व भी बंधन बन जाएगा। और अगर आप साक्षी हो सकें, तो फिर तमस भी बंधन नहीं बनेगा। आप तब देख सकते हैं कि आलस्य मेरा नहीं है, आलसी मैं नहीं हूं; यह भी मेरे भीतर प्रक्रिया है गुणों की।

विज्ञान इस संबंध में बड़ी महत्वपूर्ण सूचनाएं देता है। वे सूचनाएं ये हैं कि आपके भीतर जो भी हो रहा है, वह आपके शरीर के हार्मोन्स पर निर्भर है, आप पर निर्भर नहीं है। हार्मोन नया शब्द हो सकता है, लेकिन मतलब उसका भी वही है, जो गुणों का होगा।

एक स्त्री है, एक पुरुष है। आप सोचते हैं, मैं स्त्री हूं? मैं पुरुष हूं। आप गलती में हैं। स्त्री को पुरुष हार्मोन के इंजेक्शन दे दिए

जाएं, उसके शरीर का रूपांतरण हो जाएगा, वह पुरुष जैसी हो जाएगी। पुरुष को स्त्री हार्मोन के इंजेक्शन दे दिए जाएं, उसका रूपांतरण हो जाएगा। उसकी कामेंद्रिय बदलकर स्त्रैण हो जाएगी। तब आप बड़े चौकेंगे कि मैं कौन हूं फिर? क्योंकि अगर इंजेक्शन आपको स्त्री से पुरुष बना सके, पुरुष से स्त्री बना सके, तो आप कौन हैं? स्त्री हैं या पुरुष?

यही हमारी निरंतर की खोज है। और मैं मानता हूं कि विज्ञान बड़े नए आधार दे रहा है पुराने सत्यों के लिए। इसका मतलब हुआ कि आपका स्त्री होना या पुरुष होना प्रकृति के द्वारा है, आप दोनों के पार हैं। तो अगर आपकी प्रकृति बदल दी जाए, शरीर बदल दिया जाए, तो आप स्त्री हो जाएं या पुरुष हो जाएं।

आप हैरान होंगे! एक आदमी क्रोधित हो रहा है। हार्मोन देकर उसके क्रोध को सुलाया जा सकता है। वह फिर कभी क्रोधित नहीं होगा। आपके भीतर ग्रंथियां हैं, जिनका आपरेशन कर दिया जाए, तो आप लाख उपाय करें, तो क्रोध नहीं कर सकेंगे। चाहे कोई आपको पीट रहा हो, गाली दे रहा हो, अपमान कर रहा हो, आप कितना ही उठाने की कोशिश करें, भीतर क्रोध नहीं उठेगा। क्योंकि वह ग्रंथि ही नहीं है, जिससे क्रोध उठ सकता है।

पावलव ने बहुत प्रयोग किए कुत्तों के ऊपर। खूंख्वार कुत्ते, जो कि चीरकर दो कर दें अगर आप उनको जरा—सी चोट पहुंचा दें। उनकी ग्रंथियां अलग कर दीं। आपरेशन किया, ग्रंथि अलग कर दी। खूंख्वार कुत्ते बिलकुल ही निर्जीव हो गए। आप उनको मार रहे हैं, और वे पूंछ हिला रहे हैं। भौंकते भी नहीं। हमले की तो बात दूसरी, भौंकते भी नहीं। क्योंकि भौंकना भी कुछ हार्मोन पर निर्भर है। अगर वह भीतर तत्व नहीं है, तो आप भौंक भी नहीं सकते। कृष्ण और सांख्य की बड़ी गहरी खोज है कि आपके भीतर जो भी हो रहा है, वह प्रकृति से हो रहा है, गुणों से हो रहा है। आप सिर्फ साक्षी से ज्यादा नहीं हैं।

मगर जो कुत्ता भौंक रहा है, हमला कर रहा है, आप उसको समझा सकते हैं कि ये तेरे शरीर में किसी ग्रंथि के कारण हो रहा है! वह कहेगा, मैं भौंक रहा हूं, कौन कह रहा है ग्रंथि है?

आप जब क्रोध से भर गए हैं, तो आप सोच सकते हैं कि आपके शरीर के भीतर कुछ रासायनिक तत्वों का यह खेल है! आप कहेंगे, मैं क्रोधित हूं मुझे गाली दी गई है।

आपको गाली नहीं दी गई। क्योंकि अगर ग्रंथि न हो, तो भी गाली दी जाएगी, क्रोध नहीं उठेगा। ग्रंथि ने गाली पकड़ी, और ग्रंथि उत्तर दे रही है, और आप केवल शिकार हैं। आप सिर्फ विक्टिम हैं। आपको सिर्फ भ्रांति है।

एक सुंदर स्त्री दिखती है और आप उसके पीछे हो लिए। आप सोच रहे हैं, आप पीछे जा रहे हैं! कृष्ण कह रहे हैं, आप नहीं जा रहे, सिर्फ गुण पीछे जा रहे हैं। आपके भीतर के जो पुरुष हार्मोन हैं, वे आपको खींच रहे हैं स्त्री हार्मोनों की तरफ। आप चले। आपके बस के बाहर हो गया मामला। आप कहते हैं, स्त्री बहुत सुंदर है।

यह आप सब समझा रहे हैं। ये सब हार्मोन आपको समझा रहे हैं आपके भीतर कि स्त्री बहुत सुंदर है। रुकना भी चाहो, तो कैसे रुक सकते हो! लेकिन आपके हार्मोन अलग कर लिए जाएं, सुंदर से सुंदर स्त्री गुजर जाए और आप बैठे देखते रहेंगे, भीतर कुछ भाव का उदय न होगा।

स्पेन का बहुत बड़ा विचारक है, देलगाडो। उसने आदमी के शरीर, उसके हार्मोन, उसके रासायनिक तत्व, उसकी विद्‌युत प्रक्रियाओं पर बड़े गहरे प्रयोग किए। खतरनाक भी हैं प्रयोग; कीमती भी हैं। खतरा यह है कि देलगाडो कहता है कि अगर दुनिया से कोई भी चीज समाप्त करनी हो, तो धर्मों वगैरह की चिंता में पड़ने की कोई जरूरत नहीं। विज्ञान को पूरा अधिकार दो, हम खतम कर देंगे।

अगर आप सोचते हों कि मुल्क बहुत कामुक हो गया है, तो फिजूल ब्रह्मचर्य की शिक्षा दे—देकर कुछ न होगा। हम एक छोटा—छोटा यंत्र प्रत्येक शरीर में बिठाए देते हैं। बच्चा पैदा होगा, अस्पताल में ही हम उसको, उसको कभी पता भी नहीं चलेगा........।

आप जानकर हैरान होंगे कि आपकी खोपड़ी के भीतर संवेदनशीलता नहीं है। हालांकि सब कुछ अनुभव आपको खोपड़ी से होता है, लेकिन संवेदनशीलता नहीं है। आपकी खोपड़ी फाडी जाए और उसमें एक छोटा पत्थर रख दिया जाए भीतर और खोपड़ी बंद कर दी जाए, आपको बिलकुल पता नहीं चलेगा कि पत्थर भीतर है। भीतर कोई संवेदनशीलता नहीं है। पत्थर जिंदगीभर रखा रहेगा, आपको कभी पता नहीं चलेगा।

पहले महायुद्ध में यह पता चला। कुछ लोगों को गोलियां लगीं सिर में, और किसी भूल—चूक के कारण वे गोलियां नहीं निकाली जा सकीं, और उनके घाव भर गए और वे ठीक हो गए। दस साल बाद, किसी और कारण से सैनिक के सिर का आपरेशन किया गया और गोली की खोल भीतर मिली। और उसको पता ही नहीं था दस साल तक। तब पहली दफा पता चला कि भीतर कोई संवेदनशीलता नहीं है।

तो देलगाडो कहता है, हम हर बच्चे को, उसे कभी पता ही नहीं चलेगा, एक छोटा—सा यंत्र उसके सिर में लगा देंगे, अंदर रख देंगे एक रेडियो रिसीवर। सब बच्चों के सिर में वह होगा। फिर आप दिल्ली से रिले करें और सारा मुल्क वैसा व्यवहार करेगा।

तो किसी को कहने की जरूरत नहीं है कि ब्रह्मचर्य साधो। सिर्फ वहां से, दिल्ली से, ठीक सूचना देने की जरूरत है कि सब ब्रह्मचारी हो जाओ। वह आपके भीतर का जो यंत्र है, आपको तत्काल ब्रह्मचर्य की खबर देगा। आप अचानक पाएंगे कि मन में बड़ी साधुता उठ रही है। कोई रस नहीं रहा!

देलगाडो का प्रयोग मूल्यवान है, लेकिन खतरनाक भी है। क्योंकि आश्चर्य नहीं होगा कि कुछ दस—बीस—पच्चीस वर्षों के बाद सरकारें इसका उपयोग करना शुरू कर दें। क्योंकि यह तो बड़ा कीमती काम है। अगर पूरे मुल्क को युद्ध पर भेजना हो, तो भेजा जा सकता है। अगर हिंदुओं को भड़काना हो कि सारे मुसलमानों को खतम कर दो हिंदुस्तान में, तो एक दिन में खतम करवाया जा सकता है। कोई ज्यादा उपद्रव की जरूरत नहीं है। सिर्फ उनके भीतर बैठा हुआ यंत्र, उसको खबर होनी चाहिए।

देलगाडो ने स्पेन में बड़े प्रयोग किए। उसने एक सांड के सिर में यंत्र लगा रखा है। भयंकर सांड है। लाखों लोग देखने इकट्ठे हुए थे। देलगाडो अपने हाथ में घड़ी के बराबर यंत्र लगाए हुए है, जो सांड के मस्तिष्क से जुड़ा है वायरलेस से, रेडियो से।

सांड को भड़काया उसने। लाल झंडी दिखाई। सांड भागा देलगाडो की तरफ। लाखों लोग उत्सुक होकर देख रहे हैं कि खतरा है; सांड बिलकुल पास आ गया है। सिर्फ एक फीट दूर उसके सीग रह गए हैं। एक सेकेंड और कि वह देलगाडो में सीग डाल देगा, और देलगाडो खतम हो जाएगा। तब तक वह देखता रहा।

तब लोगों ने देखा, उसने घड़ी पर हाथ रखकर कोई चीज दबाई। साड वहीं के वहीं खड़ा हो गया। सिर्फ एक फीट दूर। एकदम निर्जीव हो गया! देलगाडो दूर गया पचास फीट, फिर उसने बटन दबाई, झंडी दिखाई। सांड भागा। ऐसा उसने बीस दफे करके दिखाया। एक सेकेंड पहले वह घड़ी दबाएगा, सांड वहीं के वहीं खड़ा हो गया, जैसे पत्थर हो गया।

यह सांड जरूर मन में अपना तर्क सोच रहा होगा, अगर सोच सकता होगा। यह जरूर कुछ सोच रहा होगा कि किस कारण से मैं रुक रहा हूं। सोच रहा होगा, दया खा रहा हूं, कि छोड़ो भी, जाने भी दो। ऐसा कुछ आदमी मार देने जैसा नहीं है। मगर यह कुछ भी नहीं है मामला। सिर्फ उसके भीतर इलेक्ट्रोड है। और वह इलेक्ट्रोड उसके क्रोध के यंत्र को दबा देता है, तो उसका जो रोष है, वह बैठ जाता है।

सांख्य की यह दृष्टि बड़ी प्राचीन है कि आपके भीतर आप जो हैं, वह सिर्फ साक्षी—मात्र हैं। सब कर्तृत्व प्रकृति का है। पुरुष का कोई कर्तृत्व नहीं है। इसलिए जो भी हो रहा है, आपके गुणों और शरीर से हो रहा है। और अगर आप इस सत्य को जान जाएं, तो परम सिद्धि आपकी है।

अब हम सूत्र को लें।
जिस काल में द्रष्टा तीनों गुणों के सिवाय अन्य किसी को कर्ता नहीं देखता है...।

एक—एक शब्द को ठीक से समझ लें।

जिस काल में द्रष्टा तीनों गुणों के सिवाय अन्य किसी को कर्ता नहीं देखता है अर्थात गुण ही गुणों में बर्तते हैं, ऐसा देखता है और तीनों गुणों से अति परे सच्चिदानंदघनस्वरूप मुझ परमात्मा को तत्व से जानता है, उस काल में वह पुरुष मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है। तथा यह पुरुष इन स्थूल शरीर की उत्पत्ति के कारण रूप तीनों गुणों को उल्लंघन करके जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था और सब प्रकार के दुखों से मुक्त हुआ परमानंद को प्राप्त होता है।

जिस काल में, समय की जिस अवधि में, जिस क्षण में...। और यह क्षण अभी भी हो सकता है। इसके लिए कोई जन्मों तक रुकने की जरूरत नहीं है। क्योंकि यह आपके भीतर का जो स्वभाव है, यह कुछ निर्मित नहीं करना है। यह है ही। ऐसा है ही, अभी भी, इस क्षण भी। आप साक्षीरूप हैं और सारा कर्तृत्व आपके शरीर की प्रकृति में हो रहा है, गुणों में हो रहा है, तीन गुणों में हो रहा है, जो प्रकृति के तीन नियंता हैं, और आप अभी भी अलग खड़े हैं। यह सिर्फ भ्रांति है कि आप सोचते हैं, आप कर रहे हैं।

जिस काल में, जिस क्षण में, द्रष्टा तीनों गुणों के सिवाय अन्य किसी को कर्ता नहीं देखता है।

जिस क्षण आपको यह समझ में आ जाता है कि मेरे तीन गुण ही समस्त कर्म कर रहे हैं, मैं करने वाला नहीं हूं; गुण ही कर रहे हैं, करवा रहे हैं......।

कठिन है। क्योंकि अहंकार को कोई जगह न रह जाएगी। इसलिए अहंकार बाधा बनेगा। अहंकार कहेगा, कौन कहता है कि धन मैं नहीं कमा रहा हूं? धन मैं कमा रहा हूं। हालांकि आपको पता नहीं है, आपके भीतर जो लोभ का गुण है, वे जो लोभ के परमाणु हैं, वे आपको धक्का दे रहे हैं। लेकिन आप सोचते हैं, मैं धन कमा रहा हूं। धन के लिए तो आपके भीतर लोभ के परमाणु दौड़ा रहे हैं। लेकिन यह आप जो मैं— भाव निर्मित करते हैं, यह बिलकुल थोथा है, यह झूठा है।

आप कहते हैं, मैं प्रेम में पड़ रहा हूं। मैं इस स्त्री के प्रेम में पड़ गया हूं। जब कि सिर्फ आपके वासना—क्या प्रेम में पड़ गए हैं। इसलिए जिन लोगों ने सांख्य की इस दृष्टि को ठीक से समझा था, उन्होंने कई महत्वपूर्ण बातें कही हैं, जो इस युग में समझना मुश्किल हो गई हैं। कठिन भी है समझना। मगर अगर यह सूत्र खयाल में आ जाए, तो समझ में आ सकता है।

महावीर ने अपने साधकों को कहा है कि वृद्धा और रुग्ण, मरणशय्या पर पड़ी स्त्री से भी दूर रहना।

इस बात को थोड़ा समझें।

बुद्ध से आनंद पूछता है कि अगर कोई स्त्री मार्ग पर मिल जाए, तो मैं क्या करूं? तो बुद्ध कहते हैं, देखना मत, आंख नीची कर लेना।

आनंद जिद्दी है, वह पूछता है, समझ लो कि ऐसी अवस्था आ जाए कि आंख नीचे करना न हो पाए। कोई ऐसा कारण हो जाए। समझो कि स्त्री बीमार पड़ी हो, प्यासी पड़ी हो, रास्ते के किनारे गिर पड़ी हो, गड्ढे में गिर पडी हो। मैं अकेला भिक्षु उस मार्ग पर हूं। और मुझे उस स्त्री को उठाना पड़े या पानी पिलाना पड़े, तो देखना तो पड़ेगा! समझ लो कि कोई ऐसी घटना में मुझे देखना पड़े, तो मैं क्या करूं? तो बुद्ध ने कहा, तू छूना मत।

आनंद ने कहा, ऐसी कोई स्थिति भी हो सकती है भंते, कि मुझे छूना भी पड़े, तो उस स्थिति में मैं क्या करूं? तो बुद्ध ने कहा, अब तू मानता ही नहीं, तो मैं आखिरी बात कहता हूं, साक्षी— भाव रखना। अगर तुझे यह करना ही पड़े, तो फिर तू होश रखना कि करने वाला तू नहीं है। छूना भी पड़े, तो समझना कि शरीर छू रहा है। देखना पड़े, तो समझना कि आंख देख रही है। इस भांति में मत पड़ना कि मैं देख रहा हूं कि मैं छू रहा हूं। तो फिर तू आखिरी बात समझ ले कि तू साक्षी— भाव रखना।

महावीर कहते हैं, वृद्ध, रुग्ण, मरणस्य्या पर पड़ी कुरूप स्त्री के पास भी भिक्षु न जाए।

हमें लगेगा, बडे दमन की बात कर रहे हैं। लेकिन महावीर केवल गुणों की बात कर रहे हैं। महावीर यह कह रहे हैं कि जब तक साक्षी न जग गया हो, जब तक अवस्था साधक की हो, तब तक मरणस्य्या पर पड़ी स्त्री के हार्मोन, उसके गुणधर्म भी तुम्हारे भीतर छिपे पुरुष के हार्मोन को आकर्षित करेंगे। वे तुम्हें आकर्षित कर सकते हैं। और साधारण गृहस्थ को शायद न भी करें। लेकिन भिक्षु को कर ही सकते हैं। क्योंकि साधारण गृहस्थ वैसा ही है, जैसे भरा

पेट आदमी, भोजन किया हुआ आदमी। उसको रास्ते के किनारे पड़ी हुई जूठन आकर्षित नहीं करेगी। लेकिन उपवासी आदमी को कर सकती है। भूखे आदमी को कर सकती है।

मनु ने कहा है कि अपनी बहन, अपनी बेटी, अपनी मां के साथ भी एकांत में मत रहना बिलकुल अकेले।

लगते हैं, बड़े दमनकारी लोग हैं। लेकिन उनके सूत्र त्रिगुणों के ऊपर आधारित हैं। वे यह कह रहे हैं, सवाल यह नहीं है कि वह लड़की है तुम्हारी। गहरे में तो वह स्त्री है और तुम पुरुष हो। और हार्मोन न लड़की को जानते हैं, न मां को जानते हैं, न पिता को जानते हैं, न बहन को जानते है। हार्मोन की कोई नैतिकता नहीं है। अगर पिता भी पुत्री के साथ एकांत में बहुत दिन हो, तो धीरे— धीरे लड़की स्त्री रह जाएगी, पिता पुरुष रह जाएगा। और उन दोनों की प्रकृति के जो खिंचाव हैं, वे शुरू हो जाएंगे। यह तभी रुक सकता है, जब साक्षी जग गया हो। लेकिन साक्षी कितने लोगों का जगा है?

तो मनु की बात भी बड़ी गहरी है, पर सांख्य के सूत्रों पर खड़ी है। सांख्य बड़ा अनूठा खोजी है। सांख्य की खोज गहरी है। खोज का सार यह है कि आपके भीतर दो तत्व हैं, एक प्रकृति और पुरुष। पुरुष तो आपकी चेतना है और प्रकृति आपकी देह और मन की संघटना है। और जो भी क्रियाएं हैं, वे सब प्रकृति से हो रही हैं। कोई क्रिया चेतना से नहीं निकल रही है।

लेकिन चेतना को यह शक्ति है कि वह क्रियाओं के साथ अपने को जोड़ ले और कहे कि मैं कर रहा हूं। यह संभावना चेतना की है कि वह कहे कि मैं कर रहा हूं। इतना कहते ही संसार निर्मित हो जाता है।

इसलिए सांख्य—सूत्र कहते हैं कि संसार का जन्म अहंकार के साथ है। मैं आया, संसार निर्मित हुआ। मैं गया, संसार विलीन हो गया। जैसे ही मैं गया, उसका अर्थ है कि मैं सिर्फ देखने वाला रह गया।

और ध्यान रहे, देखना कोई क्रिया नहीं है, द्रष्टा होना कोई क्रिया नहीं है। द्रष्टा होना आपका स्वभाव है। आपको कुछ करना नहीं पड़ता द्रष्टा होने के लिए, द्रष्टा आप हैं।

रात सोते हैं, सपना देखते हैं, तब भी आप द्रष्टा हैं। सुबह उठते हैं एक गहरी नींद के बाद, तो भी आप कहते हैं, बड़ा आनंद आया, नींद बड़ी गहरी थी। इसका मतलब है कि कोई आपके भीतर देखता रहा कि नींद बड़ी गहरी थी। सुबह आप कहते हैं, नींद बड़ी गहरी थी, बड़ा सुख रहा।

जागे, सोए, सपना देखें, द्रष्टा कायम है। यह द्रष्टा कोई किया नहीं है। यह द्रष्टा आपका सतत स्वभाव है। यह एक क्षण को भी खोता नहीं है। लेकिन इस द्रष्टा को आप कर्ता बना सकते हैं, यह सुविधा है। चाहे इसे सुविधा कहें, चाहे असुविधा। यह स्वतंत्रता है। चाहे इसे स्वतंत्रता कहें, और चाहे समस्त परतंत्रता का मूल। क्योंकि इसी स्वतंत्रता के गलत उपयोग से संसार निर्मित होता है। और इसी स्वतंत्रता के सही उपयोग से मोक्ष निर्मित हो जाता है।

मोक्ष है आपकी स्वतंत्रता का ठीक उपयोग। संसार है आपकी स्वतंत्रता का गलत उपयोग। आपकी चेतना प्रतिपल मात्र साक्षी है।

जिस काल में द्रष्टा तीनों गुणों के सिवाय अन्य किसी को कर्ता नहीं देखता है .....।

बस, ये तीन ही गुण कर रहे हैं। कोई और चौथा मेरे भीतर कर्ता नहीं है। अर्थात गुण ही गुणों में बर्तते हैं.......।

गुण ही गुणों के साथ वर्तन कर रहे हैं; एक्शन—रिएक्शन कर रहे हैं। मेरे भीतर का पुरुष—गुण किसी के स्त्री—गुण का पीछा कर रहा है। मेरे भीतर का क्रोध का गुण किसी के ऊपर क्रोध बरसा रहा है। मेरे भीतर हिंसा का गुण किसी के प्रति हिंसा से भर रहा है।

कृष्ण यह कह रहे हैं अर्जुन से कि यह जो भी युद्ध हो रहा है, यह भी तीन गुणों का वर्तन है। इसमें उस तरफ खड़े लोग भी उन्हीं गुणों से सक्रिय हो रहे हैं। इस तरफ खड़े लोग भी उन्हीं गुणों से सक्रिय हो रहे हैं। और अगर तू भागेगा, तो तू यह मत सोचना कि तूने संन्यास लिया। अगर तेरे भीतर भागने के परमाणु हों, तो तू भाग सकता है। लेकिन तब भी यह तू जानना कि ये गुण ही बर्त रहे हैं। तू इस भ्रांति में मत पड़ना.....। जो भी हो, तू एक बात खयाल रखना कि तू देखने वाला है।

गुण ही गुणों में बर्तते हैं, ऐसा जो देखता है और तीनों गुणों से अतीत—तीनों गुणों के पार, बियांड—तीनों गुणों से ऊपर, दूर, अतीत, सच्चिदानदघनस्वरूप मुझ परमात्मा को तत्व से जानता है...।

प्रत्येक के भीतर इन तीन तत्वों के पीछे छिपा हुआ कृष्ण है। ब्रह्म कहें, क्राइस्ट कहें, बुद्ध कहें, जो भी कहना हो। इन तीनों तत्वों के भीतर छिपा हुआ आपका परम स्वभाव है, परम ब्रह्म है।

जो भी इन तीन गुणों को कर्ता की तरह जानता है, और इन तीनों के परे मुझ सच्चिदानदघनरूप परमात्मा को पहचानता है, उस काल में वह पुरुष मुझे प्राप्त हो जाता है।

वह प्राप्त है ही। सिर्फ यह प्रत्यभिज्ञा, यह रिकग्नीशन, यह पहचान प्राप्ति बन जाती है। इस क्षण भी आप आंख मोड़ लें गुणों से और गुणों के पीछे सरककर एक झलक ले लें, तो जो मोक्ष बहुत दूर दिख रहा है, वह जरा भी दूर नहीं है। सिर्फ मुड़कर देखने की बात है।

जो परमात्मा बडा जटिल मालूम पड़ता है, जिस पर भरोसा नहीं आता, तर्क जिसे सिद्ध नहीं कर पाता, जिस पर बड़ा अविश्वास और संदेह पैदा होता है, हजार चिंताएं मन में पकड़ती हैं कि परमात्मा कैसे हो सकता है! वह परमात्मा इतना निकट है कि जितनी देर परमात्मा शब्द कहने में लगती है, उतनी देर भी उसे पाने में लगने का कोई कारण नहीं है। मगर एक अबाउट टर्न, एक पूरा घूम जाना; जहां पीठ है, वहां चेहरा हो जाए; और जहां चेहरा है, वहां पीठ हो जाए।

अभी हमारा चेहरा गुणों की तरफ है। कभी इस गुण में, कभी उस गुण में, कभी तीसरे गुण में हम उलझे हैं। और गुण का जो खेल है, जाल है, वह जाल हम अपना समझ रहे हैं।

रामकृष्ण के पास एक भक्त आता था। और वह भक्त जब काली के दिन आते, तो कई बकरे कटवाता था। बड़ा समारोह मचाता था। उसकी बड़ी गणना थी भक्तों में, बड़े भक्तों में। फिर अचानक उसने पूजा— भक्ति सब छोड़ दी, बकरे कटने बंद हो गए।

तो एक दिन रामकृष्ण ने उससे पूछा कि क्या हुआ? क्या भक्ति— भाव जाता रहा? क्या अब काली में श्रद्धा न रही? उसने कहा, नहीं, यह बात नहीं। आप देखते नहीं, दांत ही सब गिर गए।

वह आदमी बड़ा ईमानदार रहा होगा। वह बकरे वगैरह काली ? के लिए कोई काटता है! काली तो बहाना है, तरकीब है। बकरे तो अपने ही दांतों के लिए काटे जाते हैं। लेकिन उसने कहा कि दांत ही न रहे, दांत ही गिर गए, अब क्या काटना और क्या नहीं काटना! किसके लिए काटना?

लेकिन वह आदमी ईमानदार रहा होगा। उसने एक बात तो कम से कम समझी कि यह सब दांतों के लिए चल रहा था।

बुढ़ापे में लोग शीलवान हो जाते हैं। बुढ़ापे में लोग सच्चरित्रता की बात करने लगते हैं। बुढ़ापे में दूसरे लोगों को समझाने लगते हैं कि जवानी सब रोग है। जब वे जवान थे, तो उनके घर के बड़े—बूढ़े भी उन्हें यही समझा रहे थे कि जवानी सब रोग है। उन्होंने उनकी नहीं सुनी। उनके बेटे भी उनकी नहीं सुनेंगे।

और बड़ा मजा यह है कि जब आपने अपने बाप की नहीं सुनी, तो आप किस भ्रांति में हैं कि अपने बेटे को सोच रहे हैं, सुन ले। किसी बेटे ने कभी नहीं सुनी। क्योंकि जवानी सुनती ही नहीं। और बुढ़ापा बोले चला जाता है। बुढापा समझाए चला जाता है। क्योंकि बुढ़ापा अब कुछ और कर नहीं सकता। करने के दिन गए। वह जिन तत्वों से करना निकलता था, वे क्षीण हो गए।

और बड़े मजे की बात है, जब आप नहीं कर सकते, तब भी आपको यह खयाल नहीं आता कि शरीर के गुणधर्म क्षीण हो गए हैं, जिससे आप नहीं कर सकते हैं। जब आप कर सकते थे, तब आप सोचते थे, मैं कर रहा हूं। और जब आप नहीं कर सकते, तब आप सोचते हैं कि मैंने त्याग कर दिया! जब आप नहीं कर सकते, तब आप सोचते हैं, मैंने त्याग कर दिया !'

के अक्सर सोचते हैं कि वे ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो गए हैं। अन्यथा उपाय क्या था? मजबूरी को ब्रह्मचर्य समझ लें, तो भ्रांति जारी रहती है। उचित यही होगा कि समझें कि जिन गुणधर्मों से, जिस प्रकृति के तत्व से वासना उठती थी, वे तत्व क्षीण हो गए, जल गए। जब वे जग रहे थे तत्व, सजग थे, तेज थे, दौड़ते थे, तब आप उनका पीछा कर रहे थे। तब भी आप कर्ता नहीं थे। और अब भी आप कर्ता नहीं हैं। लेकिन वासना के दिन में समझा था कि मैं कर्ता हूं। मैं हूं जवान। और बुढ़ापे के दिन में समझ रहे हैं कि मैं हूं त्यागी, मैं हूं ब्रह्मचारी। दोनों भ्रांतियां हैं।

अगर आप देख पाएं कि सारा खेल प्रकृति का है और आप उसके बीच में सिर्फ खड़े हैं देखने वाले की तरह, एक क्षण को भी कर्तृत्व आपका नहीं है, आप मुक्त हो गए। यह जानते ही कि मैं कर्ता नहीं हूं बंधन गिर गए। यह पहचानते ही कि मैंने कभी कुछ नहीं किया है, सारे कर्मों का जाल टूट गया।

कर्म आपको नहीं बांधे हुए हैं। लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं कि जन्मों—जन्मों के कर्म पकड़े हुए हैं। कोई कर्म आपको नहीं पकड़े हुए है, कर्ता पकड़े हुए है। कर्ता के छूटते ही सारे कर्म छूट जाएंगे। क्योंकि जिसने किए थे, जब वह ही न रहा, तो कर्म कैसे पकड़ेंगे? कर्म नहीं पकड़ता, कर्ता पकड़ता है। और कर्ता के कारण जन्मों—जन्मों के कर्म इकट्ठे रहते हैं, उनका बोझ आप ढोते हैं।

कई लोग मुझसे यह भी पूछने आते हैं कि पिछले किए हुए कर्मों को कैसे काटें?

एक तो उनको किया नहीं कभी। अब उनको काटने का कर्म करने की कोशिश चल रही है! उनको कैसे काटें? जिनको किया ही नहीं, उनको अनकिया कैसे करिएगा? वह भांति थी कि आपने किया। अब आप एक नई भ्रांति चाहते हैं कि उनको हम काटने का कर्म कैसे करें! पहले संसारी थे, अब संन्यासी कैसे हों?

संन्यास का कुल मतलब इतना है कि करने को कुछ भी नहीं है, सिर्फ देखने को है। अब करने वाला मैं नहीं हूं, सिर्फ देखने वाला हूं। फिर जो भी हो रहा हो, उसे देखते रहना है सहज भाव से, उसमें कोई बाधा नहीं डालनी है।

शास्त्र कहते हैं कि इतनी अगर ब्राह्मण की भी हत्या कर दे, तो उस पर कोई पाप नहीं है। अंबेदकर ने बड़ा एतराज उठाया। क्योंकि यह बात बड़ी अजीब है, और भी कोई सोचेगा, तो एतराज उठाएगा। इस तरह की छूट तानी को देनी कैसे संभव है? कानून सबके लिए है; नियम सबके लिए है।

और इसमें कहा है कि ज्ञानी अगर ब्राह्मण की भी हत्या कर दे, उसे कोई पाप नहीं है! और अज्ञानी? किसी शास्त्र में लिखा नहीं है, लेकिन कहीं न कहीं लिखना जरूर चाहिए। अज्ञानी अगर पुतला भी बनाकर मिट्टी का काट दे, मैं मानता हूं, पाप है। फर्क समझ लेना जरूरी है।

तानी हम कहते उसे हैं, जो कहता है, मैं कर्ता नहीं हूं। अगर वह काट भी रहा हो, तो सिर्फ उसके गुण ही काट रहे हैं, वह नहीं काट रहा है। और उस हत्या के कृत्य में भी वह सिर्फ साक्षी है। जरूरी नहीं कि ज्ञानी ऐसा करे, आवश्यकता भी नहीं है। ज्ञानी होते—होते वस्तुत: भीतर के सारे तत्व धीरे— धीरे समस्वरता को उपलब्ध हो जाते हैं। ऐसी घटना शायद ही कभी घटती है। लेकिन घट सकती है।

उस संभावना को मानकर यह शास्त्रों में सूत्र है कि अगर ब्राह्मण को भी काट दे! और ब्राह्मण को काटने का मतलब है, क्योंकि ब्राह्मण का मतलब है, जिसने इस जीवन में श्रेष्ठतम, सुंदरतम जीवन—दशा पा ली हो, उसको भी काट दे, अच्छे से अच्छे फूल को भी मिटा दे, तो भी उसे कोई पाप नहीं है।

पाप इसलिए नहीं है कि वह जानता है कि मैं कर्ता नहीं हूं। और आप किसी की तस्वीर भी फाड़ दें क्रोध से, मिट्टी का पुतला बनाकर काट दें......। ऐसा अज्ञानी करते भी हैं। किसी का पुतला बनाकर निकालेंगे जुलूस, उसको जला देंगे। उनका भाव बड़ी गहरी हिंसा का है। और जलाते वक्त उनके मन में पूरा भाव है कर्ता का कि हम मारे डाल रहे हैं।

मैं कर्ता हूं, तो मैं पापी हो जाता हूं। मैं कर्ता नहीं हूं तो पाप का कोई कारण नहीं है। इसलिए हमने ज्ञानी को समस्त नियमों के पार रखा है। कोई नियम उस पर लगते नहीं। वह नियमातीत है। इसीलिए नियमातीत है कि जब कर्तृत्व उसका कोई न रहा, तो सब नियम कर्म पर लगते हैं और कर्ता पर लगते हैं। साक्षी पर कोई नियम कैसे लग सकता है?

जैसे ही कोई तीन गुणों के सारे कर्म हैं, ऐसा जानता है, और स्वयं को साक्षी, वह मुझ सच्चिदानंदनघनरूप परमात्मा को तत्व से पहचान लेता है, उस काल में वह पुरुष मुझे प्राप्त हो जाता है। तथा यह पुरुष इन स्थूल शरीर की उत्पत्ति के कारणरूप तीनों गुणों को उल्लंघन करके..।

इस शरीर के जन्म के कारण वे तीनों गुण ही हैं। और उन तीनों गुणों के साथ मेरा तादात्म्य है, वही मुझे नए शरीरों को ग्रहण करने में ले जाता है।

जो उनका उल्लंघन कर जाता है, वह जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था, सब प्रकार के दुखों से मुक्त हुआ परमानंद को प्राप्त होता है।

इसमें हमें समझ में आ जाएगा कि हो सकता है, उसका नया जन्म न हो। यह भी समझ में आ सकता है कि उसे दुख न हो। लेकिन मृत्यु न होगी, यह कैसे समझ में आएगा!

महावीर भी मरते हैं, बुद्ध भी मरते हैं, कृष्ण खुद भी मरते हैं। मृत्यु तो होगी, लेकिन जिसने भी जान लिया कि मैं साक्षी हूं वह मृत्यु का भी साक्षी रहेगा। तो वह देखेगा कि गुण ही मर रहे हैं; गुणों का जाल शरीर ही मर रहा है, मैं नहीं मर रहा हूं। उसकी वृद्धावस्था संभव नहीं है। असल में उसकी कोई अवस्था संभव नहीं है।

जवान होकर वह जवान नहीं रहेगा। का होकर का नहीं रहेगा।

बच्चा होकर बच्चा नहीं रहेगा। क्योंकि अब सब अवस्थाएं गुणों की हैं। बचपन गुणों का एक रूप है। जवानी गुणों का दूसरा रूप है। बुढ़ापा गुणों का तीसरा रूप है। और वह तीनों के पार है। इसलिए न वह बच्चा है, न जवान है, न बूढ़ा है। किसी अवस्था में नहीं है। सभी अवस्थाओं के पार है।

इस ट्रांसेंडेंस को, इस भावातीत अवस्था को अनुभव कर लेना मुक्ति है।

इसलिए कृष्ण ने कहा कि अर्जुन जिस ज्ञान से परम सिद्धि उपलब्ध होती है, वह मैं तुझे फिर से कहूंगा। वे फिर—फिरकर, कैसे व्यक्ति अपनी परम मुक्ति को इसी क्षण अनुभव कर ले सकता है, उसके सूत्र दे रहे हैं।

गीता दर्शन–(भाग–7)
अध्याय—14 (प्रवचन—आठवां) — संन्यास गुणातीत है

सूत्र
अर्जुन उवाच:

कैर्लिङ्गैस्त्रीनुाणानेतानतझीए भवति प्रभो।
किमाचारः कथं चैतांस्प्रीनुाणानतिवर्तते।।21।।
श्रभिगवानवाच:

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव।
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति।।22।।
उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठीत नेङ्ग्ले।।23।।
अर्जुन ने पूछा कि हे पुरुषोत्तम, इन तीनों गुणों से अतीत हुआ पुरूष किन— किन लक्षणों से युक्त होता है? और किस प्रकार के आचरणों वाला होता है? तथा हे प्रभो? मनुष्य किस उपाय से इन तीनों गुणों से अतीत होता है?

हम प्रकार अर्जुन के पूछने पर श्रीकृष्ण भगवान बोले हे अर्जुन, जो पुरुष सत्वगुण के कार्यरूप प्रकाश को और रजोगुण के कार्यरूप प्रवृत्ति को तथा तमोगुण के कार्यरूप मोह को भी न तो प्रवृत्त होने पर बुरा समझता है और न निवृत्त होने पर उनकी अकांक्षा करता है।

तथा जो साक्षी के सदृश स्थित हुआ गुणों के द्वारा विचलित नहीं किया जा सकता है और गुण ही गुणों में बर्तते हुँ ऐसा समझता हुआ जो सच्चिदानंदघन परमात्मा में एकीभाव से स्थित रहता है एवं उस स्थिति से चलायमान नहीं होता है।

पहले प्रश्न कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्न :
साक्षी, द्रष्टा, चैतन्य सदा ही अलग कुंवारा और अनबंधा है। और सारी जीवन—लीला गुणों का ही स्वयं में वर्तन है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति से सत्व, रज, तम के गुणों को वैज्ञानिक या रासायनिक ढंग से शांत कर दिया जाए या व्यक्ति को सात्विक बना दिया जाए, तो क्या वह उस हमेशा से मुक्त साक्षी को उपलब्ध हो जाएगा? यदि साक्षी सदा ही मुक्त एवं उपस्थित है, तो त्रिगुणों को रासायनिक ढंग से बदल देने पर वह क्या प्रकट न हो जाएगा? क्या व्यक्ति तब धार्मिक नहीं हो जाएगा? त्रिगुणों से उत्पन्न समस्या को रासायनिक आ से हल करने में या साधना के माध्यम से हल करने में क्या मौलिक भिन्नता है?
प्रश्न महत्वपूर्ण है और बहुत गहरे से समझने की जरूरत है। इसलिए महत्वपूर्ण है कि पश्चिम में वैज्ञानिक उन विधियों को खोज लिए हैं, जिनसे मनुष्य का रासायनिक परिवर्तन हो सकता है, जिनसे मनुष्य के शारीरिक गुणधर्म बदले जा सकते हैं। और निश्चित ही, उसका आचरण भिन्न हो जाएगा।

आपके भीतर क्रोध का जो विषाक्त रासायनिक द्रव्य है, वह अलग किया जा सकता है। उसके विपरीत तत्व आपके शरीर में डाले जा सकते हैं, जो आपके आचरण को सौम्य और शांत बना देंगे। लेकिन ध्यान रखें, आचरण को, आपको नहीं।

आपकी कामवासना को बिना किसी साधना के, मात्र शारीरिक परिवर्तन से क्षीण किया जा सकता है, नष्ट भी किया जा सकता है। वासना जगाई भी जा सकती है, मिटाई भी जा सकती है।

यह प्रश्न इसलिए महत्वपूर्ण है कि पश्चिम में अब हमारे पास साधन उपलब्ध हैं पहली दफा मनुष्यता के इतिहास में, जब हम आदमी को बिना साधना में उतारे भी आचरण की दृष्टि से बदल सकते हैं। लेकिन यह बदलाहट ऊपरी होगी, और इस बदलाहट से कोई आत्मिक उत्थान नहीं होगा। बल्कि आत्मिक उत्थान की सारी संभावना ही नष्ट हो जाएगी। उत्थान तो होगा ही नहीं, जिन परिस्थितियों के कारण उत्थान हो सकता था, वे परिस्थितियां भी ' मिट जाएंगी।

आपके भीतर क्रोध दो घटनाओं पर निर्भर है। एक तो आपके शरीर में क्रोध के परमाणु चाहिए हार्मोन चाहिए, रस चाहिए। और दूसरा, इन रसों के साथ चेतना को जोड़ने का तादात्म्य और भ्रांति चाहिए। इन दो बातों पर निर्भर है।

कामवासना के लिए आपके शरीर में काम के तत्व चाहिए, और उन काम के तत्वों से जुड़ने की आकांक्षा चाहिए, एक होने की आकांक्षा चाहिए। अगर काम के तत्व भीतर न हों, तो आप जुड़ना भी चाहें तो भी जुड़ न सकेंगे; कामवासना

में उतरना चाहें, तो भी उतर न सकेंगे। इसलिए आचरण आपका ब्रह्मचारी जैसा हो जाएगा। यद्यपि वह ब्रह्मचर्य नपुंसकता का दूसरा नाम होगा। लेकिन भीतर कोई क्रांति घटित न होगी।

यह ऐसे ही है, जैसे मेरे हाथ में तलवार हो। तलवार के बिना मैं किसी की गर्दन न काट पाऊंगा। तलवार मेरे हाथ से छीन ली जाए, तो मैं गर्दन नहीं काट पाऊंगा। इसलिए मेरा आचरण तो भिन्न हो जाएगा। गर्दन काटने का उपाय न होगा। लेकिन गर्दन सिर्फ तलवार के कारण मैं नहीं काट रहा था। तलवार तो केवल उपकरण थी। भीतर मैं था, हिंसा से भरा हुआ। भीतर मेरी वृत्ति थी दूसरे को नष्ट करने की, वह मेरे भीतर मौजूद रहेगी।

तलवार भी मेरे हाथ में हो और भीतर मेरी वृत्ति न रह जाए, तो मैं गर्दन नहीं काटूंगा। गर्दन काटने के लिए दो चीजें जरूरी हैं, मेरे भीतर मूर्च्छा चाहिए और हाथ में तलवार चाहिए। और जब इन दोनों का संयोग हो जाएगा, तो गर्दन कटेगी। इन दो में से एक भी हटा लिया जाए, तो आचरण बदल जाएगा।

अगर भीतर का तत्व हटा लिया जाए, तो आचरण भी बदलेगा और आत्मा भी बदलेगी। अगर बाहर का तत्व हटा लिया जाए, तो केवल आचरण बदलेगा, आत्मा नहीं बदलेगी। और आत्मिक क्रांति आचरण के बदलने से नहीं होती। आत्मिक क्रांति आत्मा के बदलने से होती है। आचरण तो केवल छाया की भांति है।

इस बात पर हमारा जोर नहीं है कि आपके आचरण में ब्रह्मचर्य हो। जोर इस बात पर है कि आपके भीतर ब्रह्मचर्य हो। वह भीतर का ब्रह्मचर्य बाहर के ब्रह्मचर्य को छाया की भांति ले आएगा। लेकिन रासायनिक प्रक्रियाओं से आपका आचरण बदला जा सकता है। भीतर आप वही होंगे, क्योंकि आपकी आत्मा कोई साक्षी— भाव को उपलब्ध नहीं हो जाएगी।

और ध्यान रहे, साक्षी— भाव किसी रासायनिक द्रव्य पर निर्भर नहीं है। ऐसा कोई रासायनिक तत्व नहीं है, जिसका इंजेक्शन देने से आप में साक्षी— भाव पैदा हो जाए। साक्षी— भाव तो आपको साधना होगा, क्रमश: उपलब्ध करना होगा। वह लंबे संघर्ष का परिणाम होगा, निष्पत्ति होगी। साक्षी— भाव तो एक आंतरिक ग्रोथ, विकास है।

रासायनिक द्रव्यों से आचरण बदला जा सकता है। इसलिए ध्यान रखें, जो लोग धर्म को मात्र आचरण समझते हैं, उनका धर्म दुनिया में ज्यादा दिन टिकेगा नहीं। क्योंकि जिन—जिन बातों को वे धर्म कहते हैं, वह तो वैज्ञानिक कर सकेगा। ऐसा धर्म तो मरने के कगार पर पहुंच गया है। मैं जिसे धर्म कहता हूं वही टिक सकता है भविष्य में।

जो लोग कहते हैं, अच्छा आचरण धार्मिकता है, उनके धर्म का अब कोई उपाय नहीं है। क्योंकि अच्छा आचरण तो अब इंजेक्शन से भी पैदा हो सकेगा। जिसको वे कहते हैं कि बुरा आचरण मिटाने का एक ही उपाय धर्म है, वह भी गलत है।

पश्चिम में बहुत—से वैज्ञानिक प्रस्ताव कर रहे हैं कि अपराधियों को दंडित करना बंद कर दिया जाए। वह भांति है। अपराधियों की रासायनिक चिकित्सा की जाए। वे अपराध करते हैं, क्योंकि उनके भीतर कोई तत्व है रासायनिक, जो विक्षिप्त हालत पैदा कर देता है। उसे बदल दिया जाए। फांसी देना फिजूल है। वर्षों तक उनको जेल में रखना व्यर्थ है। उससे उनका कोई रासायनिक परिवर्तन नहीं हो रहा है। बल्कि वे और भी निष्णात और पक्के अपराधी होकर वापस लौटेंगे। बाहर तो वे प्रशिक्षित नहीं थे, भीतर उनको बडे गुरु उपलब्ध हो जाएंगे।

एक आदमी चोरी करता है। वह अकेला चोरी कर रहा है। नया—नया है। पकड़ में भी आ जाता है। जब आप उसे पांच साल जेल में रख देते हैं, तो वहा हजार उस्तादों के शिक्षण में रहने का मौका मिल जाता है, जो पुराने अभ्यासी हैं। वह पांच साल की जेल के बाद ज्यादा कुशल चोर होकर बाहर निकलता है। उसे पकड़ना और मुश्किल हो जाएगा।

किसी को सजा देने से कोई उसके भीतर का परिवर्तन तो होता नहीं, बाहर का भी परिवर्तन नहीं होता। सिर्फ उसकी आत्मा और भी कठोर हो जाती है, और भी बेशर्म हो जाती है।

ज्यादा देर नहीं लगेगी कि वैज्ञानिक राजनीतिज्ञों को राजी कर लेंगे। चीन में, रूस में राजनैतिक अपराधियों के साथ ये प्रयोग शुरू हो गए हैं। रूस में स्टैलिन के समय तक जो भी राजनैतिक विरोधी होता, उसकी वे हत्या कर डालते थे। अब वे हत्या नहीं करते हैं। अब राजनैतिक विरोधी को सिर्फ अस्पताल से वे पागल करार दे देते हैं। जो कि ज्यादा खतरनाक है। चिकित्सक लिखकर दे देते हैं कि इसके मस्तिष्क में खराबी है।

इतना लिखना काफी है। फिर उसे पागलखाने में डाल दिया जाता है। और पागलखाने में उसके मस्तिष्क का इलाज शुरू कर दिया जाता है। वह इलाज.....। वह न तो आदमी पागल है, न उसको कोई रोग है, न कोई मानसिक विक्षिप्तता है। लेकिन इलाज यह है कि उसके भीतर जो—जो तत्व बगावती हैं, उनको धीरे—धीरे शांत कर दिया जाएगा।

एक चार—छ: महीने के बाद वह आदमी बाहर आ जाता है। उसकी जो बगावत थी, विद्रोह था, सरकार के विपरीत सोचने की दशा थी, वह टूट जाती है। वह ज्यादा डोसाइल, ज्यादा आज्ञाकारी, अनुशासनबद्ध हो जाता है। यह मारने से भी बुरा है।

देलगाडो ने सुझाव दिया है सारी दुनिया की सरकारों को, कि आप युद्ध बंद नहीं कर सकते, अपराध बंद नहीं कर सकते। और पांच हजार साल का मनुष्य—इतिहास कह रहा है कि कितना ही समझाओ, आदमी को बदला नहीं जा सकता। मेरा सुझाव मान लिया जाए।

देलगाडो का सुझाव यह है कि ऐसे तत्व विज्ञान ने खोज लिए हैं, जिनको सिर्फ पानी में मिला देने की जरूरत है हर नगर की झील में। और आपके घर में पानी तो आ ही रहा है झील से पीने के लिए। उस पानी को पीकर ही आप अपने आप लड़ने की वृत्ति से शून्य हो जाएंगे।

लेकिन ध्यान रहे, इस तरह के शामक रासायनिक द्रव्य को पीकर जो लड़ने की वृत्ति से शांत हो जाएगा, वह बुद्ध या महावीर नहीं हो जाएगा। उसमें कोई बुद्ध की गरिमा प्रकट नहीं होगी। उसमें तो क्रोध की जो थोड़ी—बहुत गरिमा प्रकट होती थी, वह भी बंद हो जाएगी। वह केवल निर्जीव हो जाएगा। वह सुस्त और हारा हुआ लगेगा। जैसे उसके भीतर से प्राण खींच लिए गए हों। वह नींद—नींद में चलेगा। लड़ेगा नहीं, क्योंकि लड़ने के लिए भी जितनी ऊर्जा चाहिए, वह भी उसके पास नहीं है।

सिर्फ न लड़ने से कोई बुद्ध नहीं होता। बुद्ध होने से न लड़ना निकलता है, तब एक गौरव है, गरिमा है। जब आप भीतर इतने ऊंचे शिखर को छू लेते हैं कि लड़ना क्षुद्र हो जाता है, व्यर्थ हो जाता है। एक तो उपाय यह है कि बिजली का बल्व जल रहा है, हम एक डंडा मारकर इसे तोड़ दें। बल्व टूट जाएगा, बिजली लुप्त हो जाएगी। लेकिन आप डंडा मारकर बिजली को नष्ट नहीं कर रहे हैं। आप सिर्फ अभिव्यक्ति के माध्यम को तोड़ रहे हैं। बल्व टूट गया, बिजली तो अभी भी धारा की तरह बही जा रही है। और जब भी बल्व आप उपलब्ध कर देंगे, बिजली फिर जल उठेगी। आपने बिजली नहीं तोड़ी, केवल बिजली के प्रकट होने की जो व्यवस्था थी, वह तोड़ दी है। बिजली अभी भी बह रही है।

ये जो आपके शरीर के परमाणु हैं, रासायनिक परमाणु हैं, ये केवल अभिव्यक्ति के माध्यम हैं। इनको हटा लिया जाए, तो आपके भीतर जो छिपा हुआ है, वह प्रकट होना बंद हो जाएगा। फिर से डाल दिया जाए, फिर प्रकट होने लगेगा।

साधना का अर्थ है कि हम बिजली की धारा को ही विलीन कर रहे हैं, बल्व को नहीं तोड रहे हैं। बल्व को तोड्ने का कोई अर्थ ही नहीं है। बल्कि बल्व तो उपयोगी है। क्योंकि वह बताता है, धारा बह रही है या नहीं; धारा है या नहीं।

आपके भीतर क्रोध यह बताता है कि अभी आप अज्ञान में डूबे हैं। वासना बताती है कि अभी आपके प्राण जागरूक नहीं हुए हैं। अगर ये तत्व हमने अलग कर लिए, तो क्रोध प्रकट होना बंद हो जाएगा और आपको यह पता चलना भी बंद हो जाएगा कि आप गहन अज्ञान में पड़े हैं। यह तो ऐसा हुआ, जैसे कोई आदमी बीमार हो और हम उसके बीमारी के लक्षण छीन लें, तो उसे यह भी पता न चले कि वह बीमार है।

और यह भी खयाल में रहे कि क्रोध एक अवसर है। क्रोध सिर्फ बुरा है, ऐसा नासमझ कहते हैं, मैं नहीं कहता। क्रोध एक अवसर है, उसका आप बुरा उपयोग कर सकते हैं और भला भी। क्रोध एक मौका है। उसमें आप मूर्च्छित होकर पागल हो सकते हैं; उसी में आप जागरूक होकर बुद्धत्व को प्राप्त कर सकते हैं।

तो अवसर को तोड़ देना उचित नहीं है। जब क्रोध आप में उठता है, अगर आप क्रोध के साथ तादात्म्य कर लेते हैं, एक हो जाते हैं, तो आप किसी की हत्या कर बैठते हैं। लेकिन अगर आप क्रोध को सजग होकर देखते रहें, तो जो क्रोध किसी की हत्या बन सकता था, वही क्रोध आपके भीतर नवजीवन का जन्म बन जाएगा। सिर्फ आप साक्षी होकर देखते रहें। क्रोध का धुआं उठेगा। बादल घने होंगे। लेकिन आप दूर खड़े रहेंगे, आप मुक्त होंगे, पार होंगे, अलग होंगे।

यह अलग होने का अनुभव, क्रोध से ही अलग होने का अनुभव नहीं, शरीर से अलग होने का अनुभव बन जाएगा। क्योंकि क्रोध शरीर के गुणों में पैदा हो रहा है।

वासना उठेगी, काम उठेगा, वे भी शरीर के गुणों की परिणतियां हैं, उनका ही वर्तन हैं। असली सवाल यह है कि हम उनके साथ सहयोग करके उनमें बह जाएं या उनके साथ सहयोग तोड़कर साक्षी की तरह खड़े हो जाएं? हम उनके गुलाम हो जाएं या हम उनके मालिक हो जाएं? हम उन्हें देखें खुली आंखों से या अंधे होकर उनके पीछे चल पड़े?

अवसर को मिटा देना खतरनाक है। इसलिए मैं मानता हूं कि अगर वैज्ञानिकों की सलाह मान ली गई, तो लोगों का आचरण तो अच्छा हो जाएगा, लोगों का व्यवहार तो अच्छा हो जाएगा, लेकिन आत्माएं बिलकुल खो जाएंगी। वह दुनिया बड़ी रंगहीन होगी, बेरौनक होगी। उसमें न तो हिटलर जैसा क्रोधी होगा, न स्टैलिन। जैसा हत्यारा होगा। नहीं होगा। उसमें बुद्ध जैसा शांत प्रज्ञा—पुरुष भी नहीं होगा। उसमें सोए हुए लोग होंगे, झोम्बी की तरह—बेहोश, मूर्च्छा में चलते हुए, सम्मोहित, यंत्रवत।

अगर आप क्रोध नहीं कर सकते, तो ध्यान रखें, आप करुणा भी नहीं कर पाएंगे। क्योंकि करुणा क्रोध के प्रति साक्षी हो जाने से पैदा होती है। और अगर आपके भीतर कामवासना तोड़ दी जाए शारीरिक ढंग से, रासायनिक ढंग से, तो आपके भीतर प्रेम का भी कभी उदय नहीं होगा। क्योंकि प्रेम कामवासना का ही शुद्धतम रूपांतरण है।

आपके भीतर से बुरा मिटा दिया जाए, तो भला भी मिट जाएगा। आपसे अपराध नहीं होगा, यह पक्का है, लेकिन आपमें साधुता का भी जन्म नहीं होगा। और आपके भीतर परमहंस होने की जो संभावना है, वह सदा के लिए लोप हो जाएगी।

इसलिए रासायनिक परिवर्तन से कोई क्रांति होने वाली नहीं है। वास्तविक परिवर्तन चेतना का परिवर्तन है, शरीर का नहीं।

और जो भी बुराइयां हैं, उनसे भयभीत न हों, परेशान न हों। सभी बुराइयां इस भांति उपयोग की जा सकती हैं कि सृजनात्मक हो जाएं। ऐसी कोई भी बुराई नहीं है, जो खाद न बन जाए, और जिससे भलाई के फूल न निकल सकें। और बुराई को खाद बना लेना भलाई के बीजों के लिए, उस कला का नाम ही धर्म है।

जीवन में जो भी उपलब्ध है, उसका ठीक—ठीक सम्यक उपयोग जो भी व्यक्ति जान लेता है, उसके लिए जगत में कुछ भी बुरा नहीं है। वह तमस से ही प्रकाश की खोज कर लेता है। वह रजस से ही परम शून्यता में ठहर जाता है। वह सत्य से गुणातीत होने का मार्ग खोज लेता है।

और ध्यान रहे, विपरीत मौजूद है, वह आपकी परीक्षा है, कसौटी है, चुनौती है, निकष है। उस विपरीत को नष्ट कर देने पर मनुष्य की सारी गरिमा मर जाएगी। मनुष्य का गौरव यही है कि वह चाहे तो नरक जा सकता है और चाहे तो स्वर्ग। अगर नरक जाने के सब द्वार तोड़ दिए जाएं, तो साथ ही स्वर्ग जाने की सब सीढ़ियां गिर जाएंगी।

ध्यान रहे, जिस सीढ़ी से हम नीचे उतरते हैं, उसी से हम ऊपर चढ़ते हैं। सीढ़िया दो नहीं हैं। आप इस मकान तक सीढ़ियां चढ़कर आए हैं। जिन सीढ़ियों से चढ़कर आए हैं, उन्हीं से आप उतरेंगे भी। इस डर से कि कहीं सीढ़ियों से कोई नीचे न उतर जाए, हम सीढ़ियां तोड़ सकते हैं। लेकिन ध्यान रहे, तब ऊपर चढ़ने का उपाय भी समाप्त हो गया।

नरक उसी सीढ़ी का नाम है, जिसका स्वर्ग। फर्क सीढ़ी में नहीं है; फर्क दिशा में है। जब आप कामवासना के प्रति अंधे होकर उतरते हैं, तो आप नीचे की तरफ जा रहे हैं। और जब कामवासना के प्रति आप आंख खोलकर सजग होकर खड़े हो जाते हैं, तो आप ऊपर की तरफ जाने लगे। मूर्च्छा अधोगमन है, साक्षीत्व ऊर्ध्वगमन है। साधना का कोई परिपूरक नहीं है, कोई सल्लीटभूट नहीं है, और न कभी हो सकता है। कोई सूक्ष्म उपाय नहीं है, जिससे आप साधना से बच सकें। साधना से गुजरना ही होगा। बिना उससे गुजरे आपका निखार पैदा नहीं होता। बिना उससे गुजरे आपके भीतर वह केंद्र नहीं जन्मता, जिस केंद्र के आधार पर ही जीवन की परम संपदा पाई जा सकती है।

दूसरा प्रश्न :
सात्विक कर्म भी अगर बांधता है, तो उसका फल ज्ञान और वैराग्य क्यों कहा गया है?
क्योंकि ज्ञान और वैराग्य भी बांध सकता है।

निश्चित ही, कृष्ण की बात उलटी मालूम पड़ती है। सात्विक कर्म का फल है, ज्ञान और वैराग्य। और कृष्ण यह भी कहते हैं कि सात्विक कर्म भी बांधता है। लेकिन साधारणत: तथाकथित साधु—संत समझाते हैं कि वैराग्य मुक्त करता है, ज्ञान मुक्त करता है।

तो कृष्ण सात्विक कर्म के जो फल बता रहे हैं, उन्हें तो साधारणत: लोग समझते हैं कि वे मुक्त करने वाले हैं। लेकिन ध्यान रहे, सात्विक कर्म से जो भी पैदा होगा, उसकी भी बांधने की संभावना है। आप ज्ञान से भी बंध सकते हैं।

इसलिए उपनिषद कहते हैं, जो कहता हो मैं आत्मज्ञानी हूं समझना कि वह आत्मज्ञानी नहीं है। जो कहता हो कि मैं वैराग्य को उपलब्ध हो गया हूं समझना कि उसका राग वैराग्य से हो गया है। संन्यास भी गार्हस्थ बन सकता है। आपके हाथ में है। और गृहस्थी भी संन्यास हो सकती है। आपके हाथ में है। अज्ञान भी मुक्तिदायी हो सकता है और ज्ञान भी बंधन बन सकता है। आपके हाथ में है।

उपनिषद कहते हैं कि जो ज्ञानी है, वह तो समझता है, मैं कुछ भी नहीं जानता। साक्रेटीज कहता है कि मुझसे बड़ा अज्ञानी कौन? लेकिन यह अज्ञान मुक्तिदायी है। ऐसे अज्ञान की प्रतीति का अर्थ हुआ, यह आदमी विनम्र हो गया, आखिरी सीमा तक विनम्र हो गया। अहंकार की आखिरी घोषणा, सूक्ष्मतम घोषणा भी इसके भीतर नहीं रही। यह भी नहीं कहता कि मैं जानता हूं। यह कहता है, मुझे कुछ पता नहीं। मैं हूं नहीं, पता भी किसको होगा!

और यह जगत विराट रहस्य है। इसको जानने का दावा वही कर सकता है, जिसके पास आंखें अंधी हों। यह इतना विराट है कि जिसको भी दिखाई पड़ेगा, वह कहेगा, यह रहस्य है। इसका ज्ञान नहीं हो सकता।

ज्ञान का दावा सिर्फ मूढ़ कर सकते हैं, ज्ञानी नहीं कर सकते। ये वक्तव्य विरोधाभासी मालूम पड़ते हैं, क्योंकि हम समझ नहीं पाते। ज्ञानी का अर्थ ही यही है कि जिसने यह जान लिया कि यह रहस्य अनंत है।

अगर रहस्य अनंत है, तो आप दावा नहीं कर सकते कि मैंने जान लिया। क्योंकि जिसको भी हम जान लेंगे, वह अनंत नहीं रह जाएगा। जानना उसकी सीमा बन जाएगी। और जिसको मैं जान लूं र वह मुझसे छोटा हो गया। वह मेरी मुट्ठी में हो गया।

विज्ञान जानने का दावा कर सकता है, क्योंकि क्षुद्र उसकी खोज है। धर्म जानने का दावा नहीं कर सकता। वस्तुत: धार्मिक व्यक्ति जानने की कोशिश करते—करते धीरे— धीरे खुद ही खो जाता है। बजाय इसके कि वह जान पाता है, जानने वाला ही मिट जाता है। इसलिए मैं का कोई भी दावा बांधने वाला हो जाएगा।

और सात्विक कर्म इसीलिए बांध सकता है, क्योंकि सात्विक कर्म में ज्ञान की किरणें उतरनी शुरू होती हैं। मन हलका हो जाता है, शुद्ध हो जाता है। लेकिन मन रहता है। शुद्ध हो जाता है। हल्का हो जाता है, उसका बोझ नहीं होता। सुंदर हो जाता है, सुगंधित हो जाता है। उसमें दुर्गंध नहीं रह जाती। उससे दुख पैदा नहीं होता, उससे सुख पैदा होने लगता है। इस सुख की दशा में जीवन के रहस्य की किरणें उतरनी शुरू होती हैं।

लेकिन मन अभी कायम है, अभी मिट नहीं गया है। अगर आप सजग न हुए, तो मन तत्क्षण घोषणा कर देगा कि मैंने जान लिया। इस घोषणा के साथ ही बंधन शुरू हो गया। और जिससे आप मुक्त हो सकते थे, उसको आपने अपना कारागृह बना लिया। जो आपको पार ले जा सकता था, उसको पकड़कर आप रुक गए।

जैसे कोई नाव को पकड़ ले। नाव मुक्तिदायी है, उस पार ले जा सकती है। कोई नाव को पकड़कर बैठ जाए। नाव में बैठ जाए, फिर नाव से न उतरे। उस किनारे पहुंच जाए, लेकिन इस बीच नाव से मोह पैदा हो जाए। तो फिर नाव भी बंधन बन गई।

मन जब तक शेष है, तब तक किसी भी चीज को बंधन बना सकता है, यह ध्यान रखना जरूरी है। जब मन में पहली दफा उस पारलौकिक की किरणें उतरती हैं, तब यह ध्यान रखना जरूरी है कि यह भी सात्विक कर्म का वर्तन है। इससे अपने को जोड्ने की आवश्यकता नहीं है।

आपके घर की खिड़की पर काच लगे हैं। किसी के घर की खिड़की पर काच लगे हैं, जो बहुत गंदे हैं। उनसे कोई किरण पार नहीं होती। सूरज निकला भी रहता है बाहर, तो भी उनके घर में अंधेरा रहता है। किन्हीं के मकान पर काच हैं, वे थोड़े साफ हैं, उन्हें रोज साफ कर लिया जाता है। सूरज बाहर निकलता है, तो उसकी धुंधली आभा घर के भीतर आती है। किसी की खिडकी पर ऐसे कांच हैं, जो बिलकुल पारदर्शी हैं, कि अगर आप पास जाकर न छुए, तो आपको पता ही नहीं चलेगा कि काच है। बाहर सूरज निकलता है, तो ऐसा लगता है, भीतर ही निकल आया। कांच बिलकुल पूरा पारदर्शी है। फिर भी काच है, और जब तक काच है, तब तक आप घर के भीतर बंद हैं। और जब तक काच है, तब तक जो किरणें आ रही हैं, उनमें कांच की मिलावट है, उनमें काच का हाथ है।

तो अगर इतना शुद्ध काच आपके दरवाजे पर लगा हो कि आपको पता भी न चलता हो कि कांच वहां है, क्रिस्टल लगा हो, तो आप इस भ्रांति में पड़ सकते हैं कि मैं घर के बाहर आ गया, क्योंकि सूरज की किरणें बिलकुल मेरे ऊपर बरस रही हैं। और आप घर के भीतर बैठे हैं!

इसलिए कृष्ण कहते हैं, शुद्ध कर्म भी बांध लेगा, सात्विक कर्म भी बांध लेगा।

सात्विक कर्म शुद्धतम कांच की भांति है। उसको भी तोड़कर बाहर निकल जाना है। तो ही आप घर के बाहर हुए; तो ही आप सूरज के नीचे सीधे हुए। तो जो साक्षात्कार होगा, वह सीधा होगा, उसमें कोई भी माध्यम न रहा।

जब तक माध्यम है, तब तक खतरा है। क्योंकि माध्यम का भरोसा नहीं किया जा सकता। माध्यम कुछ न कुछ बदलाहट तो करेगा ही। शुद्धतम माध्यम भी अशुद्ध होगा, क्योंकि उसकी मौजूदगी थोड़ा—सा अड़चन तो डाल ही रही है।

कई बार तो ऐसा होता है कि तमस में पड़े हुए आदमी को यह खयाल नहीं होता, यह अहंकार नहीं होता, कि मैं कुछ हूं। वह दीनता अनुभव करता है। एक अर्थ में निरअहंकारी होता है। रजस में पडे हुए व्यक्ति को भी ऐसी भांति नहीं होती कि मैं ब्रह्म को उपलब्ध हो गया, कि मैंने सत्य को जान लिया। क्योंकि वह जानता है, मैं कर्मों के जाल में उलझा हूं। ठीक वैसे ही जैसे गंदे कांच, थोड़े साफ कांच वाले आदमी को यह खयाल नहीं होता कि मैं मकान के बाहर खुले आकाश के नीचे खडा हूं। यह खतरा सात्विक कर्म वाले को सर्वाधिक है।

तो जो लोग भी सत्य के करीब आते हैं, वे एक खतरे के करीब आ रहे हैं। वहा चीजें इतनी साफ हो गई हैं कि यह भ्रांति हो सकती है कि मैं बाहर आ गया। और जिसको यह भ्रांति हो गई भीतर बैठे हुए कि मैं बाहर आ गया, वह बाहर जाने का काम बंद कर देगा। और यह काच का कोई भरोसा नहीं है। जो आज शुद्ध है, कल अशुद्ध हो जाएगा;

धूल जम जाएगी। एक क्षण में जो शुद्ध था, अशुद्ध हो सकता है। आज जो सात्विक है, वह कल राजस हो सकता है, परसों फिर तामस हो सकता है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, सात्विक कर्म भी बांधता है। उसके फल तीन हैं, सुख, ज्ञान और वैराग्य।

ध्यान रहे, दुखी आदमी कभी भी पूरा तादात्म्य नहीं कर पाता दुख के साथ। उसे लगता ही रहता है, मैं अलग हूं? मैं दुखी हूं। मैं अलग हूं दुख अलग है।

दुख के साथ कौन तादात्म्य करेगा? हम जानते हैं कि दुख आया है और चला जाएगा, मैं अलग हूं। और हम पूरी कोशिश करते हैं कि दुख जितनी जल्दी चला जाए, उतना अच्छा। लेकिन जब सुख आता है, तब हम तादात्म्य करते हैं।

फकीर जुन्नैद ने कहा है कि दुख में ईश्वर का स्मरण कुछ भी मूल्य नहीं रखता, क्योंकि सभी स्मरण करते हैं। सुख में अगर कोई स्मरण करे, तो उसका कोई मूल्य है।

सुख में कोई स्मरण नहीं करता, क्योंकि सुख के लिए ही तो हम स्मरण करते हैं। जब सुख ही मौजूद हो, तो स्मरण का कोई अर्थ न रहा।

दुख से हम छूटना चाहते हैं, अलग होना चाहते हैं। सुख के साथ हम जुड़ना चाहते हैं, एक होना चाहते हैं। और जिसके साथ हम जुड़ते हैं, एक होते हैं, वही हमारा वास्तविक बंधन बन सकता है।

इसलिए दुख को एकदम अभिशाप मत मानना और सुख को एकदम वरदान मत मानना। अगर समझ हो, तो दुख वरदान हो सकता है। और नासमझी हो, तो सुख अभिशाप हो सकता है। अक्सर यही होता है। क्योंकि नासमझी सभी के पास है; समझदारी ना—कुछ के पास है। जब भी आप सुखी होते हैं, तभी आप पतित होते हैं, तभी तादात्म्य हो जाता है, तब सुख को आप जोर से पकड़ लेते हैं। और जिसको भी आप पकड़ लेते हैं, वही बंधन हो जाता है।

ध्यान रहे, बंधन आपको नहीं बांधते, आपकी पकड़ बांधती है। इसलिए सुख बंधन है; ज्ञान बंधन है। अगर अकड़ आ जाए कि मैं जानता हूं; अगर यह खयाल आ जाए कि मैं ज्ञानी हूं। और आएगा खयाल। क्योंकि अज्ञानी में पीड़ा है। अज्ञानी में अहंकार को चोट है। कोई भी अपने को अज्ञानी नहीं मानना चाहता। अज्ञानी से अज्ञानी आदमी भी अज्ञानी नहीं मानना चाहता। अज्ञानी भी अपने ज्ञान के दावे करता है। गलत से गलत आदमी भी अपने ठीक होने के उपाय खोजता है।

मुल्ला नसरुद्दीन का बेटा एक बंदूक ले आया। वह निशाना लगा रहा था, सीख रहा था। उसके निशाने पचास प्रतिशत सही पड़ते थे। नसरुद्दीन ने उसे डांटा और कहा कि यह तू क्या कर रहा है? निशाने कम से कम नब्बे प्रतिशत के ऊपर ठीक जाने चाहिए। यह भी कोई निशानेबाजी है? हमारा जमाना था, तब मैं सौ प्रतिशत निशाने ठीक मारता था। उसके लड़के ने कहा, आप एक कोशिश करके देखें, मैं भी देखूं।

तब जरा नसरुद्दीन मुश्किल में पड़ा। क्योंकि उसे ठीक से बंदूक पकड़ना भी नहीं आता था। लेकिन बाप बेटे से ज्यादा जानता है, यह दावा छोड़ नहीं सकता किसी भी मामले में। उसने बंदूक ली हाथ में। इस बहाने कि माडल थोड़ा नया मालूम पड़ता है, उसने लड़के से पूछा कि कैसे उपयोग में लाया जाता है? क्योंकि मेरे जमाने में दूसरे ढंग के माडल चलते थे। मगर निशाना तो मेरा बेचूक है।

तब उसने निशाना लगाया। एक चिड़िया आकाश में उड़ रही थी। उसने निशाना मारा, बड़ी मेहनत से, बड़ी सोच—समझकर, सारी ताकत और समझ लगाकर। लेकिन ताकत और समझ से निशाने का कोई संबंध नहीं है। जिसने निशाना नहीं लगाया है, यह करीब—करीब असंभव है कि निशाना लग जाए उड़ती चिड़िया पर। गोली तो चल गई, चिड़िया उड़ती रही। नसरुद्दीन ने कहा, देख, बेटा देख; चमत्कार देख। मरी हुई चिड़िया उड़ रही है!

हमारा अहंकार सब जगह खड़ा है। भूल भी हो जाए, तो हम उसे लीप—पोतकर ठीक कर लेते हैं।

रवींद्रनाथ के हस्तलिखित पत्र प्रकाशित हुए हैं। वे कविता भी लिखते थे तो कहीं अगर कोई शब्द में भूल हो जाए तो उसको काटना—पीटना पड़े, तो वे काटने—पीटने की जगह, जहां काटते थे, वहा कुछ डिजाइन बना देंगे, कुछ चित्र बना देंगे—कटा हुआ नहीं मालूम पड़े। जहां—जहां भूल होगी, शब्द कोई काटना पड़ेगा, तो उसके ऊपर डिजाइन बना देंगे, कुछ रंग भर देंगे, चित्र बना देंगे। तो उनका पत्र ऐसा मालूम पड़ेगा कि उसमें कहीं कोई भूल—चूक नहीं है। ऐसा लगेगा कि शायद सजाया है, डेकोरेट किया है।

मगर यह आदमी के मन की वृत्ति है। सब जगह सजा रहा है। कहीं भी कुछ ऐसा हो जिससे भूल पता हो, तो छिपा रहा है। हमारा अहंकार स्वीकार नहीं करना चाहता कि कोई भी कमी हम में है। अज्ञानी भी दावा करता है ज्ञान का। शायद अज्ञानी ही दावा करता है ज्ञान का। तो जब ज्ञान की पहली किरण उतरनी शुरू होगी, तो आपका सारे जन्मों का इकट्ठा जो सूक्ष्म अहंकार है, वह उसे पकड़ने की कोशिश करेगा।

जिब्रान ने एक छोटी—सी कहानी लिखी है। जिब्रान ने लिखा है कि जब भी इस जगत में कोई नया आविष्कार होता है, तो देवता और शैतान दोनों ही उस पर झपट्टा मारते हैं कब्जा करने को। और अक्सर ही ऐसा होता है कि शैतान उस पर पहले कब्जा कर लेता है, देवता सदा पीछे रह जाते हैं। देवताओं को तो खयाल ही तब आता है, जब शैतान निकल पड़ता है। और शैतान तो पहले से ही तैयार है।

जब भी आपके जीवन में कोई घटना घटेगी, तो आपके भीतर जो बुरा हिस्सा है, वह तत्क्षण उस पर कब्जा करना चाहेगा। इसके पहले कि अच्छा हिस्सा दावा करे, बुरा हिस्सा उस पर कब्जा कर लेगा।

जैसे ही ज्ञान की किरण उतरेगी, वैसे ही अहंकार पकड़ेगा कि मैंने जान लिया। और इस वक्तव्य में ही वह ज्ञान की किरण खो गई और अंधकार हो गया। इस अहंकार के भाव में ही, वह जो उतर रहा था, उसका स्रोत बंद हो गया। और जब तक यह भाव मिटेगा नहीं, तब तक वह स्रोत बंद रहेगा।

सैकड़ों—हजारों लोगों पर ध्यान के प्रयोग करने के बाद मैं कुछ नतीजों पर पहुंचा हूं। उनमें एक यह है कि मेरे पास लोग आते हैं; जब उन्हें पहला अनुभव होता है ध्यान का, तो उनकी प्रफुल्लता की कोई सीमा नहीं होती। उनका पूरा हृदय नाचता होता है। लेकिन जब भी वे मुझे आकर खबर देते हैं और उनकी प्रफुल्लता मैं देखता हूं तो मैं डरता हूं। मैं जानता हूं कि अब यह गया। अब कठिनाई शुरू हो जाएगी। क्योंकि अब तक इसे कोई अपेक्षा न थी। अब तक इसे कुछ पता न था। अनएक्सपेक्टेड, अपेक्षित न था, घटना घटी है।

और यह घटना तभी घटती है, जब अपेक्षा न हो; अपेक्षा होते से ही बाधा पड जाती है। अब यह कल से रोज प्रतीक्षा करेगा। ध्यान इसका व्यर्थ होगा अब। अब यह ध्यान में बैठेगा जरूर, लेकिन पूरा नहीं बैठेगा। मन तो लगा रहेगा उस घटना में, जो कल घटी थी। और निश्चित रूप से वह आदमी एक—दो दिन में मेरे पास आता है, कहता है कि वह बात अब नहीं हो रही! चित्त बड़ा दुखी है।

वह जो किरण उठती थी, इसने मार डाली। उसकी बात ही नहीं उठानी थी। उसको पकड़ना ही नहीं था। सिर्फ धन्यवाद देना था परमात्मा को कि तेरी कृपा है। क्योंकि मैं तो कुछ जानता भी नहीं था। हुआ, तू जान। और भूल जाना था। दूसरे दिन वह किरण और भी गहरी उतरती।

जो भी जीवन में आए, उसे भूलना सीखना पड़ेगा; अन्यथा वही बंधन हो जाएगा। फिर बड़ी कठिनाई हो जाती है। कई दफा तो सालों लग जाते हैं। जब तक कि वह आदमी भूल ही नहीं जाता उस घटना को, तब तक दुबारा किरण नहीं उतरती। और वह जितनी कोशिश करता है, उतना ही कठिन हो जाता है। क्योंकि कोशिश से वह आई नहीं थी। इसलिए कोशिश से उसका कोई संबंध नहीं है। वह तुम्हारे बिना प्रयत्न के घटी थी।

तुम भोले — भाले थे, तुम सरल थे, तुम कुछ मांग नहीं रहे थे। उस निर्दोष क्षण में ही वह संपर्क हुआ था। अब तुम मांग रहे हो। अब तुम चालाक हो। अब तुम भोले— भाले नहीं हो। अब तुमने गणित बिठा लिया है। अब तुम कहते हो

कि अब ये तीस मिनट हो गए ध्यान करते, अभी तक नहीं हुआ! अब तुम मिनट—मिनट उसकी आकांक्षा कर रहे हो। तो तुम्हारा मन बंट गया। अब तुम ध्यान में नहीं हो। अब तुम अनुभव की आकांक्षा कर रहे हो।

इसलिए ध्यान रखें, अनुभव को जो पकड़ेगा, वह वंचित हो जाएगा। और सात्विक अनुभव इतने प्यारे हैं कि पकड़ना बिलकुल सहज हो जाता है। छोड़ना बहुत कठिन होता है, पकड़ना बिलकुल सहज हो जाता है।

झेन फकीर, उनका शिष्य जब भी आकर उनको खबर देगा कि उसे कुछ अनुभव हुआ, तो उसकी पिटाई कर देते हैं। डंडा उठा लेते हैं। जैसे ही कहेगा कि कुछ अनुभव हुआ है कि वे टूट पड़ेंगे रस पर।

बड़ा दया का कृत्य है। हमें लगता है, बड़ी कठोर बात है। बड़ा दया का कृत्य है। उनकी यह मार—पीट, शिष्य को खिड़की से उठाकर फेंक देना—कई बार ऐसा हुआ कि शिष्य की टल टूट गई, हाथ टूट गया—मगर वह कोई महंगा सौदा नहीं है।

जैसे ही उसने अनुभव को पकड़ा कि उन्होंने उसको इतना दुख दे दिया कि वह अनुभव जैसे इस दुख ने पोंछ दिया। अब वह दुबारा अनुभव को पकड़ने में जरा संकोच करेगा। और दुबारा गुरु के पास तो आकर कहेगा ही नहीं कि ऐसा हो गया। और जब भी उसको दुबारा पकड़ने का खयाल होगा, तब उसको याद आएगा कि गुरु ने जो व्यवहार किया था, वह बताता है कि मेरी पकड़ में कहीं कोई बुनियादी भूल थी। क्योंकि गुरु बिलकुल पागल हो गया था। जो सदा शांत था, जिसने कभी अपशब्द नहीं बोला था, उसने डंडा उठा लिया था। उसने मुझे खिड़की के बाहर फेंक दिया था। कोई भयंकर भूल हो गई है।

सात्विक अनुभव ज्ञान देगा। ज्ञान से अहंकार जगेगा। सात्विक अनुभव वैराग्य देगा, वैराग्य से बड़ी अकड़ पैदा होगी।

इसलिए संन्यासी जैसी अकड़ सम्राटों में भी नहीं होती। संन्यासी जिस ढंग से चलता है, उसको देखें। सम्राट भी क्या चलेंगे! क्योंकि वह यह कह रहा है कि लात मार दी। यह सब संसार तुच्छ है, दो कौड़ी का है। हम इसे कोई मूल्य नहीं देते। तुम्हारे महल ना—कुछ हैं। तुम्हारे स्वर्ण—शिखर, तुम्हारे ढेर हीरे—जवाहरातों के, कंकड—पत्थर हैं। हम उस तरफ ध्यान नहीं देते। हमने सब छोड़ दिया। वैराग्य उदय हो गया है।

यह वैराग्य खतरनाक है। यह तो एक नया राग हुआ। यह विपरीत राग हुआ। यह राग से मुक्ति न हुई। यह तो वैराग्य को ही पकड़ लिया तुमने!

मन की आदत पकड़ने की है। इससे कोई संबंध नहीं कि आप हत्या उसे पकड़ाते हैं। उसकी आदत पकड़ने की है; वह पकड़ने का यंत्र है। आप धन कहो, वह धन पकड़ लेगा। दान कहो, दान पकड़। नेगा। भोग कहो, भोग पकड़ लेगा। त्याग कहो, त्याग पकड़। नेगा। आब्जेक्ट से कोई संबंध नहीं है। कुछ भी दे दो, मन पकड़। भोगा। और जिसको भी मन पकड़ लेगा, वही बंधन हो जाएगा। सैकड़ों कथाएं हैं वैरागियों की, जो अपने वैराग्य के कारण गन्मों —जन्मों तक मुक्त न हो पाए। क्योंकि अकड़ उनकी भारी है।

दुर्वासा के वैराग्य में कोई भी कमी नहीं है। लेकिन वह वैराग्य सिवाय क्रोध के कुछ भी पैदा नहीं करता है।

दुर्वासा का वैराग्य क्रोध क्यों पैदा करता है? क्योंकि दुर्वासा का वैराग्य भीतर अहंकार बन गया। अहंकार पर जब चोट लगती है, तो क्रोध पैदा होता है। अगर भीतर अहंकार न हो, तो क्रोध के पैदा होने का कोई कारण नहीं है।

तो हम ऋषि—मुनियों की कथाएं पढ़ते हैं कि वे अभिशाप दे रहे हैं। जिनको उन्होंने अभिशाप दिया है, वे शायद मुक्त भी हो गए हों। लेकिन जिन्होंने अभिशाप दिया है, वे अभी भी यहीं—कहीं भटक रहे होंगे संसार में। उनके मुक्त होने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए कृष्ण कहते हैं, वैराग्य, ज्ञान, सुख, ये सभी बंधन हो सकते हैं।

इसलिए तम से तो मुक्त होना ही है, रज से तो मुक्त होना ही है, सत्व से भी मुक्त होना है। असल में ऐसी कोई चीज न बचे भीतर, जिससे बंधने का उपाय रह जाए। सिर्फ शुद्ध चेतना ही रह जाए। कोई गुण न बचे, निर्गुणता रह जाए। उसी को गुणातीत कृष्ण कहते हैं। वही लक्षण है परम संन्यस्त का, वीतराग का।

तीसरा प्रश्न :
आप किस गण—प्रधान वाले साधक को संन्यस्त कहते हैं? क्या संन्यास लेते ही किसी एक गुण की प्रधानता होने लगती है?
गुण से संन्यास का संबंध ही नहीं है। निर्माता से संन्यास का संबंध है। संन्यास भीतर की— भाव दशा है। न पकड़ने की कला का नाम संन्यास है। नहीं पकड़ेंगे कुछ भी। बिना पकड़े रहेंगे।

पकड़ने का नाम गृहस्थ है। घर बनाएंगे चारों तरफ। कुछ पकडेंगे। बिना सहारे नहीं जी सकेंगे। कोई आलंबन चाहिए। भविष्य की सुरक्षा चाहिए। संपदा चाहिए कुछ! चाहे वह संपदा पुण्य की हो, शुभ कर्मों की हो, सत्य की हो।

संन्यस्त का अर्थ है, नहीं कोई घर बनाएंगे भीतर; नहीं कोई संपदा भीतर इकट्ठी करेंगे; कोई परिग्रह न जुटाएंगे; भविष्य की सोचेंगे ही नहीं। इस क्षण जीएंगे। और इस क्षण चेतना की भांति जीएंगे। और इतना ही जानेंगे कि मैं एक साक्षी हूं; एक देखने वाला हूं एक द्रष्टा हूं।

संन्यस्त गुणातीत भाव है। और जब तक वह पैदा न हो जाए, तब तक सब संन्यास ऊपर—ऊपर है। ऊपर—ऊपर है, सिर्फ आकांक्षा की खबर देता है कि आप खोज कर रहे हैं। उपलब्धि की खबर नहीं देता।

अच्छा है कि खोज कर रहे हैं। लेकिन यह मत मानकर बैठ जाना कि संन्यस्त हो गए हैं। जब तक निर्गुणता की प्रतीति न हो, तब तक भीतर संन्यासी का जन्म नहीं हुआ। तब तक आप यात्रा पर हैं। तब तक आप खोज रहे हैं।

यह खोज गुणों के सहारे होगी। लेकिन खोज का जो अंतिम फल है, वह गुणों के पार चला जाता है।

मैं संन्यस्त किसी गुण—प्रधान व्यक्ति को नहीं कहता, सत्वगुण—प्रधान व्यक्ति को भी संन्यासी नहीं कहता। साधु कहता हूं। साधु का अर्थ होता है कि सत्व की प्रधानता है, शुभ की प्रधानता है। अच्छे उसके कर्म हैं। अच्छा उसका व्यवहार है। अच्छा उसका भाव है। लेकिन अच्छे से बंधा है। जंजीर है उसके हाथों पर, फूलों की है। जंजीर है, सोने की है, लोहे की जंजीर नहीं है।

लेकिन सोने की जंजीर, में एक खतरा है कि मन होता है मानने का कि वह आभूषण है। लोहे की जंजीर, तो तोड्ने की इच्छा पैदा हो जाती है। सोने की जंजीर, बचाने की इच्छा पैदा होती है। और अगर कोई कहे कि यह जंजीर है, तो हम कहेंगे, क्षमा करो, यह जंजीर नहीं है, यह आभूषण है।

साधुता सत्वगुण तक संबंधित है। संन्यस्तता गुणातीत है। संन्यस्त का अर्थ है, जिसने अब अपने को अपने शरीर, अपने मन से जोड़ना छोड़ दिया। शरीर घर है, मन घर है, इन घर से जो छूट गया और जो अब भीतर के चैतन्य में थिर हो गया है। और जो एक ही भाव रखता है कि मेरा होना सिर्फ चेतना मात्र है, सिर्फ होश मेरा स्वभाव है। और जहां भी होश मैं खोता हूं वहीं मैं स्वभाव खो रहा हूं और संन्यास से च्युत हो रहा हूं।

अब हम सूत्र लें।
अर्जुन ने पूछा कि हे पुरुषोत्तम, इन तीनों गुणों से अतीत हुआ पुरुष किन—किन लक्षणों से युक्त होता है? और किस प्रकार के आचरणों वाला होता है? तथा हे प्रभो, मनुष्य किस उपाय से इन तीनों गुणों से अतीत होता है?

अर्जुन की जिज्ञासा करीब—करीब सभी की जिज्ञासा है। हम भी जानना चाहते हैं कि इन तीनों गुणों से अतीत हुआ पुरुष किन लक्षणों से युक्त होता है। अर्जुन ऐसा पूछता है कृष्ण से, सारिपुत बुद्ध से पूछता है; गौतम महावीर से पूछते हैं। निरंतर, जब भी कोई जागरूक पुरुष हुआ है, तो उसके शिष्यों ने निश्चित ही पूछा है कि लक्षण क्या है? वह जिस

दिव्य चेतना के अवतरण की आप बात करते हैं, जिस भगवत्ता की आप बात करते हैं, उस भगवत्ता का लक्षण क्या है? हम कैसे पहचानेंगे कि कोई उस भगवत्ता को उपलब्ध हो गया? उसका आचरण कैसा होगा?

इस प्रश्न को ठीक से समझना जरूरी है।

पहली तो बात यह है कि लक्षण तो बाहर से बताए जा सकते हैं। और बाहर की सब पहचान कामचलाऊ होगी। क्योंकि दो गुणातीत व्यक्तियों के बाहर के लक्षण एक जैसे नहीं होंगे। इससे बड़ी अड़चन पैदा हुई है।

जिन्होंने महावीर से पूछा था कि उसके लक्षण क्या हैं, वे कृष्ण को गुणातीत नहीं मान सकते। क्योंकि महावीर ने वे लक्षण बताए, जो महावीर ने अनुभव किए हैं, जो महावीर के जीवन में आए। तो महावीर का भक्त जानता है कि वह जो गुणातीत व्यक्ति है, वह वस्त्र भी त्याग कर देगा, वह दिगंबर होगा।

इसलिए दिगंबरत्व लक्षण है गुणातीत का। दिगंबर परंपरा में दिगंबरत्व लक्षण है। जब तक वस्त्र हैं, तब तक कोई मोक्ष में प्रवेश नहीं कर सकता। क्योंकि वस्त्र को पकड़ने का मोह बता रहा है कि तुम अभी कुछ छिपाना चाहते हो। गुणातीत कुछ भी नहीं छिपाता। वह खुली किताब की तरह है।

तो महावीर से जिन्होंने गुणातीत के लक्षण समझे थे, वे बुद्ध को भी गुणातीत नहीं मानते। बुद्ध उसी समय जीवित थे। एक ही जगह मौजूद थे। बिहार में एक ही प्रांत में मौजूद थे। कभी—कभी एक ही गांव में एक साथ भी मौजूद थे।

महावीर को मानने वाला बुद्ध को गुणातीत नहीं मानता, स्थितप्रज्ञ नहीं मानता, क्योंकि बुद्ध कपड़ा पहने हुए हैं। वह उतनी अड़चन है। इसलिए महावीर को तो जैन भगवान कहते हैं; बुद्ध को महात्मा कहते हैं। करीब—करीब हैं। कभी न कभी वस्त्र भी छूट जाएंगे और किसी जन्म में यह व्यक्ति भी तीर्थंकरत्व को उपलब्ध हो जाएगा। लेकिन अभी नहीं है।

कृष्ण को तो मानने का कोई उपाय ही नहीं रहेगा। राम को तो किसी तरह नहीं माना जा सकता। मोहम्मद या क्राइस्ट को किसी तरह नहीं माना जा सकता कि ये गुणातीत हैं। अगर महावीर से लक्षण सीखे हैं, तो कठिनाई आएगी।

अगर आपने कृष्ण से लक्षण सीखे हैं, तो भी कठिनाई आएगी। क्योंकि लक्षण कामचलाऊ हैं। वास्तविक अनुभूति तो स्वयं जब तक कोई गुणातीत न हो जाए, तब तक नहीं होगी। लेकिन यह कहना फिजूल है पूछने वाले से, कि जब तू गुणातीत हो जाएगा, तब जान लेगा। वह यह कहता है कि मैं नहीं हूं गुणातीत, इसीलिए तो पूछ रहा हूं। तो उसके पूछने को तृप्त तो करना ही होगा।

इसलिए गौण, कामचलाऊ लक्षण हैं। वे लक्षण भिन्न—भिन्न हो सकते हैं। अलग—अलग गुणातीत लोगों में भिन्न—भिन्न रहेंगे। उनके भीतर की दशा तो एक है। लेकिन उनके बाहर की अभिव्यक्ति अलग— अलग है। वह हजार कारणों पर निर्भर है।

पर हमारा मन होता है पूछने का, कि लक्षण क्या है? क्योंकि हम ऊपर से चीजों को जांचना चाहते हैं। हम जानना चाहते हैं कि कौन आदमी ज्ञान को उपलब्ध हो गया? हम कैसे पहचानें? कोई सींग तो निकल नहीं आते कि अलग से दिखाई पड़ जाए कि यह आदमी ज्ञान को उपलब्ध हो गया। वह आदमी आप ही जैसा आदमी होता है। सच तो यह है कि वह अति साधारण हो जाता है। क्योंकि असाधारण होने का जो पागलपन है, वह अहंकार का हिस्सा है। वैसा आदमी अति साधारण हो जाता है। विशिष्टता की तलाश उसकी बंद हो जाती है।

सभी साधारण लोग असाधारण होने की खोज कर रहे हैं। इसलिए जो वस्तुत: असाधारण है, वह बिलकुल साधारण जैसा होगा।

झेन फकीरों ने उसके गुणों में एक गुण गिनाया है, मोस्ट आर्डिनरी। अगर आप झेन फकीरों का गुण सुन लें, तो आपको बड़ी कठिनाई होगी। क्योंकि झेन फकीर कहते हैं, गुणातीत को तो पहचानना ही मुश्किल होगा, यही उसका पहला लक्षण है। क्योंकि वह बिलकुल साधारण होगा। उसको विशिष्ट होने का कोई मोह नहीं है। वह दिखाने की कोशिश नहीं करेगा कि मैं विशिष्ट हूं तुमसे ज्यादा जानता हूं कि तुमसे ज्यादा आचरण वाला हूं। वह यह कोशिश नहीं करेगा।

एक झेन फकीर हुआ, नान—इन। वह अपने गुरु के पास गया। वह गुरु की तलाश कर रहा था। पर उसके मन में एक सुनी हुई बात थी कि जो दावा करे कि मैं गुरु हूं, वहां से भाग खड़े होना। क्योंकि झेन फकीर कहते रहे हैं सदियों से कि वह जो गुरु होने योग्य है, वह दावा नहीं करेगा। वह उसका लक्षण है।

यह नान—इन खोजता था। बहुत गुरुओं के पास गया। लेकिन वे सब दावेदार थे और सब ने कोशिश की कि बन जाओ शिष्य। वह वहा से भाग खड़ा हुआ।

फिर एक दिन एक जंगल से गुजरते हुए एक गुफा के द्वार पर उसे बैठा हुआ एक फकीर दिखाई पड़ा। वह थका—मादा था। वह फकीर अति साधारण मालूम हो रहा था। न कोई गरिमा थी, न कोई विराट तेज प्रकट हो रहा था। न कोई आभामंडल दिखाई पड़ रहा था, जैसा कि कृष्ण, बुद्ध, महावीर के सिर के चारों तरफ बना होता है। ऐसा कुछ भी नहीं था। एक साधारण आदमी बैठा था चुपचाप; कुछ कर भी नहीं रहा था।

इसको प्यास लगी थी, भूख लगी थी। यह रास्ता भटक गया था। तो उसके पास गया। जैसे—जैसे पास गया, वैसे—वैसे लगा कि उसके पास जाने से इसके भीतर कुछ शांत होता जा रहा है। यह थोड़ा चौंका। वह आदमी—जब पास गया, तो पता चला—वह आंख बंद किए बैठा है। वह इतना शांत था कि उससे यह कहकर कि मुझे प्यास लगी है, बाधा देना इसे उचित नहीं मालूम पड़ा। तो यह चुपचाप उसके पास बैठ गया कि जब वह आंख खोलेगा, तब मैं बात कर लूंगा। लेकिन उसके पास बैठे—बैठे यह ऐसा शांत होने लगा और इसकी आंख बंद हो गई। सांझ का वक्त था। पूरी रात बीत गई।

सुबह वह फकीर उठा। उस फकीर ने यह भी नहीं पूछा कि कैसे आए? कहां से आए? कौन हो? वह उठा। उसने चाय बनाई। चाय पी फकीर ने। उसने इससे भी नहीं कहा, नान—इन से, कि तू एक चाय पी ले। फिर अपनी जगह आकर आंख बंद करके बैठ गया।

यह नान—इन भी उठा। जिस भांति फकीर ने चाय बनाई थी, इसने भी चाय बनाई। पी, और यह जाकर अपनी जगह बैठ गया। ऐसा सात दिन चला। सातवें दिन उस फकीर ने कहा कि मैं तुझे स्वीकार करता हूं। वह आदमी नान—इन का गुरु हो गया।

नान—इन ने उससे पूछा कि तुमने मुझे क्यों स्वीकार किया? तो उसने कहा, गुरु वही गुरु होने योग्य है, जो दावा न करे, और शिष्य भी वही शिष्य होने योग्य है, जो दावा न करे। तू चुप रहा और तूने यह नहीं कहा कि हम शिष्य होने आए हैं। और तू चुपचाप अनुकरण करता रहा छाया की तरह। सात दिन, जो मैंने किया, तूने किया। तूने यह भी नहीं पूछा कि यह करना कि नहीं करना।

जब वह उठकर बाहर घूमने जाए, तो यह भी बाहर चला जाए। वह चक्कर लगाए, यह भी चक्कर लगाए झोपड़े का। जब वह बैठ जाए, तो यह भी बैठ जाए।

पर नान—इन ने कहा है कि सात दिन के बाद कुछ पाने को भी नहीं बचा। सात दिन उसके साथ चुपचाप होना काफी था। मोस्ट आर्डिनरी, एकदम साधारण आदमी! वहा गुरु मिल गया।

हर परंपरा अलग लक्षण गिनाती है। हर परंपरा को लक्षण गिनाने पड़े हैं, क्योंकि पूछने वाले लोग मौजूद हैं। पूछने में थोड़ी भूल है। लेकिन स्वाभाविक भूल है। क्योंकि हम जानना चाहते हैं, वैसा पुरुष कैसा होगा।

अर्जुन पूछता है, तीनों गुणों से अतीत हुआ पुरुष किन—किन लक्षणों से युक्त होता है?

लक्षण का मतलब है, जिन्हें हम बाहर से पहचान सकें। जिनसे हम कुछ अंदाज लगा सकें। पर इससे एक दूसरा खतरा।

एक खतरा तो यह पैदा हुआ कि सब धर्मों ने अलग लक्षण गिनाए। क्योंकि लक्षण गिनाने वाले ने जो लक्षण अपने जीवन में पाए थे, वही उसने गिनाए। इसलिए सब धर्मों में एक वैमनस्य पैदा हुआ। और एक के तीर्थंकर को दूसरा अवतार नहीं मान सकता। और एक के क्राइस्ट को दूसरा क्राइस्ट नहीं मान सकता। एक के पैगंबर को दूसरा पैगंबर नहीं मान सकता। क्योंकि लक्षण अलग हैं। और लक्षण मेल नहीं खाते हैं।

दूसरा खतरा यह हुआ, जो इससे भी बड़ा है, वह यह कि लक्षणों के कारण कुछ लोग लक्षण आरोपित कर लेते हैं। तब वे दूसरों को तो धोखा देते ही हैं, खुद भी धोखे में पड़ जाते हैं। क्योंकि लक्षण पूरे के पूरे आरोपित किए जा सकते हैं।

अगर यह लक्षण हो कि साधु पुरुष मौन होगा, तो आप मौन हो सकते हैं। गुणातीत पुरुष बोलेगा नहीं, तो न बोलने में कोई बहुत बड़ी अड़चन नहीं है। गुणातीत पुरुष, जो भी करने का हम लक्षण बना लें, वह लक्षण लोग नकल कर सकते हैं।

और ध्यान रहे, नकल में कोई अड़चन नहीं है। कोई भी अड़चन नहीं है। महावीर नग्न खड़े हैं, तो सैंकड़ों लोग नग्न खड़े हो गए। लेकिन नग्नता से कोई दिगंबरत्व तो पैदा नहीं होता। दिगंबरत्व शब्द का अर्थ है कि आकाश ही मेरा एकमात्र वस्त्र है। मैं और किसी चीज से ढंका हुआ नहीं हूं। जैसे मैं पूरा अस्तित्व हो गया हूं। सिर्फ आकाश ही मेरा वस्त्र है।

लेकिन आप नंगे खड़े हो सकते हैं। फिर उसमें तरकीबें निकालनी पड़ती हैं। दिगंबर जैन मुनि जहां ठहरता है, तो भक्तों को इंतजाम करना पड़ता है। पुआल बिछा देते हैं उसके कमरे में। वह नहीं कहता कि बिछाओ। क्योंकि वह कहे, तो लक्षण से नीचे गिर गया। पुआल बिछा देते हैं। वह पुआल में छिपकर सो जाता है।

क्योंकि किसी तरह का ओढ़ना नहीं कर सकते उपयोग। किसी तरह का बिछौना उपयोग नहीं कर सकते। कमरे को चारों तरफ से बिलकुल बंद कर देते हैं।

महावीर किसी कमरे में नहीं ठहरे। न किसी ने कभी पुआल बिछाई। और कोई बिछाता भी तो वे पुआल में छिपते नहीं। क्योंकि बिछाने वाला बिछा रहा होगा, आपको उसमें छिपने की कोई जरूरत नहीं है। और कौन कह रहा है कि आप कमरे में रहो? पुआल भरी है, आप बाहर चले जाओ।

लेकिन यह आदमी बेचारा सिर्फ नग्न हो गया है। इसको वस्त्रों की अभी जरूरत थी। इसको सर्दी लगती है, गर्मी लगती है। और इसमें कोई एतराज नहीं है कि इसको लगती है। कठिनाई यह है कि नाहक एक लक्षण को आरोपित करके चल रहा है।

महावीर ने कहा है कि तुम भिक्षा मांगने जाओ। तुम किसी द्वार पर पहले से खबर मत करना कि मैं भिक्षा लेने आऊंगा। क्योंकि तुम्हारे निमित्त जो भोजन बनेगा, उसमें जितनी हिंसा होगी, वह तुम्हारे ऊपर चली जाएगी। तो तुम तो अनजाने द्वार पर खडे हो जाना। जो उसके घर बना हो, वह दे दे। तुम्हारे भाग्य में होगा, तो कोई दे देगा। नहीं भाग्य में होगा, तो तुम भूखे रहना, वापस लौट आना, बिना किसी मन में बुराई को लिए, कि लोग बुरे हैं इस गांव के, किसी ने भिक्षा नहीं दी।

और महावीर ने एक शर्त लगा दी, कि अगर तुम्हारे भाग्य में है, तो तुम पक्की कसौटी कर लेना। तो तुम' एक चिह्न लेकर निकलना सुबह ही। उठते ही सोच लेना कि आज भिक्षा उस द्वार से मीणा।, जिस द्वार पर एक बैलगाड़ी खड़ी

हो। बैलगाड़ी में गुड़ भरा हो। गुड़ में एक बैल सींग लगा रहा हो। और सींग में गुड़ लग गया हो। ऐसा कोई भी एक लक्षण ले लेना।

यह महावीर का एक लक्षण था, जिसमें वे तीन महीने तक गांव में भटके और भोजन नहीं मिला। अब यह बड़ा अजीब—सा, जो भाव आ गया सुबह, वह..। अब यह बड़ा कठिन है कि किसी घर के सामने बैलगाड़ी में भरा हुआ गुड़ हो। फिर कोई बैल उसमें सींग लगा रहा हो। और फिर उस घर के लोग देने को राजी हों। कोई उनकी मजबूरी तो है नहीं। उन्होंने कोई कसम खाई नहीं कि देंगे ही।

तो महावीर कहते थे, भाग्य में नहीं है, तुम वापस लौट आना। गुणातीत खुद से नहीं जीता, गुणों से जीता है। प्रकृति को बचाना होगा, तो बचा लेगी।

और एक दिन—स्व दिन जरूर ऐसा हुआ। तीन महीने बाद हुआ, लेकिन बराबर ऐसा हुआ कि....।

अभी भी जैन दिगंबर मुनि ऐसा करता है। लेकिन उसके फिक्स लक्षण हैं। दो—चार हर मुनि के फिक्स हैं। सब भक्त जानते हैं। वे चारों लक्षण अपने घर के सामने खड़े कर देते हैं। लक्षण ऐसे सरल हैं, घर के सामने केला लटका हो। एक केला लटका हो घर के सामने, वहा से भिक्षा ले लेंगे। तो सब मुनियों के लक्षण पता हैं।

महावीर ने यह नहीं कहा कि तुम अपने लक्षण निश्चित कर लेना। तुम रोज सुबह जो तुम्हारा पहला भाव हो, वह लेकर निकलना। इनके सब तय हैं। तो उलटी हिंसा पच्चीस गुनी ज्यादा होती है। क्योंकि एक घर से जो भिक्षा ले लेते, तो पच्चीस घर, जितने उनके भक्त गांव में होंगे, सब बनाएंगे और सब अपने घर के सामने लक्षण लटकाएंगे। और उनका लक्षण रोज मिलता है। तीन महीने तक चूकने की किसी को नौबत आती नहीं। रोज मिलेगा ही। लक्षण ही वे लेते हैं, जो सबको पता हैं। तो नकल हो सकती है।

एक बौद्ध भिक्षु भिक्षा मांगने गया। एक कौआ मास का टुकड़ा लेकर उड़ता था, वह छूट गया उसके मुंह से। वह भिक्षापात्र में गिर गया। संयोग की बात थी। बुद्ध ने भिक्षुओं को कहा है कि जो भी तुम्हारे भिक्षापात्र में डल जाए, वह तुम खा लेना, फेंकना मत। बुद्ध को भी नहीं सूझा होगा कि कभी कोई कौआ मांस का टुकड़ा गिरा देगा।

अब इस भिक्षु के सामने सवाल खड़ा हुआ कि अब क्या करना! क्योंकि बुद्ध कहते हैं.। मांसाहार करना कि नहीं? गिरा तो है पात्र में ही। नियम के बिलकुल भीतर है। तो उस भिक्षु ने जाकर बुद्ध को कहा कि क्या करूं? मांस का टुकड़ा पड़ा है, इसे फेंकुं तो नियम का उल्लंघन होता है। क्योंकि भोजन का तिरस्कार हुआ। मैंने मांगा भी नहीं था, कौए ने अपने आप डाला है।

बुद्ध ने सोचा होगा। बुद्ध ने सोचा होगा, कौए रोज—रोज तो डालेंगे नहीं। कौओं को ऐसी क्या पड़ी है कि भिक्षुओं को परेशान करें। यह संयोग की बात है। तो बुद्ध ने कहा कि ठीक है; जो भिक्षापात्र में पड़ जाए, ले लेना। क्योंकि अगर यह कहा जाए कि फेंक दो इसे, तो अब एक दूसरा नियम बनता है कि भिक्षापात्र में जो पसंद न हो, वह फेंकना फिर। फिर चुनाव शुरू होगा। फिर भिक्षु वही जो पसंद है, रख लेगा, बाकी फेंक देगा। इससे व्यर्थ भोजन जाएगा। और भिक्षु के मन में चुनाव पैदा होगा।

तो आज चीन में, जापान में मांसाहार जारी है। क्योंकि भक्त मांस डाल देते हैं भिक्षापात्र में। और सब भक्त जानते हैं कि भिक्षु मांस पसंद करते हैं। वह कौए ने जो डाला था, रास्ता खोल गया। सारा चीन, सारा जापान, लाखों बौद्ध भिक्षु मांसाहार करते हैं। क्योंकि वे कहते हैं कि नियम है, जो भिक्षापात्र में डाला जाए, उसे छोड़ना नहीं।

आदमी बेईमान है। वह नकल भी कर सकता है। नकल से तरकीब भी निकाल सकता है। सब उपाय खोज सकता है। लक्षण की वजह से एक उपद्रव हुआ है कि हम लक्षण को आरोपित कर सकते हैं, हम उसका अभिनय कर सकते हैं।

पर हमारे मन में उठता है कि क्या लक्षण होंगे।

कृष्ण ने जो लक्षण बताए हैं, वे कीमती हैं। यद्यपि बाहरी हैं, पर हमारे मन के लिए उपयोगी हैं।

किन लक्षणों से युक्त होता है? किस प्रकार के आचरणों वाला होता है? मनुष्य किस उपाय से इन तीनों गुणों के अतीत होता है? कृष्ण ने कहा, हे अर्जुन, जो पुरुष सत्वगुण के कार्यरूप प्रकाश को, रजोगुण के कार्यरूप प्रवृत्ति को तथा तमोगुण के कार्यरूप मोह को भी न तो प्रवृत्त होने पर बुरा समझता है और न निवृत्त होने पर उनकी आकांक्षा करता है।

बड़ा जटिल लक्षण है। खतरा भी उतना ही है। क्योंकि जितना जटिल है, उतना ही आपके लिए सुविधा है।

कृष्ण यह कह रहे हैं कि गुण जो भी करवाएं! तमोगुण कुछ करवाए, तो जब तमोगुण प्रवृत्ति में ले जाता है, तब दुखी नहीं होता कि मुझसे बुरा हो रहा है। रजोगुण किसी कर्म में ले जाता है, तो भी दुखी नहीं होता कि रजोगुण मुझे कर्म में ले जा रहा है। या सत्वगुण निवृत्ति में ले जाता है, तो भी सुखी नहीं होता कि मुझे सत्वगुण निवृत्ति में ले जा रहा है। न राग से दुखी होता है, न वैराग्य से सुखी होता है। जो दोनों ही चीजों को गुणों पर छोड़ देता है और समझता है, मैं अलग हूं।

इसका मतलब क्या हुआ?

आपको क्रोध आया। अब रजोगुण आपको किसी की हिंसा करने में ले जा रहा है। आप कहेंगे, यह तो लक्षण ही है गुणातीत का! इस वक्त दुख करने की कोई जरूरत नहीं है, मजे से जाओ। तो ऊपर से तो नकल हो सकती है। क्योंकि आप क्रोधित हो सकते हैं और आप कह सकते है, मैं क्या कर सकता हूं; यह तो गुणों का वर्तन है! आप हिंसा भी कर सकते हैं और कह सकते हैं, मैं क्या कर सकता हूं; यह तो गुणों का वर्तन है! मेरे भीतर जो गुण थे, उन्होंने हिंसा की।

इसीलिए मैं कह रहा हूं कि लक्षण बाहर हैं और असली बात तो भीतर है। असली बात भीतर है। वह आप ही पहचान सकते हैं कि जब आप क्रोध में गए थे, तो आप सच में क्रोध का सुख ले रहे थे या साक्षी थे। क्योंकि ध्यान रहे, जो आदमी क्रोध का साक्षी है, उसका क्रोध अपने आप निर्बीज हो जाएगा। क्रोध उठेगा भी, तो भी उसमें प्राण नहीं होंगे। क्योंकि प्राण तो हम डालते हैं। उसमें धुआं ही होगा, आग नहीं हो सकती।

कामवासना उठेगी, तो भी आपके साक्षी— भाव के रहने से कामवासना आपको ज्यादा दूर ले नहीं जाएगी। थोड़ी हिलेगी—डुलेगी; विदा हो जाएगी। क्योंकि आपके बिना सहयोग के, आपके साक्षी— भाव को खोए बिना कोई भी चीज बहुत दूर तक नहीं जा सकती। जब आप साथ होते हैं, तब चीजें दूर तक जाती हैं। लेकिन यह तो भीतरी बात है। इसको तय करना कठिन है। इसलिए जैनों ने कृष्ण को नहीं माना कि वे गुणातीत हैं। बड़ा मुश्किल है। कृष्ण तो गुणातीत हैं। लेकिन बात भीतरी है। कृष्ण उस युद्ध के मैदान पर खड़े हुए भी भीतर से वहां नहीं खड़े हैं। उस सारे जाल—प्रपंच के बीच भी भीतर से साक्षी हैं। लेकिन जैन कहते हैं, हम कैसे मानें कि वे साक्षी हैं? कौन जाने, वे साक्षी न हों और प्रवृत्ति में रस ले रहे हों?

तो जैन तो कहते हैं कि अगर प्रवृत्ति के साक्षी हैं, तो प्रवृत्ति गिर जानी चाहिए। तो वे कहते हैं, हम महावीर को मानेंगे, क्योंकि वे प्रवृत्ति छोड्कर चले गए हैं।

लेकिन दूसरी तरह भी खतरा वही है। आपकी प्रवृत्ति मौजूद हो, आप जंगल जा सकते हैं। क्या अड़चन है? और जंगल में आप ध्यान कर रहे हों। हम को लगता है, आप ध्यान कर रहे हैं। भीतर पता नहीं आप क्या सोच रहे हैं? कौन—सी फिल्म देख रहे हैं? क्या कर रहे हैं?

महावीर के जीवन में उल्लेख है। बिंबसार सम्राट, उस समय का एक बड़ा सम्राट, महावीर के दर्शन को आया। जब वह दर्शन को आ रहा था, तो उसने रास्ते में अपने एक पुराने मित्र को, जो कभी सम्राट था....... प्रसन्न कुमार उसका नाम था, वह मुनि हो गया था महावीर का, राज्य छोड़ दिया था उसने। वह बिंबसार का बचपन का मित्र था और विश्वविद्यालय में दोनों साथ पढ़े थे। वह प्रसन्न कुमार उसे खड़ा हुआ दिखाई पड़ा एक पर्वत की कंदरा के पास, ध्यान

में लीन, पत्थर की मूर्ति की तरह। बिंबसार का मस्तक झुक गया। उसने सोचा कि हम अभी भी संसार में भटक रहे हैं और यह

मेरा मित्र कैसी पवित्रता को उपलब्ध हो गया! नग्न, पत्थर की तरह शांत खड़ा है!

वह नमस्कार करके, बिना बाधा दिए, महावीर के दर्शन को आया था। महावीर और घने जंगल में किसी वृक्ष के नीचे विराजमान थे। वह वहा गया। वहां जाकर उसने कहा कि एक बात मुझे पूछनी है। बिंबसार ने कहा कि मेरा मित्र था प्रसन्न कुमार, वह आपका मुनि हो गया है। उसने सब छोड दिया। हम संसारी हैं, अज्ञानी हैं, भटकते हैं। उसे रास्ते में खड़े देखकर मेरा चित्त बड़ा आनंदित हुआ। मेरे मन में भी भाव उठा कि कब ऐसा शुभ क्षण आएगा कि मैं भी सब छोड्कर ऐसा ही शांति में लीन हो जाऊंगा! एक सवाल मेरे मन में उठता है। अभी जैसा खड़ा है प्रसन्न कुमार, शांत, मौन, अगर उसकी अभी मृत्यु हो जाए, तो वह किस महालोक में जन्म लेगा?

महावीर ने कहा, अगर इस वक्त उसकी मृत्यु हो, तो वह स्वर्ग जाएगा। लेकिन तू जब उसके सामने झुक रहा था, उस वक्त अगर मरता, तो नरक जाता।

अभी मुश्किल से आधी घड़ी बीती थी! और बिंबसार तो चौंक गया। क्योंकि जब वह सिर झुका रहा था, तब इतना शांत खड़ा था प्रसन्न कुमार कि यह सोचता था, वह स्वर्ग में है ही। और महावीर कहते हैं कि अगर उसी वक्त मर जाता, तो सीधा नरक जाता, सातवें नरक जाता।

बिंबसार ने कहा कि मैं समझा नहीं। यह पहेली हो गई। महावीर ने कहा कि तेरे आने के पहले तेरा फौज—फाटा आ रहा है। सम्राट था; उसके वजीर, घोड़े, सेनापति, वे आगे चल रहे हैं। तेरा एक वजीर भी उसके दर्शन करने तुझ से कुछ देर पहले पहुंचा। और उसने जाकर कहा कि यह देखो प्रसन्न कुमार खड़ा है मूरख की भांति। और यह अपना सारा राज्य अपने वजीरों के हाथ में सौंप आया है। इसका लड़का अभी छोटा है। वे सब लूटपाट कर रहे हैं। वह सारा राज्य बर्बाद हुआ जा रहा है। और ये बुद्ध की भांति यहां खड़े हैं!

उसने सुना प्रसन्न कुमार ने। उसको आग लग गई। वह भूल ही गया कि मैं मुनि हूं दिगंबर। उसका हाथ तलवार पर चला गया। पुरानी आदत! उसने तलवार खींच ली। आंख बंद थीं। उसने तलवार खींचकर उठा ली। और उसने अपने मन में कहा, क्या समझते हैं वे वजीर! अभी मैं जिंदा हूं। एक—एक को गर्दन से अलग कर दूंगा। और जब यह बिंबसार उसके दर्शन कर रहा था, तब वह गर्दनें काट रहा था। बाहर मूर्तिवत खड़ा था, भीतर गर्दनें धड़ से नीचे गिराई जा रही थीं। पुराना क्षत्रिय था। मेरे जिंदा रहते मेरे लड़के को धोखा दे रहे हैं! अभी मैं जिंदा हूं। क्या समझा है उन्होंने? मुनि हो गया, इससे क्या फर्क पड़ता है! अभी आ जाऊं, तो सब का फैसला कर दूंगा।

तो महावीर ने कहा कि इस समय अगर वह मर जाए, तो स्वर्ग जाएगा। तो बिंबसार ने कहा, अब दूसरी पहेली आप मुझे कह ही दें। अब क्या हो गया इतनी जल्दी?

तो महावीर ने कहा कि जब तलवार उसने वापस रखी, सिर पर हाथ फेरा अपना ताज सम्हालने को, तो वहां तो कोई ताज नहीं था, घुटा हुआ सिर था। जब सिर पर हाथ गया, तो उसने कहा, मैं भी पागल हूं। मैं मुनि हो गया; प्रसन्न कुमार तो मर ही चुका है। कैसी तलवार? किसकी हत्या? मैं यह क्या हत्या कर रहा हूं! सजग हो गया। उसे हंसी आ गई कि मन भी कैसा पागल है। इस समय वह बिलकुल साक्षी है। इस समय वह जो परदे से उसका तादात्म्य हो गया था, वह टूट गया। अगर अभी मर जाए, तो स्वर्ग जा सकता है।

बड़ी कठिनाई है। लक्षण सब बाहर हैं। इसलिए लक्षण आप दूसरों पर मत लगाना। लक्षण आप अपने पर ही लगाना, तो ही काम के हो सकते हैं।

जो पुरुष सत्वगुण के कार्यरूप प्रकाश को.......।

जब सत्वगुण का प्रकाश हो, और ज्ञान जन्मे, और वैराग्य का उदय हो।

रजोगुण के कार्यरूप प्रवृत्ति को।

कर्म उठें, कर्मों का जाल फैले।

तमोगुण के कार्यरूप मोह को......।

तमोगुण के कारण लोभ और मोह और अज्ञान जन्मे।

इन तीनों गुणों की प्रवृत्ति हो या निवृत्ति हो.......।

न तो प्रवृत्ति में मानता है कि बुरा है, न निवृत्ति में मानता है कि भला है। न तो प्रवृत्ति से बचना चाहता है, और निवृत्ति होने पर न प्रवृत्ति करना चाहता है। न तो आकांक्षा करता है कि ये हों, और न आकांक्षा करता है कि ये न हों। जो भी हो रहा है, उसे चुपचाप प्रकृति का खेल मानकर देखता रहता है। इसे कृष्ण ने मौलिक लक्षण कहा गुणातीत का।

तथा जो साक्षी के सदृश स्थित हुआ गुणों के द्वारा विचलित नहीं किया जा सकता है और गुण ही गुणों में बर्तते हैं, ऐसा समझता हुआ जो सच्चिदानंदघन परमात्मा में एकीभाव से स्थित रहता है एवं उस स्थिति से चलायमान नहीं होता है।

गुण प्रतिपल सक्रिय हैं, उनके कारण जो चलायमान नहीं होता है। जैसे एक दीया जल रहा है। हवा का झोंका आया; दीए की लौ कैंपने लगी। ऐसी हमारी स्थिति है। कोई भी झोंका आए किसी भी गुण से हम फौरन कंपने लगते हैं। गुण के झोंके आएं, तूफान चलें, भीतर कोई कंपन न हो। तूफान आएं और जाएं, आप अछूते खड़े रहें। न तो बुरा और न भला, कोई भी भाव पैदा न हो। न तो निंदा और न प्रशंसा, कोई चुनाव पैदा न हो, च्चाइसलेस, बिना चुने चुपचाप खड़े रहें।

सारी नीति हमें चुनाव सिखाती है और धर्म अचुनाव सिखाता है। नीति कहती है, यह अच्छा है, यह बुरा है। जब अच्छा उठे, तो प्रसन्न होकर करना। जब बुरा उठे, तो दुखी होना और करने से रुकना।

यह गीता का सूत्र तो बिलकुल विपरीत है। यह कह रहा है, बुरा उठे कि भला उठे, तुम कोई निर्णय ही मत लेना। बुरा उठे, तो बुरे को उठने देना। भला उठे, तो भले को उठने देना। न भले में स्तुति मानना, न बुरे में निंदा बनाना। तुम दोनों को देखते रहना कि तुम्हारा जैसे दोनों से कोई प्रयोजन नहीं है। जैसे रास्ते पर लोग चल रहे हैं और तुम किनारे खड़े हो। नदी बह रही है और तुम किनारे खड़े हो। आकाश में बादल चल रहे हैं और तुम नीचे बैठे हो। तुम्हारा कोई प्रयोजन नहीं। तुम्हारा कुछ लेना—देना नहीं। तुम बिलकुल अलग— थलग हो।

जब इस अलगपन का भाव पूरा उतर जाए, तभी चलायमान होने से बचा जा सकता है। अन्यथा हर चीज चलायमान कर रही है। हर घटना, जो आस—पास घट रही है, आपको हिला रही है। हर घटना आपको बदल रही है। तो आप मालिक नहीं हैं। हवाओं में कंपते हुए एक झंडे के कपड़े की तरह हैं।

एक झेन कथा है। बोकोजू के आश्रम में मंदिर पर झंडा था बौद्धों का। बोकोजू एक दिन निकलता था, देखा कि सारे भिक्षु इकट्ठे हैं और बडा विवाद हो रहा है। विवाद यह था, एक भिक्षु ने, जो बड़ा तार्किक था, उसने सवाल उठाया था कि झंडा हिल रहा है या हवा हिल रही है?

उपद्रव हो गया। कई मंतव्य हो गए। किसी ने कहा, हवा हिल रही है। झंडा कैसे हिलेगा, अगर हवा नहीं हिलेगी तो? हवा हिल रही है। झंडा तो सिर्फ पीछा कर रहा है। किसी ने कहा, इसका प्रमाण क्या? हम कहते हैं, झंडा हिल रहा है, इसलिए हवा हिलती

मालूम पड़ रही है। अगर झंडा न हिले, तो हवा नहीं हिलेगी। किसी ने कहा, दोनों हिल रहे हैं।

बोकोजू वहां आया और उसने कहा कि सब यहां से हटो और अपने वृक्षों के नीचे बैठकर ध्यान करो। न झंडा हिल रहा है, न हवा हिल रही है, न दोनों हिल रहे हैं; तुम्हारे मन हिल रहे हैं। जब तुम्हारा मन न हिलेगा, तब झंडा भी नहीं हिलेगा, हवा भी नहीं हिलेगी। तुम यहां से भागो और इसकी फिक्र करो कि तुम्हारा मन न हिले।

मन तभी रुकेगा हिलने से जब हम निर्णय लेना बंद करें और स्वीकार करने को राजी हो जाएं; और जान लें कि यह वर्तन है गुणों का, यह हो रहा है। इससे मेरा कुछ लेना—देना नहीं है। मैं इसमें छिपा हूं भीतर जरूर। यह मेरे चारों तरफ घट रहा है, मुझमें नहीं घट रहा है। मुझ से बाहर घट रहा है।

जो साक्षी के सदृश स्थित हुआ गुणों के द्वारा विचलित नहीं किया जा सकता। गुण ही गुणों में बर्तते हैं, ऐसा समझता हुआ जो सच्चिदानंदघनरूप परमात्मा में एकीभाव से स्थित रहता है एवं उस स्थिति से चलायमान नहीं होता है।

और जैसे ही कोई व्यक्ति गुणों के वर्तन से वर्तित नहीं होता, गुण कंपते रहते हैं और वह अकंप होता है, दोहरी घटना घटती है। एक तरफ जैसे ही हमारा संबंध गुणों से टूटता है, वैसे ही हमारा संबंध निर्गुण से जुड़ जाता है। इसे ठीक से समझ लें।

जब तक हम गुणों से जुड़े हैं, तब तक पीछे छिपा हुआ निर्गुण परमात्मा हमारे खयाल में नहीं है। क्योंकि हमारे पास ध्यान एक धारा वाला है। वह सारा ध्यान गुणों की तरफ बह रहा है। जैसे ही हम गुणों से टूटते हैं, यही ध्यान परमात्मा की तरफ बहना शुरू हो जाता है।

निर्गुण हमारे भीतर छिपा है। निर्गुण हम हैं और हमारे चारों तरफ गुणों का जाल है। अगर गुणों से बंधे रहेंगे, तो निर्गुण का बोध नहीं होगा। अगर गुणों से मुक्त होंगे, तो निर्गुण में स्थिति हो जाती है। और निर्गुण में स्थिति ही सच्चिदानंदघनरूप परमात्मा में स्थिति है।

गीता दर्शन–(भाग–7)
अध्याय—14 (प्रवचन—नौवां) — आत्म—भाव और समत्व

सूत्र—

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्स्फाञ्जनः
तुल्याप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ।। 24 ।।
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मिप्रारियक्षयोः ।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते।। 25 ।।
और जो निरंतर आत्म— भाव में स्थित हुआ, दुख— सुख को समान सोचने वाला है तथा मिट्टी पत्थर और सुवर्ण में समान भाव वाला और धैर्यवान है; तथा जो प्रिय और अप्रिय को बराबर समझता है और अपनी निंदा— स्तुति में भी समान भाव वाला है।

तथा जो मान और अपमान में सम है एवं मित्र और वैरी के पक्ष में भी सम है, वह संपूर्ण आरंभों में कर्तापन के अभिमान से रहित हुआ पुरुष गुणातीत कहा जाता है।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्न :
आमतौर से समझा जाता है कि ज्ञानोपलब्ध व्यक्ति की समस्त वासनाएं निर्जरा हो जाती हैं और वे सभी तरह की प्रवृत्ति के पार हो जाते हैं। लेकिन आपने कल—परसों के प्रवचन में कहा कि ज्ञानार्जन के बाद भी उनकी प्रकृतिजन्य प्रवृत्तियां

काम करती हैं। यहां तक कि वे काम, क्रोध और हिंसा में भी उतरते हैं, यद्यपि वे स्वयं उसकी ओर मात्र साक्षी— भाव रखते हैं। इसे समझाएं।
इस संबंध में कुछ बहुत मूलभूत बातें समझ लेनी जरूरी हैं।

पहली, साधारणत: हम ऐसा मानते रहे हैं, सुनते रहे हैं कि जो व्यक्ति वीतरागता को, ज्ञान की पूर्णता को उपलब्ध हो जाएगा, उसकी समस्त वृत्तियां क्षीण हो जाएंगी। यह ठीक भी है और गलत भी। ठीक तब है, जब उस व्यक्ति का शरीर गिर जाए। और यह अंतिम शरीर होगा। वीतरागता को उपलब्ध व्यक्ति का यह शरीर अंतिम होगा। इसके बाद नए शरीर को ग्रहण करने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि वासनाओं के बीज, मूल बीज भस्म हो गए। तो नया जन्म तो नहीं होगा।

इसलिए यह बात ठीक है कि वीतराग पुरुष की समस्त प्रवृत्तियां शून्य हो जाती हैं। लेकिन यह बात किसी और अर्थ में गलत भी है। क्योंकि वीतरागता के बाद भी इस देह में कुछ दिन रहना होगा। बुद्ध चालीस वर्षों तक इस देह में थे। ज्ञान की उपलब्धि के बाद भी शरीर को भूख लगेगी, प्यास भी लगेगी। शरीर विश्राम भी होगा। शरीर विश्राम भी चाहेगा। शरीर को आक्सीजन की भी जरूरत होगी। जब तक शरीर है, तब तक शरीर की सारी अपनी प्रकृति के अनुकूल जरूरतें होंगी।

और ये जो तीन गुण हैं, सत्व, रज, तम, ये तीन भी शरीर के गुण हैं। जैसे भूख—प्यास शरीर को लगेगी, वैसे ही सत्य, रज, तम की प्रक्रियाएं भी जारी रहेंगी। फर्क जो हो जाएगा, वह यह कि भूख लगते समय भी बुद्ध जानते हैं कि यह भूख मुझे नहीं लगी है, यह भूख शरीर को लगी है। प्यास लगते समय भी जानते हैं कि इस प्यास का मैं साक्षी हूं भोक्ता नहीं हूं कर्ता नहीं हूं।

लेकिन शरीर को तो प्यास लगेगी ही। शरीर को तो भूख लगेगी ही। शरीर के जो भी गुणधर्म हैं, वे जारी रहेंगे। शुद्धतम रूप में जारी रहेंगे। उनमें चेतना के जुड़ जाने से जो विक्षिप्तता पैदा होती है, वह खो जाएगी। इसलिए प्रवृत्ति जारी रहेगी।

बुद्ध भी चलते हैं, उठते हैं, समझाते हैं, बोलते हैं, सोते हैं, भोजन करते हैं, जागते हैं। सारी क्रियाएं जारी हैं। लेकिन इन क्रियाओं के कारण वे बंधते नहीं हैं, वह चीज टूट गई है। इन क्रियाओं से उनका कोई तादात्म्य नहीं है। ये क्रियाएं उनके आस—पास हो रही हैं; बीच का केंद्र इनसे मुक्त हो गया है। चेतना इनसे अस्पर्शित और अछूती रह जाती है।

इसलिए जो जन्मों —जन्मों में व्यक्तित्व के आधार बने होंगे, वे आधार काम करेंगे। इस शरीर के गिर जाने तक शरीर सक्रिय होगा। लेकिन यह सक्रियता वैसी ही हो जाएगी, जैसे आप साइकिल चला रहे हों और पैडल चलाना बंद कर दिया हो, फिर सिर्फ पुरानी गति और मोमेंटम के कारण साइकिल थोड़ी दूर चलती चली जाए। बाहर से देखने वाले को तो ऐसा लगेगा कि अगर आपने साइकिल चलानी बंद कर दी है, तो साइकिल रुक क्यों नहीं जाती है!

आप पैडल चलाने बंद कर दिए हैं, लेकिन आप मीलों से साइकिल चला रहे हैं, तो एक गति चकों ने ले ली है, वह गति अपनी निर्जरा करेगी। अब आप बिना पैडल मारे भी बैठे हैं साइकिल पर, साइकिल चलती चली जाएगी। यह जो चलना होगा, इसको आप नहीं चला रहे हैं। अब यह साइकिल ही चल रही है। इसमें आप कर्ता नहीं हैं। आप सिर्फ साक्षी हैं। आप साइकिल पर

बैठे हैं और साइकिल चल रही है। और एक अनूठा अनुभव होगा कि मैं नहीं चला रहा हूं साइकिल चल रही है। और साइकिल इसलिए चल रही है कि पीछे मैंने उसे चलाया था।

तो जन्मों—जन्मों में आपने शरीर को चलाया है। और जन्मों—जन्मों में आपने अपने गुणों को गति दी है। सब गुणों का मोमेंटम हो गया है, सब गुणों ने अपनी गति पकड़ ली है। अब वे चलते जाएंगे। जब तक गति क्षीण न हो जाए, तब तक आपका शरीर चलता रहेगा। लेकिन यह चलना वैसा ही है, जैसे बिना पैडल चलाए साइकिल चल रही हो।

पर बाहर से देखने वाले को तो यही लगेगा, साइकिल चल रही है, इसलिए आप चला रहे होंगे। उसका लगना भी ठीक है। लेकिन आप जानते हैं कि अब आप चलाना छोड़ दिए हैं। अब आप सिर्फ प्रतीक्षा कर रहे हैं कि साइकिल रुक जाए।

यह जो भीतर की भाव—दशा है, इसे हमें पहचानने में कठिनाई होती है, क्योंकि हम हमेशा गति दे रहे हैं। और हमें खयाल में भी नहीं आता कि बिना गति दिए जीवन कैसे चलेगा।

लेकिन जीवन चलता है। थोड़े दिन चल सकता है। उन थोड़े दिन का मजा ही और है। आपने पतवार उठाकर रख ली है, और नाव अपनी गति से बही चली जाती है। न आपकी अब आकांक्षा है कि नाव चले.......।

और ध्यान रहे, आप यह भी कह सकते हैं कि अगर चलाना बंद कर दिया है, तो आप ब्रेक भी लगाकर साइकिल से उतर सकते हैं! आप छलांग लगाकर कूद सकते हैं! जब चलाना ही बंद कर दिया है, तो अब साइकिल पर बैठे रहने का क्या प्रयोजन है?

इसे थोडा समझ लेना जरूरी है। क्योंकि जब तक किसी चीज को रोकने की आकांक्षा बनी रहे, उसका अर्थ है कि चलाने की आकांक्षा का विपरीत रूप मौजूद है। जब आकांक्षा पूरी ही जाती है, तो न चलाने का मन रह जाता है, न रुकने का मन रह जाता है। क्योंकि ब्रेक लगाने का तो एक ही अर्थ होगा कि बुद्ध और महावीर को आत्महत्या कर लेनी चाहिए। और कोई अर्थ नहीं हो सकता। अब कोई प्रयोजन तो रहा नहीं शरीर का, इससे छलांग लगा जानी चाहिए। लेकिन जीवन में ब्रेक लगाने का तो एक ही अर्थ है कि आप आत्महत्या कर लें, आत्मघात कर लें।

ध्यान रहे, आत्मघात करने वाला व्यक्ति जीवन से मुक्त नहीं हुआ है। जीवन से बंधे होने के कारण लोग आत्मघात करते हैं। यह उलटा दिखाई पड़ेगा। लेकिन जो लोग आत्मघात करते हैं, उनका निरीक्षण करें। उनके आत्मघात का कारण यह नहीं है कि वे जीवन से मुक्त हो गए हैं। उनके आत्मघात का सदा ही यही कारण है कि जीवन से उन्होंने जो चाहा था, वह जीवन उन्हें नहीं दे पाया। वे जीवन से मुक्त नहीं हुए हैं, जीवन से निराश हो गए हैं। और निराश उसी मात्रा में होते हैं हम, जिस मात्रा में हमने आशा बांधी हो। किसी ने सोचा हो कि जीवन में स्वर्ग मिलने वाला है और वह न मिले, तो दुख होता है। और वैसा व्यक्ति आत्मघात कर लेता है।

ज्ञानी को न तो आकांक्षा है कि जीवन चले, न रुकने का कोई सवाल है। क्योंकि न चलने से कुछ मिलने की आशा है, न रुकने से कुछ मिलने की आशा है। न तो वह सोचता है कि जीवन में चलता रहूं तो मुझे कोई स्वर्ग मिलने वाला है। न वह सोचता है कि रुक जाने से कोई स्वर्ग मिलने वाला है। वह जानता है कि स्वर्ग तो मैं हूं। चलने और रुकने से उसका कोई भी संबंध नहीं है।

तो अगर वह कोशिश करके ब्रेक भी लगाए, तो समझना कि अभी पैडल मार रहा है। क्योंकि ब्रेक लगाना भी पैडल मारने का ही हिस्सा है। वह कुछ कर रहा है। अभी कर्तापन उसका नहीं गया है। साक्षी नहीं हुआ। अभी ब्रेक लगा रहा है। कल पैडल लगा रहा था, अब वह ब्रेक लगा रहा है। लेकिन अभी साइकिल से उसका कर्तापन जुड़ा हुआ है।

और साक्षीपन का अर्थ हुआ कि अब वह कुछ भी नहीं कर रहा है। अब जो हो रहा होगा, वह जानता है कि प्रकृति से हो रहा है। वही कृष्ण कह रहे हैं।

कृष्ण कह रहे हैं कि जिस दिन कोई जान लेता है कि गुण ही गुण में बर्त रहे हैं, मैं पृथक हूं, मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूं? मैं करने वाला ही नहीं हूं, जिस दिन ऐसा द्रष्टा— भाव गहन हो जाता है, उसी दिन व्यक्ति गुणातीत अवस्था को उपलब्ध हो जाता है। उसी दिन वह सच्चिदानंदघन हो जाता है, उसी क्षण।

रुकने की वासना भी चलने की वासना का हिस्सा है। रुकना भी चलने का एक ढंग है, क्योंकि रुकना भी एक क्रिया है। तो ऐसा व्यक्ति जिसकी प्रवृत्ति खो गई है।

ध्यान रहे, हम तो हमेशा विपरीत में सोचते हैं, इसलिए कठिनाई होती है। हम सोचते हैं, जिसकी प्रवृत्ति खो गई है, वह निवृत्ति को साधेगा। निवृत्ति भी प्रवृत्ति का एक रूप है। कुछ करना भी कर्ता— भाव है; और कुछ न करने का आग्रह करना भी कर्ता— भाव है। अगर मैं कहता हूं कि यह मैं न करूंगा, तो इसका अर्थ यह हुआ कि मैं मानता हूं कि यह मैं कर सकता था। यह भी मैं मानता हूं कि यह मेरा कर्तृत्व है; चाहूं तो करूं, और चाहूं तो न करूं।

लेकिन साक्षी का अर्थ है कि न तो मैं कर सकता हूं, और न न कर सकता हूं। न तो प्रवृत्ति मेरी है, न निवृत्ति मेरी है। प्रवृत्ति भी गुणों की है और निवृत्ति भी गुणों की है। गुण ही बर्त रहे हैं। वे ही चल रहे हैं; वे ही रुक जाएंगे। तो जब तक चल रहे हैं, मैं उन्हें चलता हुआ देखूंगा। और जब रुक जाएंगे, तब मैं उन्हें रुका हुआ देखूंगा। जब तक जीवन है, तब तक मैं जीवन का साक्षी; और जब मृत्यु होगी, तब मैं मृत्यु का साक्षी रहूंगा। कर्ता मैं न बनूंगा।

इसलिए निवृत्ति को आप मत सोचना कि वह वास्तविक निवृत्ति है। अगर उसमें कर्ता का भाव है, तो वह प्रवृत्ति का ही शीर्षासन करता हुआ रूप है। वह उसका ही उलटा रूप है। कोई दौड़ रहा था कर्ता— भाव से, कोई खड़ा है कर्ता — भाव से; लेकिन कर्ता— भाव मौजूद है।

बुद्ध ने कहीं कहा है कि न तो मैं प्रवृत्त हूं अब और न निवृत्त; न तो मैं गृहस्थ हूं अब और न संन्यस्त, न तो मैं कुछ पकड़े हूं और न मैं कुछ छोड़ता हूं।

इसे ठीक से खयाल में ले लें, क्योंकि जीवन के बहुत पहलुओं पर यही अड़चन है।

हम सोचते हैं कि कुछ कर रहे हैं, इसको न करें। हमारा ध्यान क्रिया पर लगा है, हमारा ध्यान कर्ता पर नहीं है। क्योंकि करने में भी मैं कर्ता हूं न करने में भी मैं कर्ता हूं।

सारी चेष्टा द्रष्टा पुरुषों की यह है कि कर्ता का भाव मिट जाए। मैं होने दूं र करूं न। जो हो रहा है, उसे होने दूं; उसमें कुछ छेड़छाड़ भी न करूं। जहां कर्म जा रहे हों, जहां गुण जा रहे हों, उन्हें जाने दूं। मैं उन पर सारी पकड़ छोड़ दूं।

इसीलिए संतत्व अति कठिन हो जाता है। साधुता कठिन नहीं है। क्योंकि साधुता निवृत्ति साधती है। वह प्रवृत्ति के विपरीत है। वह गृहस्थ के विपरीत है। वहां कुछ करने को शेष है, विपरीत करने को शेष है। कोई हिंसा कर रहा है, आप अहिंसा कर रहे हैं। कोई धन इकट्ठा कर रहा है, आप त्याग कर रहे हैं। कोई महल बना रहा है, आप झोपड़े की तरफ जा रहे हैं। कोई शहर की तरफ आ रहा है, आप जंगल की तरफ जा रहे हैं। वहां कुछ काम शेष है।

मन को काम चाहिए। अगर धन इकट्ठा करना बंद कर दें, तो मन कहेगा, बांटना शुरू करो। लेकिन कुछ करो। करते रहो, तो मन जिंदा रहेगा। इसलिए मन तत्काल ही विपरीत क्रियाएं पकड़ा देता है।

स्त्रियों के पीछे भागो। अगर इससे रुकना है, तो मन कहता है, स्त्रियों से भागो। मगर भागते रहो। क्योंकि मन का संबंध स्त्री से नहीं है, भागने से है। या तो स्त्री की तरफ भागो, या स्त्री की तरफ पीठ करके भागो, लेकिन भागों। अगर भागते रहे, तो कर्तापन बना रहेगा। अगर भागना रुका, तो कर्तापन रुक जाएगा।

तो मन ऐसे समय तक भी दौड़ाता रहता है, जब कि दौड़ने में कोई अर्थ भी नहीं रह जाता है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन अपने चिकित्सक के पास गया। तब वह बहुत का हो गया था। नब्बे वर्ष उसकी उम्र थी। जीर्ण—शीर्ण उसका शरीर हो गया था। आंखों से ठीक दिखाई भी नहीं पड़ता था। हाथ से लकड़ी टेक—टेक बामुश्किल चल पाता था।

अपने चिकित्सक से उसने कहा कि मैं बड़ी दुविधा में और बड़ी मुश्किल में पड़ा हूं। कुछ करें। चिकित्सक ने पूछा कि तकलीफ क्या है? नसरुद्दीन ने कहा कि संकोच होता है कहते, लेकिन अपने चिकित्सक को तो बात कहनी ही

पड़ेगी। मैं अभी भी स्त्रियों का पीछा करता हूं। इतना का हो गया हूं अब यह कब रुकेगा? मैं अभी भी स्त्रियों का पीछा कर रहा हूं। आंखों से दिखाई नहीं पड़ता, पैरों से चल नहीं सकता, लेकिन स्त्रियों का पीछा करता हूं!

उसके चिकित्सक ने कहा, नसरुद्दीन, चिंता मत करो। यह कोई बीमारी नहीं है। यह तुम्हारे स्वस्थ होने का प्रतीक है कि अभी भी तुम जिंदा हो नब्बे साल में! इससे तुम्हें दुखी नहीं होना चाहिए। नसरुद्दीन ने कहा कि वह मेरा दुख भी नहीं है। तुम फिर गलत समझे। तकलीफ यह है कि मैं स्त्रियों का पीछा तो करता हूं लेकिन यह भूल गया हूं कि पीछा क्यों कर रहा हूं। आई चेज वीमेन, बट आई काट रिमेंबर व्हाय। तकलीफ मेरी यह है कि मुझे अब याद नहीं पड़ता कि मैं किसलिए पीछा कर रहा हूं। और अगर स्त्री को पकड़ भी लिया, तो करूंगा क्या! यह मुझे याद नहीं रहा है।

जिंदगी में आपकी बहुत—सी क्रियाएं एक न एक दिन इसी जगह पहुंच जाती हैं, जब आप करते रहते हैं, और अर्थ भी खो जाता है, स्मृति भी खो जाती है कि क्यों कर रहे हैं। लेकिन पुराना मोमेंटम है, गति है। पहले दौड़ता रहा है, दौड़ता रहा है। अब दौड़ने का अर्थ खो गया; मंजिल भी खो गई; अब प्रयोजन भी न रहा। लेकिन पुरानी आदत है, दौड़े चला जा रहा है।

शरीर के साथ, शरीर के गुणों के साथ यही घटना घटती है। रस्सी जल भी जाती है, तो उसकी अकड़ शेष रह जाती है। जली हुई, राख पड़ी हुई लकड़ी में भी उसकी पुरानी अकड़ का ढंग तो बना ही रहता है।

अब आप जाग भी जाते हैं, होश से भी भर जाते हैं, तो भी गुणों की पुरानी रेखाएं चारों तरफ बनी रहती हैं। और उनमें पुरानी गति का वेग है, वे चलती रहती हैं। फर्क यह पड़ जाता है कि अब आप उनको नया वेग नहीं देते। यह क्रांतिकारी मामला है। यह छोटी घटना नहीं है।

आप उनको नया वेग नहीं देते। आप उनमें नया रस नहीं लेते। अब वे चलती भी हैं, तो अपने अतीत के कारण। और अतीत की शक्ति की सीमा है। अगर आप रोज वेग न दें, तो आज नहीं कल पुरानी शक्ति चुक जाएगी। अगर आप रोज शक्ति न दें......,।

आप पेट्रोल भरकर गाड़ी को चला रहे हैं। जितना पेट्रोल भरा है, उतना चुक जाएगा और गाड़ी रुक जाएगी। रोज पेट्रोल डालते चले जाते हैं, तो फिर चुकने का कोई अंत नहीं आता। आपने तय भी कर लिया कि अब पेट्रोल नहीं डालेंगे, तो पुराना पेट्रोल थोड़ी दूर काम देगा; सौ—पचास मील आप चल सकते हैं।

बुद्ध को चालीस वर्ष में ज्ञान हो गया, लेकिन जन्मों —जन्मों में जो ईंधन इकट्ठा किया है, वह चालीस वर्ष तक शरीर को और चला गया। उस चालीस वर्ष में शरीर अपने गुणों में बतेंगा, बुद्ध सिर्फ देखने वाले हैं

द्रष्टा और भोक्ता, द्रष्टा और कर्ता, इसके भेद को खयाल में ले लें, तो अड़चन नहीं रह जाएगी। अगर आप कर्ता हो जाते हैं, भोक्ता हो जाते हैं, तो आप नया वेग दे रहे हैं। आपने ईंधन डालना शुरू कर दिया। अगर आप सिर्फ द्रष्टा रहते हैं, तो नया वेग नहीं दे रहे हैं। पुराने वेग की सीमा है, वह कट जाएगी। और जिस दिन पुराना वेग चुक जाएगा, शरीर गिर जाएगा; गुण वापस प्रकृति में मिल जाएंगे, और आप सच्चिदानंदघनरूप परमात्मा में।

दूसरा प्रश्न :
जड़ त्रिगुणों से चैतन्य साक्षी का तदात्मय कैसे संभव हो पाता है, यह समझ में नहीं आता!
दर्पण में आप अपना चेहरा देखते हैं। दर्पण जड़ है, लेकिन आपके चेहरे का प्रतिबिंब बनाता है। चेहरा देखकर आप खुश होते हैं और आप कहते हैं, यह मैं हूं। वह जो दर्पण में आपको दिखाई पड़ रहा है, उसे देखकर आप कहते हैं, यह मैं हूं! कितना सुंदर हूं! कितना स्वस्थ हूं!

आपके शरीर में जो प्रकृति काम कर रही है, वह जड़ है, लेकिन दर्पण की तरह है। उसमें आप अपना प्रतिबिंब पकड़ते हैं। और दर्पण में तो आपको पता चलता है कि प्रतिबिंब है, लेकिन अगर दर्पण सदा ही आपके साथ जुड़ा रहे, उठें, बैठें, कुछ भी करें, दर्पण साथ ही हो; सोए, कहीं भी जाएं, दर्पण साथ ही हो, तो आपको यह भूल जाएगा कि दर्पण में जो दिखाई पड रहा है, वह मेरा प्रतिबिंब है। आपको लगने लगेगा, वह मैं हूं।

यही घटना घट रही है। आप अपने प्रकृति के गुणों में अपने प्रतिबिंब को पा रहे हैं। और प्रतिबिंब को सदा पा रहे हैं। एक क्षण को भी वह प्रतिबिंब हटता नहीं वहां से। निरंतर उस प्रतिबिंब को पाने के कारण एक भी क्षण उसका अभाव नहीं होता। इस सतत चोट के कारण यह भाव निर्मित होता है कि यह मैं हूं। यह भाव इसलिए हो पाता है कि चेतना समर्थ है सत्य को जानने में। चेतना चूंकि समर्थ है सत्य को जानने में, इसलिए चेतना समर्थ है भ्रांत होने में।

हमारे सभी सामर्थ्य दोहरे होते हैं। आप जिंदा हैं, क्योंकि आप मरने में समर्थ हैं। आप स्वस्थ हैं, क्योंकि आप बीमार होने में समर्थ हैं। आपसे ठीक हो सकता है, क्योंकि आप गलत करने में समर्थ हैं। इसे ठीक से समझ लें।

हमारी सारी सामर्थ्य दोहरी है। अगर विपरीत हम न कर सकते हों, तो सामर्थ्य है ही नहीं। जैसे किसी आदमी को हम कहें कि तुम ठीक करने के हकदार हो, लेकिन गलत करने की तुम्हें स्वतंत्रता नहीं है। तुम्हें सिर्फ ठीक करने की स्वतंत्रता है। तो स्वतंत्रता समाप्त हो गई। स्वतंत्रता का अर्थ ही यह है कि गलत करने की भी स्वतंत्रता है। तभी ठीक करने की स्वतंत्रता का कोई अर्थ है।

चेतना स्वतंत्र है। स्वतंत्रता चेतना का गुण है। वह उसका स्वभाव है। स्वतंत्रता का अर्थ है कि दोनों तरफ जाने का उपाय है। मैं भ्रांति भी कर सकता हूं। मैं गलत भी कर सकता हूं। और गलत कर सकता हूं, इसीलिए ठीक को खोजने की सुविधा है।

ये दो उपाय हैं, या तो मैं अपने को जान लूं, जो मैं हूं; यह सत्य का जानना होगा। और या मैं अपने को उससे जोड़ लूं, जो मैं नहीं हूं; यह असत्य के साथ एक हो जाने का मार्ग होगा। ये दोनों मार्ग खुले हैं।

सभी का मन होता है कि यह स्वतंत्रता खतरनाक है। यह न होती, तो अच्छा था। लेकिन आपको पता नहीं कि आप क्या सोच रहे हैं। आपको पता नहीं है, आप क्या मांग रहे हैं।

हर आदमी सोचता है कि मैं सदा ही स्वस्थ होता और कभी बीमार न होता, तो बहुत अच्छा। लेकिन आपको पता नहीं। आप जो मांग रहे हैं, वह नासमझी से भरा हुआ है। अगर आप कभी भी बीमार न होते, तो आपको स्वास्थ्य का कोई पता ही नहीं चलता। और अगर आप दुखी न हो सकते होते, तो सुख की कोई प्रतीति नहीं हो सकती। कैसे होती सुख की प्रतीति? और सत्य अगर आपको मिला ही होता हाथ में और असत्य की तरफ जाने का कोई मार्ग न होता, तो वह सत्य दो कौड़ी का होता, उसका कोई मूल्य आपको कभी पता नहीं चलता। सत्य का मूल्य है, क्योंकि हम उसे खो सकते हैं।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जगत में प्रेम की संभावना है, क्योंकि प्रेम खो सकता है। और मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जिस दिन हम आदमी को अमर कर लेंगे और आदमी की मृत्यु बंद हो जाएगी, उसी दिन जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, सब खो जाएगा। सब महत्वपूर्ण मृत्यु पर टिका है।

आप प्रेम कर पाते हैं, क्योंकि जिसे आप प्रेम करते हैं, वह कल मर सकता है। अगर आपको पता हो कि शाश्वत है सब, न कोई मर रहा है, न कोई मरने का सवाल है, प्रेम तिरोहित हो जाएगा। मृत्यु के बिना प्रेम का कोई उपाय नहीं। मृत्यु के बिना मित्रता व्यर्थ हो जाएगी। मृत्यु है, इसलिए मित्रता में इतनी सार्थकता है। मृत्यु न होगी, तो जीवन की सारी जिन चीजों को हम मूल्य दे रहे हैं, कोई मूल्य नहीं है। विपरीत से मूल्य पैदा होता है।

इसलिए सुबह जब फूल खिलता है, उसका सौंदर्य सिर्फ खिलने में ही नहीं है, इस बात में भी छिपा है कि सांझ वह मुरझा जाएगा। और अगर फूल कभी न मुर्झाए, तो वह प्लास्टिक का फूल हो जाए। और अगर बिलकुल ही—वह प्लास्टिक का फूल भी नष्ट होता है—अगर फूल सदा के लिए हो जाए, तो उसकी तरफ देखने का भी कोई अर्थ नहीं रह जाएगा।

जीवन की सारी रहस्यमयता विपरीत पर निर्भर है। सत्य का मूल्य है, क्योंकि असत्य में उतरने का उपाय है। और परमात्मा में जाने का रस है, क्योंकि संसार में आने का दुख है।

लोग मुझसे पूछते हैं, आखिर परमात्मा संसार बना ही क्यों रहा है? संसार है ही क्यों?

अगर संसार न हो, तो परमात्मा का कोई भी रस नहीं है। परमात्मा अपने से विपरीत को पैदा कर रहा है, ताकि आप उसे खो सकें और पा सकें। और जिसे हम खो सकते हैं, उसे पाने का आनंद है। जिसे हम खो ही नहीं सकते, वह हमारे सिर पर बोझ हो जाएगा।

अगर परमात्मा कुछ ऐसा हो कि जिसे आप खो ही न सकें, तो आप जितने परमात्मा से ऊब जाएंगे, उतने किसी चीज से नहीं। परमात्मा से ऊबने का कोई उपाय नहीं है, क्योंकि क्षण में आप उसे खो सकते हैं। और जिस दिन आप संसार से ऊब जाएं, उसी क्षण परमात्मा में लीन वापस हो सकते हैं।

अगर इस बात को ठीक से समझ लें, तो जीवन की बहुत—सी समस्याएं साफ हो जाएंगी।

पहला बुनियादी सिद्धात है कि मनुष्य की आत्मा स्वतंत्रता है, परम स्वातंत्र्य है, टोटल फ्रीडम। यह जो परम स्वातंत्र्य है चेतना का, इसको ही हमने मोक्ष कहा है। जो इसे जान लेता है, वह मुक्त है। जो इसे नहीं जानता, वह बंधा हुआ है।

लेकिन वह बंधा इसीलिए है कि वह बंधना चाहता है। और तब तक बंधा रहेगा, जब तक बंधन इतना दुख न देने लगे कि उसे तोड्ने का भाव न आ जाए, उससे छूटने का भाव न आ जाए, उससे उठने का भाव न आ जाए।

और इस जगत में कोई भी घटना असमय नहीं घटती; अपने समय पर घटेगी। समय का मतलब यह है कि जब आप पक जाएंगे, तब घटेगी। जब फल पक जाएगा, तो गिर जाएगा। जब तक कच्चा है, तब तक लटका रहेगा। जिस दिन आपका दुख भी पक जाएगा संसार के साथ, उस दिन आप तत्त्व। टूट जाएंगे और परमात्मा में गिर जाएंगे।

अगर आप अटके हैं, तो इसलिए नहीं कि आपकी साधना में कोई कमी है। आप अटके हैं इसलिए कि आप दुख को भी पूरा नहीं भोग रहे हैं। आप पकने के भी पूरे उपाय नहीं होने दे रहे हैं।

समझ लें कि एक फल जो धूप में पकता हो, वह फल अपने को छाया में छिपाए हुए है कि धूप न लग जाए। और फिर वह सोच रहा है, मैं कच्चा क्यों हूं! आप ऐसे ही फल हैं, जो सब तरफ से अपने को छिपा भी रहे हैं, बचा भी रहे हैं। उससे ही आप बचा रहे हैं, जिसकी पीडा के कारण ही आप मुक्त हो सकेंगे।

इसलिए मैं निरंतर कहता हूं संसार में पूरे जाओ, ताकि तुम संसार के बाहर आ सको। बाहर जाने का एक ही उपाय है कि तुम पूरे भीतर चले जाओ; वहां कुछ और जानने को शेष न रह जाए। दुख से छूटने की एक ही व्यवस्था है, एक ही विधि है। बाकी सब विधियां बहाने हैं। और वह विधि यह है कि तुम दुख को पूरा भोग लो। तुम उसमें पक जाओ। तुम अपने ही आप गिर जाओगे।

कृष्ण यही कह रहे हैं कि अर्जुन, तू व्यर्थ ही परेशान हो रहा है। गुण अपनी गति से चल रहे हैं। गुण अपनी गति से पक रहे हैं। और जहां से तू भागना चाहता है, वहां से भागकर तू कभी मुक्त न हो सकेगा। क्योंकि तू छाया खोज रहा है। इस युद्ध से भागकर तू बचा लेगा अपने को उस महापीड़ा से गुजरने से, जो कि मुक्ति का कारण बन जाएगी। तू इस युद्ध से गुजर जा। तू इस युद्ध को हो जाने दे। तू रोक मत। तू डर भी मत। तू संकोच भी मत ले। तू निर्भय भाव से इसमें प्रवेश कर जा। और जो घटना तेरे चारों तरफ इकट्ठी हो गई है, उसको उसकी पूर्णता में तेरे भीतर बिंध जाने दे। यह आग पूरी जल उठे। तू इसमें पूरी तरह राख हो जा। उस राख से ही तेरे नए जीवन का अंकुरण होगा। उस राख से ही तू अमृत को जानने में समर्थ हो पाएगा।

जो भी, जो भी जीवन में है, वह अकारण नहीं है। दुख है, संसार है, बंधन हैं, वे अकारण नहीं हैं। उसकी उपादेयता है। और बड़ी उपादेयता यह है कि वह अपने से विपरीत की तरफ इशारा करता है।

आपकी चेतना बंध सकती है, क्योंकि आपकी चेतना स्वतंत्र हो सकती है। और यह आपके हाथ में है। और जब मैं कहता हूं आपके हाथ में है, तब आपको ऐसा लगता है, तो फिर मैं इसी वक्त स्वतंत्र क्यों नहीं हो जाता? आप सोचते ही हैं कि आप इसी वक्त स्वतंत्र क्यों नहीं हो जाते! लेकिन उपाय आप सब कर रहे हैं कि आप बंधे रहें।

एक मित्र मेरे पास आए। कहते थे, मन बड़ा अशांत है; शांति का कोई उपाय बताएं। मैंने उनसे पूछा कि शांति की फिक्र ही न करें, पहले मुझे यह बताएं कि अशांत क्यों हैं? क्योंकि मैं शांति का उपाय बताऊं और आप अशांति का आयोजन किए चले जाएं, तो कुछ हल न होगा। और उससे और असुविधा होगी। वैसी हालत हो जाएगी कि एक आदमी कार में एक्सीलरेटर भी दबा रहा है और ब्रेक भी लगा रहा है।

इसीलिए कार में इंतजाम करना पड़ा—क्योंकि आदमी का स्वभाव परिचित है हमें—कि उसी पैर से एक्सीलरेटर दबाएं और उसी से ब्रेक। क्योंकि आपसे डर है कि आप दोनों काम एक साथ कर सकते हैं। आप एक साथ दोनों काम कर सकते हैं, एक्सीलरेटर भी दबा दें और ब्रेक भी दबा दें। तो कठिनाई खड़ी हो जाए। तो ब्रेक दबाने के लिए एक्सीलरेटर से पैर हट आए।

लेकिन मन के साथ हम ऐसा नहीं कर पा रहे हैं। मन के साथ हमारी हालत ऐसी है कि हम दोनों काम एक साथ करना चाहते हैं।

उन मित्र से मैंने पूछा कि तकलीफ क्या है? किस वजह से अशांत हैं? तो उन्होंने कहा, अशांति का कारण यह है कि मेरा लड़का मेरी मानता नहीं।

किसका लड़का किसकी मानता है? इसमें लडका कारण नहीं है। इसमें आप मनाना क्यों चाहते हैं? लड़का अपना जीवन जीएगा। मैंने उनसे पूछा, आपने अपने बाप की मानी थी?

कौन अपने बाप की मानता है? लड़का और रास्तों पर चलेगा, जिन पर बाप कभी नहीं चला। लड़का और दूसरी दुनिया में जीएगा, जिसमें बाप कभी नहीं जीया। लड़के और बाप के समय में भेद है, उनके मार्गों में भेद होगा। उनकी परिस्थितियों में भेद है, उनके विचारों में भेद होगा। लड़का अगर जिंदा है, तो बाप से भिन्न चलेगा। लड़का अगर मुर्दा है, तो बाप की मानकर चलेगा।

अब बाप का दुख यह है कि लड़का अगर मुर्दा है, तो वह परेशान है। अगर लड़का जिंदा है, तो वह परेशान है। लड़का मुर्दा है, तो वह समझता है कि न होने के बराबर है।

आपको खयाल में नहीं है, अगर लड़का बिलकुल आप जैसा कहें, वैसा ही करे, तो भी आप दुखी हो जाएंगे। आप कहें बैठो, तो वह बैठ जाए। आप कहें उठो, तो उठ जाए। आप कहें बाएं घूमो, तो बाएं घूम जाए। आप जो कहें उसको रत्ती—रत्ती वैसा ही करे, तो आप सिर पीट लेंगे। आप कहेंगे, यह लड़का क्या हुआ, एक व्यर्थता है। इससे तो होता न होता बराबर है। इसके होने का कोई अर्थ ही नहीं है। होने का पता ही भिन्नता से चलता है।

तो आप इसलिए दुखी नहीं हैं, मैंने उनसे कहा कि लड़का मानता नहीं है। आप मनाना क्यों चाहते हैं कि माने? आपका दुख आपके कारण आ रहा है। आप अपने अहंकार को थोपना चाहते हैं। और मेरे पास आप शांति की तलाश करने आए हैं। लड़के को अपने मार्ग पर चलने दें, अशांति फिर कहां है?

तब उनका घाव छू गया। तब उन्होंने कहा, आप क्या कह रहे हैं! अगर उसको मार्ग पर चलने दें, तो सब बर्बाद कर देगा। सब धन मिटा डालेगा।

मैंने उनको पूछा, आप कब तक धन की सुरक्षा करिएगा? कल आप समाप्त हो जाएंगे और धन मिटेगा। आपका लड़का मिटाए, कोई और मिटाए; धन मिटेगा। धन मिटने को है। तो आपका दुख लड़के से नहीं आ रहा है। आपका

दुख धन पर जो आपकी पकड है, उससे आ रहा है। आप मरेंगे दुखी। क्योंकि मरते वक्त आपको लगेगा, अब धन का क्या होगा! कोई न कोई मिटाएगा।

इसलिए धनी न सुख से जी पाता है, न सुख से मर पाता है। मरते वक्त यह भय लगता है कि मैंने जिंदगीभर कमाया, अब इसको कोई मिटा देगा। और कोई न कोई मिटाएगा आखिर।

इस जगत में जो भी बनाया जाता है, वह मिटता है। इस जगत में कोई भी ऐसी चीज नहीं, जो न मिटे। आपका धन अपवाद नहीं हो सकता। तो आप दुखी इसलिए हो रहे हैं कि आपका धन कोई न मिटा दे, अशांत इसलिए हो रहे हैं। और शांति की कोई तरकीब खोजते हैं।

मान लें कि धन तो मिटने वाली चीज है, मिटेगी। और लड़के अपने मार्गों पर जाएंगे। और पिता लड़कों को पैदा करता है, इसलिए उनके जीवन का मालिक नहीं है। फिर मुझे कहें कि दुख कहां है।

अशांति के कारण खो जाएं, तो आदमी शांत हो जाता है। शांति के कारण खोजने की जरूरत ही नहीं है। शांति मनुष्य का स्वभाव है। अशांति अर्जित करनी पड़ती है। हम अशांति अर्जित करते चले जाते हैं और शांति की पूछताछ शुरू कर देते हैं।

अशांति के साथ जो इनवेस्टमेंट है, वह भी हम छोड़ना नहीं चाहते। जो लाभ है, वह भी हम लेना चाहते हैं। और शांति के साथ जो लाभ मिल सकता है, वह भी हम लेना चाहते हैं। और दोनों हाथ लड्डूओं का कोई भी उपाय नहीं है।

यह संसार के साथ हमारा जोड़ है, गुणों के साथ, शरीर के साथ, हमारा तादात्म्य है, उसमें भी हमें लाभ दिखाई पड़ता है, इसलिए है। हमने जानकर वह बनाया हुआ है। हम अपने को समझाए हुए हैं कि ऐसा है। फिर संतों की बातें सुनते हैं, उससे भी लोभ जगता है कि हमको भी यह गुणातीत अवस्था कैसे पैदा हो जाए! तो हम पूछना शुरू करते हैं, क्या करें? कैसे इससे छूटें? मजा करीब—करीब ऐसा है कि जिसको आप पकड़े हुए हैं, आप पूछते हैं, इससे कैसे छूटें? आप पकड़े हुए हैं, यह खयाल में आ जाए, तो छूटने के लिए कुछ भी न करना होगा, सिर्फ पकड़ छोड़ देनी होगी।

इस शरीर के साथ आप अपने को एक मान लेते हैं। आप पकड़े हुए हैं। आप इस शरीर को सुंदर मानते हैं। इस शरीर के साथ भोग की आशा है। इस शरीर से आपको सुख मिलते हैं, चाहे वे कोई भी सुख हों—चाहे संभोग का सुख हो, चाहे स्वादिष्ट भोजन का सुख हो, चाहे संगीत का सुख हो—इस शरीर के माध्यम से आपको मिलते हैं। वे सब सुख हैं। अगर वे सुख आपको अभी भी सुख

दिखाई पड़ रहे हैं, तो शरीर के साथ आप पकड़ कैसे छोड़ सकत्ए। हैं! क्योंकि इसके द्वारा ही वे मिलते हैं। अंत तक पकड़े रहते हैं।

एक बड़ी महत्वपूर्ण कहानी है। अमेरिकी अभिनेत्री मर्लिन मनरो मरी, तो एक कहानी प्रचलित हो गई कि जब वह स्वर्ग के द्वार पर पहुंची, तो सेंट पीटर, जो स्वर्ग के द्वारपाल हैं, ईसाइयों के स्वर्ग के द्वारपाल हैं, उन्होंने मनरो को देखा। वह अति सुंदर उसकी काया। सेंट पीटर ने कहा, एक नियम है स्वर्ग में प्रवेश का। स्वर्ग के द्वार के बाहर एक छोटा—सा पुल है, उस पुल पर से गुजरना पडता है। उस पुल के नीचे अनंत खाई है। उस खाई की ही गहराई में नरक है। उस पुल पर से गुजरते समय अगर एक भी बुरा विचार आ जाए—बुरे विचार का मतलब, शरीर से बंधा हुआ विचार आ जाए—तों तत्क्षण व्यक्ति पुल से नीचे गिर जाता है और नरक में प्रवेश हो जाता है।

मनरो और सेंट पीटर दोनों उस पुल से चले। और घटना यह घटी कि दो—तीन कदम के बाद सेंट पीटर नीचे गिर गए। मनरो जैसी सुंदर स्त्री को चलते देखकर कुछ खयाल सेंट पीटर को आ गया होगा! स्वर्ग के द्वार पर खड़े होकर भी अगर शरीर से सुख लेने का जरा—सा भी खयाल आ जाए, तो तादात्म्य हो गया। जिस चीज से हमें सुख लेने का खयाल होता है, उसी से तादात्म्य हो जाता है। शरीर से सुख मिल सकता है, जब तक यह खयाल है, तब तक आप जुड़े रहेंगे। जिस दिन आपको यह समझ में आ जाएगा कि शरीर से मिलने वाला हर सुख केवल दुख का ही एक रूप

है, जिस दिन आप यह खोज लेंगे कि शरीर से मिलने वाले हर सुख के पीछे दुख ही छिपा है, सुख केवल ऊपर की पर्त है, सिर्फ कड्वी जहर की गोली के ऊपर लगाई गई शक्कर से ज्यादा नहीं, उसी दिन तादात्म्य टूटना शुरू हो जाएगा।

यह पूछना कि कैसे जड़ त्रिगुणों से चैतन्य का तादात्म्य संभव हो पाता है?

इसीलिए संभव हो पाता है कि आप स्वतंत्र हैं। चाहें तो तादात्म्य बना सकते हैं, चाहें तो हटा सकते हैं। जब तक आप सोचते हैं कि सुख बाहर से मिल सकता है, तब तक यह तादात्म्य नहीं छूटेगा। जिस दिन आप जानेंगे, सुख मेरे भीतर है, मेरा स्वभाव है, उस दिन यह तादात्म्य छूट जाएगा।

अभी तो हम परमात्मा की भी खोज करें, तो भी शरीर से ही करनी पड़ती है। अभी तो हम पूछते हैं, परमात्मा को भी खोजें, तो कैसा आसन लगाएं? किस भांति खड़े हों? कैसे पूजा करें? कैसे

पाठ करें? कहां जाएं—हिमालय जाएं, कि मक्का, कि मदीना, कि काशी, कि जेरुसलम—कहां जाएं? कैसा भोजन करें? कैसे बैठें? कैसे उठें? ताकि परमात्मा को पा लें!

हमारी शरीर के साथ जोड़ की स्थिति इतनी गहन हो गई है कि हम परमात्मा को भी शरीर से ही खोजना चाहते हैं। हमें खयाल ही नहीं है कि शरीर के अतिरिक्त भी हमारा कोई होना है। और यह खयाल भी तभी आएगा, जब शरीर से हमें सब तरफ दुख दिखाई देने लगें।

बुद्ध ने निरंतर, सुबह से सांझ, एक ही बात कही है अपने भिक्षुओं को कि जीवन दुख है। और सिर्फ इसलिए कही है, ताकि तुम परम जीवन को जान सको। जब तुम्हें यहां दुख ही दुख दिखाई देने लगे, तो इस दुख से छूटने में जरा भी बाधा नहीं रह जाएगी। जहां दुख है, वहा से मन हटने लगता है। और जहां सुख है, वहां मन की सहज गति है।

तीसरा प्रश्न :
कृष्ण ने कई जगह सच्चिदानंदघन परमात्मा शब्द को दोहराया है। यह सच्चिदानंदघन परमात्मा क्या है?
आप! आपकी तरफ इशारा कर रहे हैं कृष्ण। वह जो चैतन्य है आपका, जहां से आप मुझे सुन रहे हैं, जहां से आप मुझे देख रहे हैं; वह जो आपके भीतर बैठी हुई जगह है, खाली जगह है, शून्य है।

एक तो मैं हूं यहां, बोल रहा हूं। और एक आप हैं, जो सुन रहे हैं। आपके कान नहीं सुन रहे हैं। कान तो केवल शब्दों को वहां तक ले जा रहे हैं, जहां आप सुन रहे हैं। एक तो मैं हूं, जो यहां बैठा हूं। और आप मुझे देख रहे हैं। आपकी आंखें मुझे नहीं देख रही हैं। आंखें तो केवल मेरे प्रतिबिंब को वहां तक ले जा रही हैं, भीतर आपके, जहां आप देख रहे हैं।

वह जो भीतर छिपा है सारी इंद्रियों के बीच में, वह जो केंद्र है सारी इंद्रियों के बीच में; जो स्वयं कोई इंद्रिय नहीं है। वह जो चेतना का केंद्र है भीतर, जहां से सारा होश है, जिसके कारण इंद्रिया चारों तरफ देख रही हैं, पहचान रही हैं, उसकी तरफ इशारा है। वह सच्चिदानंदघन परमात्मा है।

यह शब्द समझ लेने जैसा है। सच्चिदानंद, सत चित आनंद, तीन बड़े महत्वपूर्ण शब्दों से बना है।

सत का अर्थ होता है, जिसकी ही एकमात्र सत्ता है। बाकी सब चीजें स्वभवत हैं। वस्तुत: जो सत्य है, जिसका एक्सिस्टेंस है, वह सत। बाकी आप जो चारों तरफ देख रहे हैं, वह कोई भी वास्तविक नहीं है। सब बहता हुआ प्रवाह है; स्वप्न की लंबी एक धारा है। कल्पना से ज्यादा उसका मूल्य नहीं है। और आप देख भी नहीं पाते कि वहा चीजें बदल जा रही हैं। वहां किसी चीज की सत्ता नहीं है। परिवर्तन ही वहां सब कुछ है। जिसकी वास्तविक सत्ता है, वह कभी रूपांतरित नहीं होगा।

भारतीय मनीषियों का सत्य का एक लक्षण है, और वह यह कि जो कभी रूपांतरित न हो, जो सदा वही रहे, जो है। जो कभी बदले न, जिसके स्वभाव में कोई परिवर्तन न हो, जिसके स्वभाव में थिरता हो, अनंत थिरता हो, वही सत्य है। बाकी सब चीजें जो बदल जाती हैं, वे सत्य नहीं हैं। बदलने का मतलब ही यह है कि उनके भीतर कोई सब्स्टेंस, कोई सत्व नहीं है। ऊपर—ऊपर की चीजें हैं, बदलती चली जाती हैं।

जो सदा अपरिवर्तित खड़ा है! आपके भीतर एक ऐसा केंद्र है, जो सदा अपरिवर्तित खड़ा है। आप बच्चे थे, तब भी वह वैसा ही था। आप जवान हो गए, तब भी वह वैसा ही है। वह जवान नहीं हुआ, आपकी देह ही जवान हुई। यह जवानी गुणों का वर्तन है। कल आप के हो जाएंगे, तब भी वह का नहीं होगा। यह बुढ़ापा भी आपके शरीर के गुणों का वर्तन होगा।

एक दिन आप पैदा हुए, तब वह पैदा नहीं हुआ। और एक दिन आप मरेंगे, तब वह मरेगा नहीं। वह सदा वही है। वह जन्म के पहले भी ऐसा ही था, और मृत्यु के बाद भी ऐसा ही होगा। वह आधार है। उस पर सब चीजें आती और जाती हैं। लेकिन वह स्वयं निरंतर वैसा का वैसा बना है।

उस मूल आधार को कहते हैं सत।

दूसरा शब्द है, चित। वह मूल आधार केवल है ही नहीं, बल्कि चेतन है, होश से भरा है। होश उसका लक्षण है। उसे कुछ भी उपाय करके बेहोश नहीं किया जा सकता। जब आप बेहोश हो जाते हैं, तब भी वह बेहोश नहीं होता। सिर्फ आपके गुण बेहोश हो जाते हैं। जब आपको कोई शराब पिला देता है, तो चित में तो शराब डाली नहीं जा सकती। शराब तो शरीर में ही डाली जाती है। जब आपको मार्फिया दिया जा रहा है, तब भी; क्लोरोफार्म सुंघाया जा रहा है, तब भी, जो भी हो रहा है, वह शरीर में हो रहा है; शरीर के गुणधर्मों में हो रहा है। वह जो भीतर चित है, उसको बेहोश करने का कोई उपाय नहीं है।

तांत्रिकों में तो बड़ी पुरानी साधनाएं हैं, जिनमें जहर का, शराब का. सब तरह के नशे—गांजा, भाग, अफीम—सबका उपयोग किया जाता है। और उपयोग इसलिए किया जाता है, ताकि इस बात की परख आ जाए कि कैसे ही नशे का तत्व हो, कैसा ही मादक द्रव्य हो, वह केवल शरीर को छूता है, मुझे नहीं। और तब तक तांत्रिक नहीं मानता कि आप स्थितप्रज्ञ हुए, गुणातीत हुए, जब तक कि आपको सब तरह के जहर न दे दिए जाएं, और आप होश में न बने रहें। अगर आप होश खो दें, तो वह मानता है, अभी आप गुणातीत नहीं हुए। होश बना ही रहे, भीतर के होश की धारा न टूटे।

आपके भीतर के होश की धारा भी नहीं टूटती। किसी के भीतर की धारा नहीं टूटती। लेकिन आप भीतर की धारा से परिचित ही नहीं हैं। भीतर तो कोई जागा ही रहता है। वह उसका स्वभाव है। चितता, कांशसनेस, उसका स्वभाव है।

लेकिन आप अपने को माने हुए हैं शरीर। इसलिए जब शरीर बेहोश होता है, तो आप समझते हैं, आप बेहोश हो गए। यह आपकी मान्यता है। इस मान्यता के कारण आप समझ लेते हैं कि बेहोश हो गए। आप बेहोश होते नहीं।

अगर आप हिप्नोसिस से परिचित हैं, तो आपको पता होगा कि हिप्नोसिस का सारा खेल इतना ही है कि हिप्नोटाइजर जो आपसे कहे, आप उसको मान लें। अगर आप मान लें, तो वैसा ही होना शुरू हो जाएगा। मान्यता तथ्य बन जाती है।

अगर हिप्नोटिस्ट कहता है कि आपके हाथ में उसने एक अंगारा रख दिया है......। आप आंख बंद किए पड़े हैं और आपके हाथ में उठाकर एक रुपए का सिक्का रख देता है। कहता है, अंगारा रख दिया जलता हुआ। आप घबडाकर फेंक देंगे रुपया, क्योंकि आप मान लेते हैं कि अंगारा है। बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि आप न केवल फेंक देते हैं, बल्कि आपके हाथ में फफोला भी आ जाता है, जब कि वहा कोई अंगारा नहीं था। आपके हाथ ने बिलकुल वही व्यवहार किया, जो आपने मान लिया।

हिप्नोसिस पर बड़ा काम पश्चिम में हो रहा है। और उससे एक बात पता चलती है कि आदमी की चेतना मान लेने से ग्रसित हो जाती है। आपको पानी पिलाया जाए सम्मोहित अवस्था में और कहा जाए, शराब है। आप बेहोश हो जाएंगे, नशा आ जाएगा।

अभी कुछ प्रयोग तो ऐसे हुए हैं, जो कि बिलकुल अविश्वसनीय हैं। जिन पर कि आदमी के बस की बात ही समझ में नहीं आती।

हारवर्ड यूनिवर्सिटी में एक मरीज पर वे हिप्नोसिस का प्रयोग कर रहे थे। उसे बेहोश करके कहा गया कि उसके खून में ब्लड शुगर बढ़ रही है—सम्मोहित करके। जब उसे सम्मोहित किया गया, तो उसका खून लिया गया। उसकी जांच की गई। उसकी नार्मल ब्लड शुगर है।

ब्लड शुगर बड़ा मामला है। जब तक उसको बहुत शक्कर न खिलाई जाए, ग्लूकोज का इंजेक्शन न दिया जाए, तब तक उसके ब्लड में शुगर जा नहीं सकती। न उसे ग्लूकोज दिया जा रहा है, न शक्कर दी जा रही है, न कुछ। सिर्फ सजेशन दिया जा रहा है, सुझाव, कि तेरे खून में शुगर बढ़ रही है।

और उसके खून में शुगर बढ़ी। और थोड़ी—बहुत नहीं, पांच सौ तक उसके खून में शुगर बढ़ी। सिर्फ सुझाव से! खून में कुछ डाला नहीं गया है। जैसे—जैसे सुझाव गहन होने लगा, वैसे—वैसे खून में शुगर की मात्रा बढ़ती चली गई।

इस चैतन्य की एक क्षमता है कि यह जो भी मान ले, वैसी घटना घटनी शुरू हो जाएगी। यह हमारी मान्यता है कि मैं शरीर हूं इसलिए हम शरीर हो गए हैं।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जिन बच्चों को बचपन से कहा जाए, तुम मूढ़ हो, वे मूढ हो जाएंगे। न मालूम सैकड़ों बच्चों को हम अपने हाथ से मूढ़ बना देते हैं। लाखों बच्चे इसलिए मूढ़ रह जाते हैं कि घर में मां—बाप उनको मूढ़ कह रहे हैं, स्कूल में शिक्षक उनको मूढ़ कह रहे हैं। उनको बार—बार यह सुझाव मिलता है, और उनको बात जंच जाती है। जब सभी कह रहे हैं, तो बात ठीक होगी ही। यह एक तरह का सम्मोहन है। फिर वे मूढ़ ही रह जाते हैं।

जिन बच्चों को बचपन से खयाल मिलता है कि वे बड़े प्रतिभाशाली हैं, टैलेंटेड हैं, गुणवान हैं, उनमें वैसी वृत्ति पैदा होने लगती है। वे जो मानने लगते हैं, वैसे हो जाते हैं। मान्यता आपका जीवन बन जाती है।

तो आपको खयाल है कि रात आप सो जाते हैं, इसलिए आपको लगता है, आप सोए। सिर्फ शरीर सोता है, आप कभी नहीं सोते। यह सिर्फ धारणा है आपकी और बचपन से समझाया जा रहा है, इसलिए आप सो जाते हैं। आपको लगेगा कि सिर्फ धारणा ऐसे कैसे हो सकती है!

अमेजान में अभी तक आदिवासियों में जब भी स्त्री को बच्चा होगा, तो पति भी रोएगा, छाती पीटेगा, चिल्लाका। एक खाट पर पत्नी, एक खाट पर पति! प्रसव—पीड़ा दोनों को होती है।

हजारों साल से यह होता रहा। और जब पहली दफा ईसाई मिशनरी अमेजान पहुंचे, तो उनको विश्वास भी नहीं आया कि यह क्या पागलपन है। यह आदमी जरूर बन रहा होगा। क्योंकि हमें खयाल ही नहीं है कि जब स्त्री को बच्चा पैदा हो रहा है, इससे पति को प्रसव—पीड़ा का क्या संबंध है!

लेकिन जब जांच—पड़ताल की गई, तो वे बड़े चकित हुए कि वस्तुत: पीड़ा होती है। पति को पीड़ा होती है। क्योंकि अमेजान में यह विश्वास है कि बच्चा पति और पत्नी दोनों का कृत्य है। इसलिए अकेली पत्नी को क्यों पीड़ा हो! दोनों का हाथ है उसमें, आधा—आधा दोनों का बच्चा है, इसलिए दोनों कष्ट पाएंगे जब प्रसव होगा। और जांच से पता चला है कि शरीर में वास्तविक पीड़ा होती है। जैसे स्त्री के शरीर में सारा खिंचाव और तनाव होता है, वैसे ही पुरुष के शरीर में खिंचाव—तनाव होता है।

अब यह सिर्फ मान्यता की बात है। क्योंकि उनकी धारणा है, इसलिए होता है।

जितने सभ्य मुल्क हैं, वहां स्त्रियों को बच्चा पैदा करने में कष्ट होता है। सिर्फ सभ्य मुल्कों में! असभ्य मुल्कों में नहीं होता। ठेठ आदिवासियों में बिलकुल नहीं होता।

बर्मा में ऐसी जातियां हैं, स्त्रियां काम करती रहेंगी खेत में, बच्चा हो जाएगा। कोई दूसरा भी नहीं है। दाई, और नर्स, और अस्पताल का तो कोई सवाल ही नहीं है। बच्चा हो जाएगा, उसको उठाकर वे टोकरी में रख देंगी और वापस काम पर लग जाएगी। सांझ को अपने बच्चे को लेकर घर आ जाएंगी। बर्मा के उन जंगलों में खयाल ही नहीं है कि स्त्री को पीड़ा होती है। इसलिए पीड़ा नहीं होती।

आप जो कुछ भोग रहे हैं, उसमें अधिक तो आपकी मान्यताएं हैं। यह जो भीतर छिपा हुआ परमात्मा है, इसका दूसरा लक्षण है चित। यह कभी बेहोश नहीं हुआ है, और कभी सोया नहीं है। वह उसका स्वभाव नहीं है। इसलिए अगर आप अपने को बेहोश मानते हैं, नींद में मानते हैं, सम्मोहित मानते हैं, तो वह आपकी मान्यता है। मान्यता के अनुसार काम जारी रहेगा।

धर्म की पूरी खोज इतनी ही है कि मान्यताएं सब टूट जाएं और जो सत्य है, वह प्रकट हो जाए। जैसा है वैसा प्रकट हो जाए, और जो हमने मान रखा है, वह हट जाए।

तीसरा तत्व है, आनंद। सत चित आनंद। यह तीसरी बात भी ज्ञानियों की अनुभूत खोज है कि वह जो भीतर छिपा हुआ तत्व है, वह सत भी है, चित भी है, और वह परम आनंद भी है। सुख पाने की कोई जरूरत नहीं है उसको; वह स्वयं आनंद है। और अगर आप दुखी हो रहे हैं और सुख की तलाश कर रहे हैं, तो वह आपकी भ्राति है।

मनुष्य का स्वभाव आनंद है। इसलिए जिस दिन हम अपने स्वभाव से परिचित हो जाएंगे, सच्चिदानंद से मिलना हो जाएगा।

और इस सच्चिदानंद को परमात्मा कहा है। परमात्मा कहीं कोई बैठा हुआ व्यक्ति नहीं है, जो जगत को बना रहा है। परमात्मा आपके भीतर छिपा हुआ तत्व है, जो आपके भीतर खेल रहा है, आपके जीवन को फैला रहा है। और यह आपका ही हाइड एंड सीक है, लुका—छिपौव्वल है। जिस दिन आप सजग हो जाएंगे, जिस दिन आप बाहर की दौड़ से थक जाएंगे, ऊब जाएंगे, कहेंगे, बंद करो खेल।

जैसे बच्चे नदी की रेत में घर बनाते हैं, लड़ते हैं, झगड़ते हैं। बुद्ध बहुत बार इस दृष्टात को लेते रहे हैं कि नदी के किनारे बच्चे घर बना रहे हैं। रेत के घर हैं, वे कभी भी गिर जाते हैं। कोई बच्चे की लात लग जाती है; कोई बच्चा जोर से खड़ा हो जाता है; वे मकान गिर जाते हैं। तो बड़ा झगड़ा हो जाता है। मार—पीट भी हो जाती है कि तूने मेरा मकान गिरा दिया! इतनी मेहनत से मैंने बनाया था।

फिर सांझ होने लगती है, सूरज ढलने लगता है। कोई नदी के किनारे से चिल्लाता है कि बच्चो, घर जाओ। तुम्हारी माताएं तुम्हें याद कर रही हैं। वे बच्चे, जिनके घर को जरा चोट लग गई थी, किनारा झड़ गया था, रेत बिखर गई थी, लड़ने को तैयार हो गए थे, वे अपने ही घरों पर कूदकर, घरों को मिटाकर असली घरों की तरफ भाग जाते हैं। सांझ होने लगी, सूरज ढलने लगा, मा की आवाज आ गई। जिन घरों के लिए लड़े थे, मार—पीट की थी, उन घरों को खुद ही कूदकर मिटा देते हैं।

बस, ऐसा ही है, बुद्ध कहते थे कि जो भी हम बना रहे हैं अपने चारों तरफ, रेत के घर हैं; हमारा खेल है।

कोई हर्ज भी नहीं है। आप रस ले रहे हैं, बना रहे हैं। आपकी तकलीफ यह है कि आप पूरा रस भी नहीं ले पाते। पूरा बना भी नहीं पाते। पूरा बना लें, तो मिटाने का भी मजा आ जाए। सांझ को जब मिटाएंगे, तो कुछ मिटाने को भी तो

चाहिए। कुछ बना हुआ होगा, तो मिटा भी लेंगे। लेकिन कभी बना ही नहीं पाते पूरा और सांझ कभी आ नहीं पाती; दोपहर ही बनी रहती है। अधूरा ही अधूरा बना रहता है।

संसार में पूरी तरह उतर जाएं; जो भी खेल खेलना है, पूरी तरह खेल लें। खेल खेलते—खेलते ही यह होश आ जाएगा कि अब बहुत हो गया।

आपको भी कई दफा दिखाई पड़ता है कि अब बहुत हो गया। आपको भी बहुत दफा खयाल में आने लगता है कि यह मैं क्या कर रहा हूं! यह कब तक जारी रखूंगा! फिर आप अपने को भुला लेते हैं। यह तो खेल छोड़ने की बातें ठीक नहीं हैं। खेल मिटाने का मामला हो जाएगा। और जिंदगी एक व्यवस्था से चल रही है, उसे क्यों तोड़ना! फिर आप चलाने लगते हैं।

ये जो झलकें आपको आती हैं, वे झलकें इसी बात की हैं कि यह खेल वस्तुत: खेल है। और वास्तविक घर कहीं और छिपा है। जब यह बिलकुल ही व्यर्थ दिखाई पड़ने लगेगा, ऊब और दुख इसमें घने हो जाएंगे, तब आप अपने पीछे झांक सकेंगे।

वह जो पीछे छिपा है, कृष्ण बार—बार उसी को सच्चिदानंदघन परमात्मा कह रहे हैं। आपकी तरफ ही इशारा है। वह सबके भीतर छिपा है। सबका वही केंद्र है।

अब हम सूत्र को लें।
और जो निरंतर आत्म— भाव में स्थित हुआ, दुख—सुख को समान समझने वाला है; तथा मिट्टी, पत्थर और स्वर्ण में समान भाव वाला और धैर्यवान है; तथा जो प्रिय और अप्रिय को बराबर समझता है और अपनी निंदा—स्तुति में भी समान भाव वाला है, तथा जो मान और अपमान में सम है एवं जो मित्र और वैरी के पक्ष में भी सम है, वह संपूर्ण आरंभों में कर्तापन के अभिमान से रहित हुआ पुरुष गुणातीत कहा जाता है।

एक—एक शब्द को समझें।

जो निरंतर आत्म— भाव में स्थित हुआ........।

जो निरंतर एक ही बात स्मरण रखता है कि मैं हूं अपने भीतर। जो अपनी छवियों के साथ तादात्म्य नहीं जोड़ता; जो दर्पणों में दिखाई पड़ने वाले प्रतिबिंबों से अपने को नहीं जोड़ता; बल्कि जो सदा खयाल रखता है उस होश का, जो भीतर है। और जो सदा याद रखता है कि यह होश ही मैं हूं; मैं हूं यह चैतन्य, और इस चैतन्य को किसी और चीज से नहीं जोड़ता, ऐसी भाव—दशा का नाम आत्म— भाव है।

मैं सिर्फ चेतना हूं। और यह चेतना किसी भी चीज को कितना ही प्रतिफलित करे, उससे मैं संबंध न जोडू—गा। यह चेतना कितनी ही किसी चीज में दिखाई पड़े......।

रात चांद निकलता है; झील में भी दिखाई पड़ता है। आप झील में देखकर अगर उसको चांद समझ लें, तो मुश्किल में पड़ेंगे। अगर डुबकी लगाने लगें पानी में चांद की तलाश में, तो भटक ही जाएंगे। और दुख तो निश्चित होने वाला है; क्योंकि थोड़ी ही हवा की लहर आएगी और चांद टुकडे—टुकड़े हो जाएगा।

तो जहां भी हम जिंदगी को देखते हैं, वहा हर चीज टूट—फूट जाती है। क्योंकि हम प्रतिबिंब में देख रहे हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन एक रात एक कुएं के पास से गुजर रहा है। रमजान के दिन हैं। और उसने नीचे कुएं में झांककर देखा। वहां चांद का प्रतिबिंब दिखाई पड़ा। गहरा कुआ है। हवा की कोई लहर भी वहा नहीं है, तो चांद बिलकुल साफ दिखाई पड़ रहा है।

अकेला था। मरुस्थल का रास्ता था। आस—पास कोई दिखाई भी नहीं पड़ता था। नसरुद्दीन ने कहा, यह तो बड़ी मुसीबत हो गई। यह चांद यहां कुएं में उलझा है। और जब तक यह आकाश में दिखाई न पड़े, लोग मर जाएंगे भूखे रह—रहकर। रमजान का महीना है। इसे बाहर निकालना एकदम जरूरी है। यहां कोई दिखाई भी नहीं पड़ता जो सहायता करे।

तो बेचारे ने ढूंढ—ढांढ़कर रस्सी कहीं से लाया। रस्सी का फंदा बनाकर नीचे डाला। कुएं में चांद को फंसाने की रस्सी में कोशिश की। चांद तो नहीं फंसा, कुएं के किनारे पर कोई चट्टान का टुकड़ा होगा, वह फंस गया। उसने बड़ी ताकत लगाई। खींच रहा है। बड़ी मुश्किल में पड़ा है। और अकेला है। कहता है, कोई और है भी नहीं कि कोई साथ भी दे दे। और चांद वजनी मालूम पड़ता है। और चाद भी हइ कर रहा है कि बिलकुल रस्सी को पकड़े हुए है और उठ भी नहीं रहा है।

बड़ी ताकत लगाने से रस्सी टूट गई। मुल्ला भड़ाम से कुएं के नीचे गिरा। सिर में चोट भी आई। एक क्षण को आंख भी बंद हो गई। फिर आंख खुली, तो देखा, चांद आकाश में है। मुल्ला ने कहा, चलो भला हुआ। निकल तो आए। अब लोग नाहक रमजान में भूखे तो न रहेंगे। सिर में थोड़ी चोट लग गई; कोई हर्ज नहीं। रस्सी भी टूट गई; कोई हर्ज नहीं। लेकिन चांद को कुएं से मुक्त कर लिया।

जिस दिन आप आत्म— भाव में स्थित होंगे, उस दिन आपको भी ऐसा ही लगेगा कि जहां से हम अब तक अपने को खोज रहे थे, वहां तो हम थे भी नहीं। जहां से हम रस्सियां बांधकर, योजनाएं करके, साधनाएं साधकर और आत्मा को पाने की कोशिश कर रहे थे, वहां तो हम थे भी नहीं। चांद तो सदा आकाश में है। वह किसी कुएं में उलझा नहीं है। लेकिन कुओं में दिखाई पड़ता है।

आत्म— भाव का अर्थ है कि हम चांद को आकाश में ही देखें, कुओं में नहीं। आत्म— भाव का अर्थ है कि मेरी चेतना मेरे भीतर है। और किसी और वस्तु से बंधी नहीं है, कहीं भी छिपी नहीं है। मैं कहीं और नहीं हूं मुझमें ही हूं। इसलिए सब तलाश कहीं और की व्यर्थ है। और सब तलाश दुख में ले जाएगी; विफलता परिणाम होगा। क्योंकि वहां वह मिलने वाली नहीं है।

या इसको अगर आप सफलता कहते हों कि रस्सियां बांधकर, चांद को खींचकर और जब सिर फूटे और ऊपर आपको आकाश में दिखाई पड़ जाए अगर आप समझते हों कि आपने चांद को मुक्त कर लिया, तो ऐसी ही स्थिति बुद्ध को हुई होगी।

बुद्ध से कोई पूछता है, जब उनको ज्ञान हो गया, कि आपको क्या मिला? तो बुद्ध कहते हैं, मिला कुछ भी नहीं। इतना ही पता चला कि कभी खोया ही नहीं था।

नसरुद्दीन कहता है, चांद को निकाल लिया; मुक्त कर दिया आकाश में। बुद्ध कहते हैं, कुछ भी मिला नहीं, क्योंकि कभी खोया नहीं था। और जो मैंने जाना है, वह सदा से मेरे भीतर था। सिर्फ मेरी नजरें बाहर भटक रही थीं, इसलिए उसे मैं पहचान नहीं पा रहा था। अगर तुम पूछते ही हो, तो मैंने कुछ खोया जरूर है, अज्ञान खोया है। लेकिन पाया कुछ भी नहीं है। क्योंकि ज्ञान तो सदा से ही था। वह मेरा स्वभाव है।

आत्म— भाव में स्थित हुआ, दुख—सुख को समान समझने वाला......।

जो भी आत्म— भाव में स्थित होगा, उसे दुख—सुख समान हो जाएंगे, समता उसकी छाया हो जाएगी।

हमें दुख और सुख अलग—अलग क्यों मालूम पड़ते हैं? इसलिए अलग—अलग मालूम पड़ते हैं कि जो हम पाना चाहते हैं, वह हमें सुख मालूम पड़ता है। और जिससे हम बचना चाहते हैं, वह दुख मालूम पड़ता है। हालांकि हमारे सुख दुख हो जाते हैं और दुख सुख हो जाते हैं, फिर भी हमें बोध नहीं आता। जिस चीज को आप आज पाना चाहते हैं, सुख मालूम पड़ती है। और कल पा लेने के बाद छूटना चाहते हैं और दुख मालूम पड़ती है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक चर्च के पास से गुजर रहा है। उसकी पत्नी भी साथ है। उस चर्च में बड़ी तैयारियां हो रही हैं। बड़े फूल लगाए गए हैं। और बड़े दीए जलाए गए हैं। और द्वार पर लाल दरी बिछाई गई है। कोई स्वागत—समारंभ का इंतजाम हो रहा है। तो पत्नी पूछती है कि नसरुद्दीन, इस चर्च में? क्या होने वाला है?

उस चर्च में एक विवाह की तैयारी हो रही है। नसरुद्दीन कहता है, इस चर्च में? एक तलाक की तैयारी हो रही है। एक तलाक का प्रारंभ!

विवाह तलाक का ही प्रारंभ है। सब सुख दुख के प्रारंभ हैं। लेकिन दुख थोड़ी देर में पता चलेगा, पहले सब सुख मालूम होगा। जिसको हम पकड़ना चाहेंगे, उसमें सुख दिखाई पड़ेगा। और जिसको हम छोड़ना चाहेंगे, उसमें दुख दिखाई पड़ेगा।

आत्म— भाव में स्थित व्यक्ति को न तो कुछ पकड़ने की आकांक्षा रह जाती है, न कुछ छोड़ने की, इसलिए सुख—दुख समान हो जाते हैं। इसलिए सुख—दुख के बीच जो भेद है, वह कम हो जाता है, गिर जाता है। सुख और दुख में उसका कोई चुनाव नहीं रह जाता।

समान का अर्थ है, कोई चुनाव नहीं रह जाता। दुख आता है, तो स्वीकार कर लेता है। सुख आता है, तो स्वीकार कर लेता है। दुख आता है, तो पागल नहीं होता। सुख आता है, तो भी पागल नहीं होता। न उसे सुख उद्विग्न करता है, न दुख उद्विग्न करता है। जैसे सुबह आती है, सांझ आती है; ऐसे सुख आते—जाते रहते हैं, दुख आते—जाते रहते हैं। वह दूर खड़ा, अछूता, अस्पर्शित बना रहता है। आत्म— भाव में स्थित हुआ, दुख—सुख को समान समझने वाला है। मिट्टी, पत्थर और स्वर्ण में समान भाव वाला है। धैर्यवान है। तथा जो प्रिय और अप्रिय को बराबर समझता है। निंदा—स्तुति में समान भाव वाला है।

सभी द्वंद्व जिसके लिए समान हो गए हैं। चाहे प्रेम के, अप्रेम के; चाहे स्वर्ण के, मिट्टी के; चाहे मित्र के, शत्रु के; स्तुति के, निंदा के; जिसके लिए सभी भाव समान हो गए हैं। जो विपरीत को विपरीत की तरह नहीं देखता। जो पहचान लिया है कि .सुख दुख का ही छोर है, और जो समझ लिया है कि स्तुति में निंदा छिपी है। आज स्तुति है, कल निंदा होगी। आज निंदा है, कल स्तुति हो जाएगी। मित्रता और शत्रुता के बीच जिसको फासला नहीं दिखाई पड़ता; जिसे दोनों एक ही चीज की डिग्रीज मालूम पड़ती हैं।

यह उसी को होगा, जो आत्म— भाव में स्थित हुआ है। उसे यह द्वंद्व साफ दिखाई पड़ने लगेगा, द्वंद्व नहीं है। यह मेरे ही चुनाव के कारण द्वंद्व पैदा हुआ है।

बुद्ध ने कहा है, मैं कोई मित्र नहीं बनाता हूं क्योंकि मैं शत्रु नहीं बनाना चाहता हूं।

मित्र बनाएंगे, तो शत्रु बनना निश्चित है। आधा नहीं चुना जा सकता। और हम आधे को ही चुनने की कोशिश करते हैं। इससे हम कष्ट में पड़े हैं। अगर मित्र को चुनते हैं, तो शत्रु को स्वीकार कर लें। सुख को चुनते हैं, तो दुख को भी स्वीकार कर लें।

पर यह स्वीकृति, यह तथाता उसी को संभव है, जो अपने में स्थित हुआ हो, जो भीतर खड़े होकर देख सके—दुख को, सुख को, दोनों कों—निष्पक्ष भाव से। भीतर खड़ा हुआ व्यक्ति देख पाता है निष्पक्ष भाव से। भीतर खड़ा हुआ व्यक्ति तराजू की भांति हो जाता है, जिसके दोनों पलड़े एक सम स्थिति में आ गए; जिसका कांटा आत्म— भाव में थिर हो गया।

तथा जो मान—अपमान में सम है। मित्र और वैरी के पक्ष में भी सम है। संपूर्ण आरंभों में कर्तापन के अभिमान से रहित हुआ पुरुष गुणातीत कहा जाता है।

कुंजी है, आत्म— भाव में स्थित होना। जो आत्म— भाव में स्थित है, द्वंद्व में सम हो जाएगा। जो आत्म— भाव में स्थित है, वह कर्तापन से मुक्त हो जाएगा। उसे ऐसा नहीं लगेगा कि मैं कुछ कर रहा हूं। भूख लगेगी, पर वह भूखा नहीं होगा।

बड़ी मीठी कथा है कृष्ण के जीवन में। जैन शास्त्रों में उस कथा का उल्लेख है।

कृष्ण की पत्नी ने, रुक्मिणी ने कृष्ण से पूछा कि एक परम वैरागी नदी के उस पार ठहरा है। वर्षा के दिन हैं, नदी में पूर है। और कोई भोजन नहीं पहुंचा पा रहा है। आप कुछ करें। तो कृष्ण ने कहा, तू ऐसा कर कि जा और नदी के किनारे नदी से यह प्रार्थना करना—कथा बड़ी मीठी है—नदी से यह प्रार्थना करना कि अगर वह वैरागी, जो उस पार ठहरा है, वह संन्यस्त वीतराग पुरुष सदा का उपवास। हो, तो नदी मार्ग दे दे।

रुक्मिणी को भरोसा तो न आया, लेकिन कृष्ण कहते हैं, तो कर लेने जैसी बात लगी। और हर्ज क्या है; देख लें। और शायद यह हो भी जाए, तो एक बड़ा चमत्कार हो।

तो वह सखियों को लेकर बहुत—से मिष्ठान्न और भोजन लेकर नदी के पास गई। उसने नदी से प्रार्थना की। भरोसा तो नहीं था। लेकिन चमत्कार हुआ कि नदी ने रास्ता दे दिया। कहा इतना ही कि उस पार जो ठहरा संन्यस्त व्यक्ति है, अगर वह जीवनभर का उपवासा है, तो मार्ग दे दो।

नदी कट गई। अविश्वास से भरी रुक्मिणी, आंखों पर भरोसा नहीं, अपनी सहेलियों को लेकर उस पार पहुंच गई। उस वीतराग पुरुष के लिए भोजन वह इतना लाई थी कि पचास लोग कर लेते। वह अकेला संन्यासी ही उतना भोजन कर गया।

भोजन के बाद यह खयाल आया कि हम कृष्ण से यह तो पूछना भूल ही गए कि लौटते वक्त क्या करेंगे। क्योंकि नदी अब फिर बह रही थी। और अब पुरानी कुंजी तो काम नहीं आएगी। क्योंकि यह आदमी आंख के सामने भोजन कर चुका। और थोड़ा—बहुत भोजन नहीं कर चुका। निश्चित ही, जीवनभर का उपवासा रहा होगा। पचास आदमियों का भोजन उसने कर लिया! लेकिन अब पुरानी कुंजी तो काम नहीं आएगी। और अब कृष्ण से पूछने का कोई उपाय नहीं। तो एक ही उपाय है, इस वीतराग पुरुष से ही पूछ लो कि कोई कुंजी है वापस जाने की!

तो उसने कहा कि तुम किस कुंजी से यहां तक आई हो? तो उन्होंने कहा कि कृष्ण ने ऐसा कहा था, लेकिन वह तो अब बात बेकार हो गई। उस संन्यासी ने कहा कि वह बात बेकार होने वाली नहीं है। कुंजी काम करेगी। तुम नदी से कहो कि अगर यह संन्यासी जीवनभर का उपवासा हो, तो मार्ग दे दे।

पहले ही भरोसा नहीं आया था। अब तो भरोसे का कोई कारण भी नहीं था। अब तो स्पष्ट अविश्वास था। लेकिन कोई दूसरा उपाय भी नहीं था। इसलिए नदी से प्रार्थना करनी पड़ी। और नदी ने मार्ग दिया।

करीब—करीब होश खोई हुई हालत में रुक्मिणी कृष्ण के पास पहुंची। और उसने कहा, यह हद हो गई। यह बिलकुल भरोसे की बात नहीं है। क्योंकि हमने अपनी आंख से देखा है संन्यासी को भोजन करते हुए। उसके जीवनभर के उपवासे होने का कोई सवाल नहीं रहा।

कृष्ण ने कहा कि वही तुम नहीं समझ पा रही हो। भूख शरीर को लगती है, ऐसा जो जान लेता है, फिर भोजन भी शरीर में ही जाता है। ऐसा जो जान लेता है, उसका उपवास कभी भी खंडित नहीं होता। जिसको भूख ही न लगी हो, उसको भोजन करने का सवाल नहीं है। हम भोजन करते हैं, करते मालूम पड़ते हैं। कर्तापन आता है, क्योंकि भूख हमें लगती है, हमारी है।

इस प्रयोग को थोड़ा करके देखें। कल से स्मरण रखें कि भूख लगे, तो वह शरीर की है। प्यास लगे, तो शरीर की है। पानी पीए, तो शरीर में जा रहा है। प्यास बुझ रही, तो शरीर की बुझ रही है।

भूख मिट रही, तो शरीर की मिट रही है। भोजन करते समय, भूख के समय, प्यास के समय, पानी पीते समय, स्मरण रखें।

अगर इस स्मरण को आप थोड़े दिन भी रख पाएं, तो आपको एक अनूठा अनुभव होगा। और वह अनुभव यह होगा कि आपको साफ दिखाई पड़ने लगेगा कि मैं सदा का उपवासा हूं। वहा कभी कोई भूख नहीं लगी। कोई भूख पहुंच नहीं सकती वहा। चेतना में भूख का कोई उपाय नहीं है।

अमेरिका में एक व्यक्ति बड़ी अनूठी खोज में लगा हुआ है। उसकी खोज भरोसे योग्य नहीं है, लेकिन खोज के परिणाम बड़े साफ हैं। और उस व्यक्ति का कहना यह है कि एक समय था मनुष्य जाति के इतिहास में जब कोई भोजन नहीं करता था।

जैन शास्त्रों में ऐसे समय का उल्लेख है। जैनों के जो पहले तीर्थंकर हैं आदिनाथ, उन्होंने ही भोजन और कृषि और अन्न की खोज की। उसके पहले कोई भोजन नहीं करता था। लोग भूखे नहीं होते थे।

यह बात कहानी की मालूम पड़ती है। लेकिन जो आदमी अमेरिका में खोज कर रहा है, उसके बड़े वैज्ञानिक आधार हैं। और वह कहता है कि भोजन सिर्फ एक लंबी आदत है। और वह यह कहता है कि भोजन से शरीर को शक्ति नहीं मिलती। भोजन से ज्यादा से ज्यादा शरीर में जो शक्ति पड़ी है, उसको गति मिलती है। ऐसे ही जैसे कि पनचक्की चलती थीं। तो पानी चक्की के पंखे पर से गिरता था, पंखा घूमता था। पंखा तो मौजूद है, सिर्फ गिरता हुआ पानी पंखे को घुमा देता था।

इस वैज्ञानिक का कहना है कि शरीर में शक्ति मौजूद है। सिर्फ यह भोजन का शरीर में जाना और शरीर के बाहर मल होकर निकलना, यह सिर्फ शरीर के भीतर जो पंखे बिना चले पड़े हैं, उनको चलाता है। इससे कोई शक्ति मिलती नहीं। और आदमी बिना भोजन के रह सकता है।

और ऐसी घटनाएं हैं, जहां कुछ लोग बिना भोजन के रहे हैं चालीस—पचास साल तक भी। उनका वजन भी नहीं गिरा। उनके शरीर में कोई रोग भी नहीं आया। बल्कि वे बहुत स्वस्थ लोग रहे हैं।

अभी बवेरिया में एक स्त्री है, थेरेसा न्यूमेन। उसने तीस साल से भोजन नहीं किया है। रत्तीभर वजन नीचे नहीं गिरा है। और तीस साल से वह कभी बीमार नहीं पड़ी। न कोई मल—मूत्र का सवाल है। उसकी सारी अंतड़ियां सिकुड़ गई हैं। पेट ने सारा काम बंद कर दिया है। लेकिन उसका शरीर परिपूर्ण स्वस्थ है। और जितनी उसकी उम्र है, उससे कम उम्र मालूम होती है। क्या कारण होगा? इस बात की संभावना है कि हो सकता है भोजन मनुष्य जाति की सिर्फ एक गलत आदत हो। और किसी दिन आदमी भोजन से मुक्त किया जा सके।

एक बात निश्चित है कि शरीर को भला जरूरत हो या आदत हो, लेकिन भीतर जो चेतना है, उसको न तो जरूरत है और न आदत है। वह भीतर की चेतना परम ऊर्जा से भरी है। उसकी ऊर्जा का स्रोत शाश्वत है। उसको ऊर्जा रोज—रोज ग्रहण नहीं करनी पड़ती।

इसलिए हम उसे सच्चिदानंदघन परमात्मा कह रहे हैं। उसकी ऊर्जा मूल स्रोत से जुड़ी है। वह स्रोत शाश्वत है। वह कभी समाप्त नहीं होता। इसलिए उसमें रोज ईंधन डालने की जरूरत भी नहीं है। चेतना के लिए भोजन की कोई भी जरूरत नहीं है। शरीर के लिए हो या न हो, यह बात विवाद की हो सकती है। समय, भविष्य तय करेगा। लेकिन चेतना के लिए तो कोई भी जरूरत नहीं है। वह चेतना उपवासी है।

ऐसा भाव अगर बनने लगे, निर्मित होने लगे, तो आप में से कर्तापन धीरे— धीरे अपने आप गिर जाएगा। और जब भी आप किसी चीज का आरंभ करेंगे, किसी भी चीज की पहल करेंगे, तो आप जानेंगे यह शरीर के गुण इसकी पहल कर रहे हैं, मैं इसकी पहल नहीं कर रहा हूं।

शरीर को जितनी जरूरत होगी, आप दे देंगे। ज्यादा भी नहीं देंगे, कम भी नहीं देंगे। अभी हम दो ही काम करते हैं, या तो कम देते हैं या ज्यादा देते हैं। क्योंकि ठीक कितना देना, इसका हमें पता ही नहीं चल पाता। हम इतने जुड़े हैं, हमारा संबंध इतना जुड़ गया है शरीर से कि हम निष्पक्ष नहीं हो ?पाते। हम से ज्यादा निष्पक्ष तो जानवर हैं।

अगर कुत्ते को पेट में खराबी हो, तो वह भोजन नहीं करेगा, आप लाख उपाय करें। लेकिन आपको कितनी ही बीमारी हो, कितनी ही खराबी हो, आप भोजन करेंगे। शायद बीमारी में और ज्यादा कर लें, कि जरा ताकत की जरूरत है। कोई जानवर यह भूल नहीं करेगा। क्योंकि जानवर जानता है कि बीमारी में भोजन करने का मतलब है कि शरीर को और काम देना। शरीर पर बीमारी का काम है। उतना ही काम काफी है। उसको नया काम देना खतरनाक है।

शरीर को भोजन न दिया जाए, तो बीमारी जल्दी समाप्त हो जाती है। क्योंकि शरीर खुद बीमारी को निकालने में लग जाता है। शरीर की पूरी ताकत एक तरफ बहने लगती है, बीमारी खतम करने में। आप भोजन देकर ताकत पचाने में लगा देते हैं। तो भोजन बीमारी को बढ़ाएगा, कम नहीं कर सकता।

कोई जानवर राजी नहीं होगा। साधारण—सा कुत्ता, जिसको हम बहुत समझदार नहीं कहते, वह भी भोजन नहीं करेगा। भोजन तो करेगा ही नहीं, घास—पात खाकर वमन कर देगा। जो पेट में पड़ा है, उसको भी निकाल देगा। ताकि खाली हो जाए; ताकि शरीर की पूरी ऊर्जा पचाने में नष्ट न हो, बीमारी से लड़ने में लग जाए।

और शरीर के पास नैसर्गिक व्यवस्था है बीमारियों से लड़ने की। वह सब बीमारियों के पार उठ सकता है। और अगर आधुनिक आदमी नहीं उठ पाता, तो उसका कारण यह है कि वह शरीर की ऊर्जा को तो भोजन में ही लगाए रखता है।

हम निष्पक्ष नहीं हो पाते, बीमारी में ज्यादा खा लेते हैं। हमें कभी पता भी नहीं चलता, ठीक हमारा, जिसको पता चलने का बोध कहना चाहिए, वह भी क्षीण हो गया है। हमें पता ही नहीं चलता कि कितना खाना, कब खाना, कब नहीं खाना, उसका हमें कोई बोध नहीं रहा है। कोई नैसर्गिक हमारी प्रतीति नहीं रही है कि कितना खाना, कितना नहीं खाना; कब कुछ करना और कब नहीं करना, कहा रुक जाना।

उस सबका कारण इतना है कि हम इतने ज्यादा जुड़ गए हैं शरीर के साथ कि दूर खड़े होने से, दूर से देखने पर जो निष्पक्षता होती है, वह नष्ट हो गई है। साक्षी— भाव उस निष्पक्षता को ले आएगा। आत्म— भाव उस निष्पक्षता को ले आएगा। आप दूर खड़े होकर देख सकेंगे।

और ध्यान रहे, बहुत—सी समस्याएं सिर्फ इसलिए नहीं हल हो पातीं कि आप दूर नहीं हो पाते।

आपके पास कोई दूसरा आदमी आए और अपनी कोई समस्या कहे, तो आप जो सुझाव देते हैं, वह हमेशा सही होता है। वह दूसरे की समस्या है। आप दूर से खड़े होकर देखते हैं। वही समस्या आप पर आ जाए, फिर आपकी बुद्धि काम नहीं करती। जो दूसरे को सलाह देने में काम कर रही है, वह खुद को सलाह देने में काम नहीं कर पाती। वैसे ही जैसे एक सर्जन अपनी पत्नी का आपरेशन कर रहा हो। सर्जन अपनी पत्नी का आपरेशन करने को राजी नहीं होगा। जब तक कि मार डालने की इच्छा न रखता हो। क्योंकि वह जानता है, पत्नी से इतनी निकटता है, हाथ कंपेगा। वह निष्पक्ष नहीं हो पाएगा। तो सर्जन अपने मित्र को कहेगा कि तू आपरेशन कर। निष्पक्षता न हो, तो सब चीजें कंप जाती हैं। निष्पक्षता हो, तो हम अडिग बने रहते हैं; बोध साफ होता है; चीजें स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं; धुआं नहीं होता।

जितना आत्म— भाव बढ़ेगा, जितना आप अपने को शरीर से अलग और चेतना के साथ एक मानेंगे, देखेंगे, समझेंगे, ठहरेंगे, उतना ही आप पाएंगे कि चीजें उतनी ही होती हैं, जितनी जरूरी हैं।

जरूरत पर रुक जाना, जरूरत से आगे इंचभर न जाना। तो फिर आपके लिए कोई बंधन नहीं है। क्योंकि तब शरीर के चलने योग्य शरीर को देते रहेंगे आप। शरीर अपनी गतिविधि पूरी कर लेगा और समाप्त हो जाएगा। जिस दिन शरीर की गतिविधि पूरी हो जाएगी, जैसे दीए का तेल चुक गया, वैसे ही दीया बुझ जाएगा। और इस शरीर के दीए के बुझते ही आपके जीवन में महासूर्य का उदय होगा। इस दीए पर आंखें बंधी हैं, इसलिए सूरज को देखना मुश्किल है।

कृष्ण कहते हैं, आत्म— भाव में स्थित हुआ, संपूर्ण आरंभों में कर्तापन के अभिमान से रहित हुआ पुरुष गुणातीत कहा जाता है।

ऐसा जो व्यक्ति है, ऐसी जो चेतना है, वह गुणों के अतीत है। और गुणातीत हो जाना परम सिद्धि है।

गीता दर्शन–(भाग–7)
अध्याय—14 (प्रवचन—दसवां) — अव्यभिचारी भक्ति

सूत्र—
मां च योऽव्यभिचारैण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान्समतींत्यैतान्ब्रह्मभयाय कल्पते।।26।।
ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च।।27।।
और जो पुरुष अव्यभिचरीं भक्तिरूप योग के द्वारा मेरे को निरंतर भजता है, वह इन तीनों गुणों को अच्छी प्रकार उल्लंघन करके सच्चिदानंदघन ब्रह्म में एकीभाव होने के लिए योग्य होता है।

तथा हे अर्जुन, उस अविनाशी परब्रह्म का और अमृत का तथा नित्य धर्म का और अखंड एकरस आनंद का मैं ही आश्रय हूं।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्न :
ऐसा लगता है कि चेतना या बोध का विस्तार समस्त धर्म—साधना का मूल है, तब क्या ज्ञान व भक्ति, योग व तंत्र, कर्म व अकर्म आदि अनेकानेक मार्गों से इसी बुनियादी तत्व की खोज की जाती है? और यदि इसी सुई को खोजना है, तो उसके इर्द—गिर्द सिद्धांतों का इतना भारी जंगल क्यों खड़ा किया जाता है?
सत्य तो अत्यल्प है, अति छोटा है। एक क्षण में भी समा जाए, एक शब्द में भी। पर वैसे सत्य को आप समझ न पाएंगे। उस अणु को आप देख न पाएंगे। वह सूक्ष्म है, इसी कारण आप उससे चूक जाएंगे। उस छोटे—से सत्य को दिखाने के लिए आपकी बुद्धि बहुत—सी मांग करती है।

सिद्धांतों के जाल सत्य को इंगित करने के लिए नहीं खड़े किए जाते, आपकी बुद्धि की तृप्ति के लिए खड़े किए जाते हैं। और बिना तृप्त हुए आप खोज में संलग्न नहीं हो सकते।

आपके सभी प्रश्न व्यर्थ हैं। अर्जुन जो कृष्ण से पूछ रहा है, सभी व्यर्थ है। आनंद जो बुद्ध से पूछ रहा है, सभी व्यर्थ है। लेकिन वह पूछ रहा है, और जब तक उसे उत्तर न मिल जाएं, तब तक उसकी यात्रा प्रारंभ न होगी।

आप व्यर्थ ही पूछ रहे हों, तो भी सदगुरु को इसके उत्तर देने पड़ेंगे। इतना भर कह देने से कि वह व्यर्थ है, आपकी कोई तृप्ति नहीं होगी। इतना भर कह देने से कि असंगत है, पूछने में कोई सार नहीं है, आपकी तृप्ति नहीं होगी।

उत्तर देने का यह अर्थ नहीं है कि जो आप पूछ रहे हैं, वह सार्थक है। उत्तर देने का इतना ही अर्थ है, ताकि आपकी जिज्ञासा घिस—घिसकर शांत हो जाए। आप पूछ—पूछकर थक जाएं। गुरु नहीं थकेगा, उत्तर देता जाएगा। वह आपको थका रहा है। एक ऐसी घड़ी आ जाए, जहां आप खुद ही कहने लगें, अब पूछना नहीं है; अब कुछ करना है। और जब आप कहेंगे, अब कुछ पूछना नहीं, कुछ करना है, तब बात बहुत छोटी है।

जैसे छोटे बच्चे को कुछ समझाना हो, तो कहानी का जाल खड़ा करना पड़ता है। और बुद्धिमान बच्चों को कुछ समझाना हो, तो सिद्धांतों के जाल खड़े करने पडते हैं। ये सिद्धांतों के जाल उतने ही बड़े खड़े करने पड़ेंगे, जितनी आपकी बुद्धिमत्ता प्रश्न उठाती चली जाएगी।

झेन फकीर हुआ, रिंझाई। उससे एक सम्राट ने आकर पूछा कि जो भी जानने योग्य है, जो भी पाने योग्य है, आप एक शब्द में मुझे कह दें। रिंझाई ने कहा, जरूर कहूंगा। जो भी पूछने योग्य है, आप एक शब्द में मुझसे पूछ लें। अगर आप एक शब्द में उसे पूछ लेंगे, तो मैं एक शब्द में उसे कह दूंगा। और अगर आप मौन में पूछने में समर्थ हों, तो एक शब्द की भी कोई जरूरत नहीं। आप मौन में ही पूछ लें, मैं मौन में ही कह दूंगा।

आप कितना लंबा करके पूछते हैं, इस पर निर्भर करेगा कि गुरु कितना लंबा शब्दों का जाल खड़ा करे। आपका प्रश्न कितना ही छोटा लगता हो, बहुत बड़ा होता है। उसके सारे पहलू छू लेने जरूरी हैं। अगर उसका एक भी पहलू आपके भीतर अनछुआ रह जाए, तो वह आपको कचोटता रहेगा, परेशान करता होगा। उसका मूल्य कुछ भी नहीं है। लेकिन आपको मूल्यवान लगता है।

अर्जुन जो भी पूछ रहा है, उसका कुछ भी मूल्य नहीं है। और कृष्ण सीधा ही कह सकते हैं कि व्यर्थ है यह प्रश्न, मत पूछ। जो मैं कहता हूं, वह कर। लेकिन अर्जुन को अगर ऐसा कहा जाए कि जो वह पूछ रहा है, वह व्यर्थ है, और कृष्ण जो कहते हैं, वह वह करे। करना मुश्किल होगा! क्योंकि अर्जुन तिरस्कृत हो गया। और जिस अर्जुन का इतना भी मूल्य नहीं है कृष्ण की आंखों में कि उसके प्रश्नों का उत्तर दें, वह अर्जुन कृष्ण पर श्रद्धा भी नहीं कर सकेगा। वह अर्जुन कृष्ण की मानकर भी नहीं चल सकेगा।

उसकी बुद्धि की खुजली थोड़ी तृप्त होनी जरूरी है। यद्यपि उस खुजली से कुछ हल होने वाला नहीं है। खुजली खुजलाने से और बढ़ती है। न केवल बढ़ती है, बल्कि लहूलुहान भी कर सकती है; दुख और पीड़ा भी ला सकती है। लेकिन उस सीमा तक जाना ही होगा।

गुरु को अनंत धैर्य चाहिए। अगर अधीर गुरु हो, तो आपके साथ एक क्षण गति नहीं हो सकती। उसको इतना धैर्य तो चाहिए ही, जितना धैर्य आपमें पूछने का है। इससे थोड़ा ज्यादा चाहिए। आप जब पूछकर चुक जाएं, तब भी वह जवाब देने को तैयार है। ये जवाब आपकी जिज्ञासाओं के मूल्य के कारण नहीं दिए जाते हैं। आपकी जिज्ञासाएं समाप्त हो जाएं, गिर जाएं......। ये उत्तर प्रश्नों के उत्तर नहीं हैं, प्रश्नों को गिराने की योजना है। और मन की एक क्षमता है, उस क्षमता के बाद मन गिर जाता है। और खुद ही आप कहने लगते हैं कि अब पूछना नहीं, अब कुछ जानना नहीं; अब कुछ करना है, अब कुछ होना है। उस घड़ी की तलाश है।

और जब तक आप न पूछें, तब तक गुरु कहे कि कुछ करो, व्यर्थ है। क्योंकि करना आपको है। और जब तक आपके भीतर यह भाव सजग न हो जाए, तब तक इस भाव को पैदा नहीं किया जा सकता।

इसलिए बुद्ध जीवनभर बोलते हैं, सुबह से सांझ तक बोल रहे हैं। वे ही प्रश्न लोग फिर—फिर पूछते हैं, बुद्ध फिर—फिर उत्तर दे रहे हैं। सिर्फ इस धैर्य में कि आप थकोगे।

पूछने वाला अनंत नहीं है, और जवाब देने वाला अनंत है। वह जो शिष्य खोज रहा है, उसकी खोज की सीमा है। और जिस कृष्ण या बुद्ध के पास खोज रहा है, उसके सागर की कोई सीमा नहीं। वह आपको थका ही डालेगा।

गुरु से जीतने का उपाय नहीं है। उससे हारना ही होगा। वही हार आपकी विजय भी होगी। क्योंकि उसी दिन आप शब्दों के ऊपर उठेंगे।

इसे ऐसा समझें, एक कांटा लग जाए, तो दूसरे कांटे से उस कांटे को निकालना पड़ता है। आपके पैर में कांटा लगा है, कोई कृष्ण, कोई बुद्ध, उसे दूसरे कांटे से बाहर निकालते हैं। आप कह सकते हैं कि मैं एक ही कांटे से परेशान हूं; तुम दूसरा कांटा मेरे पास क्यों ला रहे हो? एक कांटा मेरे पैर में चुभा है, उससे ही पीड़ा पा रहा हूं। तुम और दूसरा चुभा रहे हो! ऊपर से ऐसा ही दिखेगा। दूसरा कांटा भी चुभाना होगा, क्योंकि दूसरा कांटा पहले कांटे को बाहर निकाल सकता है। दोनों कांटे हैं। दोनों में चुभन है। और जब कांटा बाहर निकल आएगा पहला दूसरे कांटे से, तो दोनों फेंक दिए जाएंगे।

आपको शब्दों के कीटों की चुभन है। शब्दों के ही काटो से उन्हें निकालना होगा। और जब निकल आएगी आपकी शब्दों की चुभन, प्रश्न बाहर हो जाएंगे, तो दोनों फेंक दिए जाएंगे।

जब अर्जुन ठीक सन्स की हालत में आएगा, तो जो उसने पूछा था, वह तो व्यर्थ है ही, जो कृष्ण ने कहा था, वह भी उतना ही व्यर्थ है। उस दिन वह गीता को आग लगा दे सकता है। और जब तक शिष्य गीता को आग लगाने में समर्थ न हो जाए, तब तक जानना अभी चुभन मिटी नहीं है। अभी पहला कांटा गड़ा है, दूसरे से निकालने की कोशिश चल रही है। जब दोनों ही कांटे बाहर हो गए, तो दोनों ही फेंकने जैसे हैं।

इसलिए सभी शास्त्र व्यर्थ हो जाते हैं। और एक घड़ी जरूर आती है, जब आप शास्त्र की तरफ पीठ कर लेते हैं। और जब तक यह घड़ी न आ जाए, तब तक समझना कि जीवन में अभी वास्तविक क्षण नहीं आया। जब तक शास्त्र व्यर्थ न हो जाए, तब तक समझना, बुद्धि अभी सता रही है, अभी विचार परेशान कर रहे हैं; अभी मन घूम रहा है, भटक रहा है, प्रश्न उठा रहा है। अभी संदेह बाकी है।

जब तक शास्त्र आपको मूल्यवान दिखे, तब तक समझना कि संदेह बाकी है। जिस दिन संदेह मिटेगा, उस दिन शास्त्र की कोई भी जरूरत नहीं, क्योंकि शास्त्र संदेह मिटाने के लिए ही उपयोगी है। ऐसे ही जैसे एक बीमार आदमी है। दवा की बोतल लिए घूमता है। फिर जब वह स्वस्थ हो जाएगा, तो बीमारी ही नहीं छूटेगी, दवा की बोतल भी छूट जाएगी।

शास्त्र औषधि से ज्यादा नहीं हैं। उनका अपने में कोई भी मूल्य नहीं है। औषधि का क्या मूल्य है अपने में? अगर आप बीमार नहीं हैं, तो औषधि का कोई भी मूल्य नहीं है। आप बीमार हैं, तो बड़ा मूल्य है। शास्त्र का अपने में कोई मूल्य नहीं है। बीमार मन के लिए शास्त्र की औषधि सार्थक है। पर इस घड़ी को लाने के लिए भी दूसरे कांटे का उपयोग करना होगा।

तो कृष्ण कुछ सत्य नहीं दे रहे हैं अर्जुन को। सत्य तो दिया नहीं जा सकता। असत्य छीना जा सकता है, सत्य दिया नहीं जा सकता। इसे थोड़ा ठीक से समझ लें।

स्वास्थ्य दिया नहीं जा सकता, बीमारी हटाई जा सकती है। स्वास्थ्य भीतरी भाव है। इसलिए दुनिया में कोई दवा नहीं, जो स्वास्थ्य दे सके। दवा तो सिर्फ बीमारी को काटती है। बीमारी कट जाती है, स्वास्थ्य आपके भीतर उत्पन्न होता है। स्वास्थ्य दवा से भीतर नहीं जाता। दवा तो बीमारी को काटती है। बीमारी भी एक जहर है, और दवा भी एक जहर है। और जहर से जहर कट जाता है। और आपके भीतर स्वस्थ होने की क्षमता तो छिपी है, बीमारी के हटते ही वह प्रकट होनी शुरू हो जाती है।

सत्य आपके भीतर छिपा है। कोई कृष्ण, कोई बुद्ध सत्य नहीं दे सकते। कोई कभी किसी को सत्य नहीं दिया है। सिर्फ आपका असत्य कांटा जा सकता है।

ये सिद्धांतों के जाल आपके असत्य को काटने के लिए हैं। और आपने असत्य को इतनी मजबूती से जमाया है कि उसको इतनी ही मजबूती से कोई कांटे, तो ही काट पाएगा।

अर्जुन काफी पैर जमाकर खड़ा है। वह अपने संदेह को छोड़ता नहीं है। वह अपनी शंकाओं को हटाता नहीं है। वह अपनी समस्या को नए रूपों में खड़ा करता जाता है। जितने नए रूपों में वह खड़ा करेगा, कृष्ण उतने नए रूपों से हमला करेंगे। इस बीमारी के लिए औषधि खोजनी होगी।

जिस क्षण अर्जुन संदेह से मुक्त हो जाएगा, उसी क्षण कृष्ण चुप और मौन हो जाएंगे। उसी दिन शास्त्र व्यर्थ हो जाएगा। फिर शास्त्र की कोई भी जरूरत नहीं है।

इतने सिद्धांतों का जाल इसलिए है कि आपने संदेहों का जाल खड़ा कर रखा है। यह तो सिर्फ एंटीडोट है। सिद्धात संदेह का एंटीडोट है।

जितने संदेहशील लोग होंगे, उतने ज्यादा शास्त्रों की जरूरत पड़ जाएगी। जब लोग बिलकुल संदेहशील नहीं होंगे, शास्त्र तिरोहित हो जाएंगे। जिस गांव में कोई बीमार न होगा, वहां से डाक्टर धीरे— धीरे विदा हो जाएगा; औषधियां विलुप्त हो जाएंगी।

असत्य के कारण इतने शास्त्र हैं। असत्य के लिए इतने शास्त्र हैं। संदेह के कारण इतने सिद्धात हैं। अगर सिद्धात कम करने हों, तो सिद्धात कम करने से न होंगे; संदेह कम करें, सिद्धात कम हो जाएंगे। आप असंदिग्ध खड़े हो जाएं, आपके लिए एक भी सिद्धात नहीं है।

अगर अर्जुन असंदिग्ध खड़ा होता कृष्ण के सामने, तो कृष्ण एक शब्द भी नहीं बोलते। बोलने का कोई प्रयोजन नहीं था। बीमारी ही न हो, तो औषधि का कोई अर्थ नहीं है।

दूसरा प्रश्न :
कल आपने जो कहा, उससे ऐसा प्रतीत होता है कि गुरु जो साधना करवाता है और शिष्य जो साधना करता है, उसकी मात्र उपादेयता, करने की व्यर्थता को जान लेना है। क्या करने की व्यर्थता को जान लेना साधक के लिए अनिवार्य है? और क्या विभिन्न साधनाओं का अपने आप में मूल्य नहीं है?
यही मूल्य है। इतना ही मूल्य है। इससे ज्यादा मूल्य नहीं है। समस्त प्रक्रियाओं का इतना ही मूल्य है कि आपको पता चल जाए कि करने से कुछ भी न होगा। कर—करके आप थक जाएं और उस जगह आ जाएं, जहां करने की वासना ही न उठे। जहां लगे, करने से कुछ होगा ही नहीं। जिस क्षण भी करने की वासना न उठेगी, उसी क्षण आप कर्ता से मुक्त हो गए उसी क्षण अहंकार शून्य हो गया।

करने में सार्थकता दिखती है, क्योंकि करने वाले में सार्थकता है। आप कुछ कर—करके क्या सिद्ध कर रहे हैं? कि मैं करने वाला हूं! आप अपने कर्ता को सिद्ध कर रहे हैं।

कोई धन इकट्ठा करके सिद्ध कर रहा है कि मैं बड़ा कर्ता हूं। कोई ज्ञान इकट्ठा करके सिद्ध कर रहा है कि मैं बड़ा कर्ता हूं। कोई त्याग करके सिद्ध कर रहा है कि मैं बड़ा कर्ता हूं। लेकिन सभी की मूल बात एक है कि मैं हूं। सब अपने अहंकार को सिद्ध कर रहे हैं। और अहंकार जब तक न मिटे, तब तक परमात्मा से कोई संबंध नहीं है। तो एक ही उपाय है कि आपका सब करना व्यर्थ हो जाए, आप सब जगह असफल हो जाएं, आपको कहीं भी सफलता न मिल पाए। जिस दिन आपकी असफलता पूर्ण होगी, जिस दिन आपको रंचमात्र भी आशा न रह जाएगी कि मैं सफल हो सकता हूं, उसी दिन आपका मैं गिरेगा। और मैं के गिरते ही परम सफलता मिल जाएगी। क्योंकि मैं के गिर जाने का अर्थ ही यह है, अब कुछ खोजने को न रहा। दीवार गिर गई। द्वार खुल गए।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने गांव में ज्योतिषी का काम भी करता था। बैठा था बाजार में अपनी दुकान खोलकर, कि गांव का एक राजनेता जो कि चुनाव अभी—अभी हार गया था, वहां से निकला। नसरुद्दीन ने कहा कि ठहरो, अपना भविष्य नहीं जानना चाहते? उस राजनेता ने कहा, छोड़ो भविष्य अब; अब मैं हार चुका, अब कोई भविष्य नहीं है। मैं आत्महत्या करने जा रहा हूं। मेरे लिए तुम्हारे ज्योतिष का कोई मूल्य नहीं है। नसरुद्दीन ने कहा, रुको। यह तो जान लो कि आत्महत्या में सफल होओगे या नहीं!

जब तक आप कुछ भी करने जा रहे हैं, आत्महत्या भी करने जा रहे हैं, तब तक भी कर्ता पीछे खड़ा है। जब तक आपको लग रहा है, आप कुछ कर सकते हैं, तब तक आपका अहंकार जागा हुआ है।

फ्रांस के एक बहुत बड़े विचारक अल्वेयर कामू ने एक कीमती वक्तव्य दिया है। और वह वक्तव्य यह है कि आदमी चाहे कुछ और न कर सकता हो, चाहे सभी जगह आदमी असफल, असमर्थ मालूम पड़ता हो, लेकिन आत्मघात एक ऐसी बात है, जिससे सिद्ध हो जाता है कि हम भी हैं।

ध्यान रहे, जो लोग आत्मघात करते हैं, अक्सर अहंकारी लोग होते हैं। जो जीवन में सफल नहीं हो सके, लेकिन जो स्वीकार नहीं कर सकते हैं कि हम कुछ भी नहीं हैं, वे आत्मघात करके अपने को बता देते हैं कि कुछ तो मैं कर ही सकता हूं। इतना तो कर ही सकता हूं कि अपने को समाप्त कर लूं।

दोस्तोवस्की का प्रसिद्ध उपन्यास है, ब्रदर्स कर्माझोव। उसमें एक पात्र कहता है आकाश की तरफ हाथ उठाकर कि हे परमात्मा, अगर तू कहीं भी है और मुझे मिल जाए, तो मैं सिर्फ एक काम करना चाहता हूं। मैं तुझे वह टिकट वापस करना चाहता हूं जो तूने मुझे संसार में भेजने के लिए दी है। और तुझसे कह देना चाहता हूं यह संसार बेकार है।

आत्महत्या करने वाला यही कर रहा है। वह कह रहा है परमात्मा से कि सम्हालो अपना यह संसार। इतना करने को तो कम से कम मैं स्वतंत्र हूं। इसमें तुम मुझे न रोक सकोगे।

इसलिए आत्मघात अक्सर अहंकार की आखिरी परिणति है। विनम्र मनुष्य कभी आत्मघात नहीं कर सकता। निरहंकारी तो सोच भी नहीं सकता। क्योंकि निरहंकारी का मतलब ही यह है कि मेरे हाथ में कुछ भी नहीं है। जीवन भी मेरे हाथ में नहीं है; मृत्यु भी मेरे हाथ में नहीं है। मैं इस विराट की लीला में सिर्फ एक अंग हूं। उस अंग की कोई अपनी, सारे अस्तित्व से टूटी हुई, अस्मिता नहीं है। उसका कोई अपना अहं नहीं है।

मैं इस विराट का एक हिस्सा हूं जैसे लहर सागर का हिस्सा है। सागर जहां ले जाए, वहां लहर चली जाएगी। लहर अपना मार्ग नहीं चुन सकती। लहर यह नहीं कह सकती कि मुझे पूरब जाना है। जाए पूरा सागर पश्चिम, लेकिन मुझे पूरब जाना है!

अहंकारी मनुष्य अपने को मिटाने की तत्परता में लगा है। और जितना अहंकारी होगा, उतना ही जल्दी उसे लगेगा कि खत्म कर लूं। क्योंकि जितना अहंकार होगा ज्यादा, उतनी ही जीवन में विफलता मिलेगी। हर जगह अहंकार टूटेगा।

साधक का तो एक ही अथ है कि अब वह अहंकार तोड्ने के लिए तैयार है। और अहंकार तभी टूटेगा, जब कर्ता का भाव मिटे। कर्ता का भाव तब टूटेगा, जब सभी कर्म तुम्हारे असफल हो जाएं। तुम्हारी सारी विधियां, तुम्हारी सारी क्रियाएं, तुम्हारे सारे मार्ग व्यर्थ हो जाएं। तुम एक ऐसी जगह पहुंच जाओ, जहां तुम कह सको कि मेरे किए कुछ भी नहीं होता, मेरे किए कुछ भी नहीं होगा।

ऐसी जो परम विफलता है, इस परम विफलता में ही मनुष्य को पता चलता है कि मैं असहाय हूं। इस परम विफलता में ही उसे पता चलता है कि मेरे भीतर कोई अहंकार का केंद्र नहीं है। मैं सिर्फ एक लहर हूं सागर पर।

एक तरफ से देखने पर यह विफलता है। और दूसरी तरफ से देखने पर यही जीवन में धर्म का जन्म है। बडी से बड़ी सफलता है। एक कोने से, संसार की तरफ से देखने पर, यह सबसे बड़ी हार है। परमात्मा की तरफ से देखने पर यह सबसे बड़ी विजय है। जो इस हार के लिए राजी नहीं है, वह परमात्मा के जगत में कभी विजय उपलब्ध नहीं करेगा।

इसलिए गुरु की सारी चेष्टा यह है...। तुम पूछते हो, क्या करें? गुरु यह कहे, कुछ न करो, उससे तुम्हें तृप्ति न मिलेगी। तुम पूछते हो, क्या करें? गुरु तुम्हें देता है कि कुछ करो। कर—करके वह तुम्हें उस जगह लाएगा, जहां तुम खुद ही कहने लगोगे, करने से कुछ भी नहीं होता। वह तुम्हें न करने की अवस्था में ला रहा है।

हालांकि तुम करने से न करने की अवस्था में न जाओगे। तुम कुछ रास्ते निकालोगे। तुम कहोगे कि मुझे प्रकाश दिखाई पड़ने लगा। तुम कुछ करके पा रहे हो, यह तुम बताओगे गुरु को जा—जाकर। तुम कहोगे कि अब मुझे लाल—नीले रंग दिखाई पड़ रहे हैं। तुम कहोगे, अब मुझे ओंकार का नाद सुनाई पड़ने लगा। तुम कहोगे, मेरी कुंडलिनी जाग्रत हो रही है। तुम हजार तरकीबें निकालोगे यह सिद्ध करने की कि जो मैं कर रहा हूँ वह विफल नहीं हो रहा है, वह सफल हो रहा है।

तुम अपने अहंकार को बचाने के सब उपाय करोगे। लेकिन अगर तुम्हें सौभाग्य से सदगुरु मिल गया हो, तो वह तुम्हारे एक उपाय चलने न देगा। वह कहेगा, यह कुंडलिनी, यह सब बकवास

है। यह सब तुम्हें वहम है। तुम सपना देख रहे हो। बंद करो यह बात। ये रंग—बिरंगे चित्र, जो तुम्हें दिखाई पड़ रहे हैं, ये स्वप्न से ज्यादा नहीं हैं। यह तुम्हें जो प्रकाश दिखाई पड़ रहा है, यह तुम्हारी कल्पना है।

सदगुरु तो तुम्हें टिकने नहीं देगा। तुम कितनी ही सफलता की खबरें लाओ, वह तुम्हें विफल करता रहेगा। और अगर तुम भाग ही न गए उसके पास से, तो वह तुम्हें जरूर उस जगह ले आएगा धीरे— धीरे—तुम्हारी सामर्थ्य के अनुसार ही लाएगा—उस जगह ले आएगा, जहां तुम कहोगे कि करने से कुछ भी नहीं होता।

और जिस दिन तुम समझोगे, करने से कुछ नहीं होता, उसी दिन कर्तापन विलीन हो जाएगा। और उस कर्तापन के विलीन होने के क्षण में ही तुम्हारी बूंद में पूरा सागर उतर आएगा। उसी क्षण सब कुछ हो जाएगा। जब तुम मिट जाओगे, तो सब कुछ हो जाएगा। जब तक तुम हो, तब तक कुछ भी न होगा।

और तुम्हारी पूरी कोशिश यह है कि तुम बने रहो। तो तुम न मालूम क्या—क्या व्यर्थ की बातें खोज लाते हो कि यह उपलब्धि हो रही है। और इस वजह से तुम्हें व्यर्थ के गुरु भी मिल जाते हैं।

सौ गुरुओं में कभी कोई एक सदगुरु होगा। निन्यानबे जो गुरु हैं, वे तुमने पैदा किए हैं। वे तुम्हारी तृप्ति के लिए, तुम्हारी सांत्वना के लिए हैं। तुम कहते हो, कुंडलिनी जग रही है। वे कहते हैं, बिलकुल जग रही है। तुम कहते हो, रंग—बिरंगे सपने दिखाई पड़ रहे हैं। वे कहते हैं, ये सपने नहीं हैं, ये बड़ी कीमती बातें हैं। इनका बड़ा मूल्य है। तुम बड़ी ऊंचाई पर पहुंच रहे हो। सिद्धावस्था तुम्हारी बिलकुल करीब है।

तुम्हारी मूढ़ता के कारण, तुम्हारे अहंकार के कारण गुरुओं का इतना बड़ा जाल चलता है। लेकिन सदगुरु तुम्हें कभी भी सफल नहीं होने देगा। इसे जरा खयाल रखें।

सदगुरु तुम्हें सफल नहीं होने देगा। तुम कितने ही उपाय करो, वह तरकीबें निकालेगा, तुम्हारी टाग खींचकर तुम्हें वापस गिरा देगा। वह तुम्हें उस जगह ला रहा है, जहां बिलकुल ही साफ तुम्हें हो जाए कि तुम्हारे किए कुछ भी नहीं हो सकता।

इसलिए गुरु की बड़ी कठिनाई है। क्योंकि तुम चाहते हो, कुछ हो जाए। और तुम्हें समझाने—बुझाने के लिए —वह तुम्हारा सिर थपथपाता रहता है कि ही, ठहरो, कल होगा; परसों होगा, रुको। और जब भी कुछ होता है, तब उसकी चेष्टा होती है कि तुम इसको मूल्य मत दो। और वह कहता है, रुको, कल होगा। क्योंकि कल तक तुम्हें रोकना भी जरूरी है। तुम भाग जा सकते हो। तुम्हें भविष्य की आशा देनी जरूरी है।

तुम्हारे अतीत को मिटाना है, तुम्हारे भविष्य को भी मिटाना है। लेकिन तुम रुकोगे, तभी यह हो सकता है। तो वह तुम्हें आशा देता है कि ठहरो। एक दिन, अगर तुम रुके ही रहे, और अगर तुमने साहसपूर्वक प्रयत्न किया, और सब प्रयत्न तुम्हारे असफल हो गए...।

जब मैं कह रहा हूं सब प्रयत्न, तो मेरा मतलब समझ लें, सब प्रयत्न। कुछ बाकी न रहा करने को। सारी आशा तिरोहित हो गई। कोई किरण न रही आशा की। उस गहन अंधकार में ही महासूर्य का जन्म है। उस दिन तुम खाली हो जाओगे। उस दिन तुम कहोगे, अब कुछ करने को भी नहीं बचा। अब वासना को दौड़ाने के लिए कोई मार्ग नहीं है, अब कोई भविष्य नहीं है। और अब अहंकार को सम्हालने के लिए कोई उपाय नहीं है। सब बैसाखियाँ गिर गईं। अब तुम बच नहीं सकते।

इस घड़ी में ही गुरु के सहारे की जरूरत हो जाती है। क्योंकि इस घड़ी में तुम भाग जा सकते हो, और यही क्षण था, जब खजाना मिलने के करीब था। इस वक्त भी वह तुम्हें कहेगा कि ठहरो, कुछ मत करो, रुको, सब होगा।

उसका आश्वासन तुम्हारे धैर्य को बढ़ाने के लिए है। होगा सब तुम्हारे भीतर, कोई गुरु कुछ भी नहीं करता है। और जो गुरु करता है, समझना कि वह गुरु नहीं है। क्योंकि सत्य को दिया नहीं जा सकता। सत्य को खींचकर पैदा नहीं किया जा सकता। सिर्फ तुम्हारी व्यर्थ दौड़—धूप को मिटाना है।

तुम वहीं खड़े हो, जहां सत्य है। लेकिन तुम्हें खड़े होने की आदत नहीं है। तुम भाग रहे हो। तुम दौड़ रहे हो। तुम्हारी दौड़ गिरानी है। कर्म तुम्हारी दौड़ है।

और तुम्हें सदा आसानी है। एक कर्म छोड्कर तुम दूसरा पकड़ सकते हो। तुम एक गुरु को छोड्कर दूसरा पकड़ लोगे। कोई तुम्हारे चक्र जगाएगा। कोई तुम्हारी कुंडलिनी को सहारा देगा। कोई कुछ और सिखाएगा। तुम गुरु बदलते रहोगे। तुम विधि बदलते रहोगे। लेकिन तुम अपने को मजबूती से पकड़े रहोगे।

सदगुरु की छाया में तुम्हें मिटना पड़ेगा। और जिनकी मिटने की तैयारी हो, वे ही केवल सत्य को पा सकते हैं।

तो निश्चित ही, सारी विधियों की एक ही उपादेयता है, वह है करने की व्यर्थता को जान लेना। करने की व्यर्थता जान ली कि होने की सार्थकता समझ में आ जाती है। और होना और करना बिलकुल विपरीत है। करना बाहर है, होना भीतर है। जब करना बिलकुल बंद हो जाता है, तो होने का सूर्य प्रकट होता है, फूल खिलता है। किसी भी भांति प्रयत्न से तुम्हें छुटकारा चाहिए।

लेकिन अगर तुमसे सीधा कह दिया जाए कि तुम सब करना छोड़ दो, तो तुम्हें बात समझ में ही न आएगी। तुम्हें इंच—इंच तैयार करना पड़ेगा। एक—एक मार्ग से तुम्हें ले जाना पड़ेगा। और एक—एक मार्ग व्यर्थ होने लगे और तुम्हें दिखाई पड़ने लगे कि करने से कुछ होने वाला नहीं है। क्योंकि जो है, वह मेरे बिना किए हुए मेरे भीतर मौजूद है। अगर मैं एक क्षण को भी कर्म को छोड़ दूं कर्म की चंचलता हट जाए, तो उस अचंचल स्थिति में वह प्रकट हो जाए।

लेकिन हम अपने को धोखा देने में कुशल हैं। मनुष्य की बड़ी से बड़ी कुशलता है, सेल्फ डिसेप्शन, आत्मवंचना। और हम इस तरकीब से धोखा देते हैं कि हम खुद ही नहीं पहचान पाते कि हमने अपने को धोखा दिया।

मुल्ला नसरुद्दीन एक बाजार से गुजर रहा है। एक आम वाले का ठेला खड़ा है और आम वाला उस तरफ मुंह करके किसी से बात कर रहा है। तो उसने एक आम उठाकर अपने झोले में डाल लिया। फिर उसकी आत्मा कचोटने लगी। फिर उसे लगा कि चोरी करना तो ठीक नहीं। और बेचारे आम वाले को धोखा दे दिया। गरीब आदमी है; और गरीब को धोखा देना उचित नहीं है। यह मैंने पाप किया।

तो वह वापस गया। झोले से आम निकाला और आम वाले से कहा कि आम बदल दो। आम वाले ने समझा कि खरीदा होगा इसने, तो उसने बेचारे ने बदल दिया। तब वह प्रसन्नता से घर लौटा। उसने कहा, पहला तो मैंने चुराया था, दूसरा उसने खुद ही दिया है। अब आत्मा में कोई कांटा नहीं चुभ रहा है। अब वह बिलकुल प्रसन्न घर जा रहा है; क्योंकि दूसरा उसने खुद दिया है। अब कोई सवाल ही नहीं है।

करीब—करीब आप यही कर रहे हैं। जरा—सा हेर—फेर कर लेते हैं और सोचते हैं, सब हल हो गया। ऐसे हल नहीं होगा। यह धोखा चल नहीं सकता। आपको समझना ही होगा कि मूल समस्या क्या है।

मूल समस्या इतनी है कि जो आपको मिला ही हुआ है; उसको आप पाने की कोशिश कर रहे हैं। जैसे एक मछली सागर में सागर को खोजने की कोशिश कर रही हो। बड़ी कठिनाई है। गुरु क्या कर सकता है इस मछली के लिए!

एक ही उपाय है कि किसी भांति इस मछली को पानी के बाहर खींच ले, ताकि यह तड़फने लगे। और यह तड़फ जाए रेत पर दो क्षण, वापस इसको सागर में डाल दे, तो यह फौरन पहचान जाएगी कि मैं सागर में सदा से थी। लेकिन जब तक यह सागर से अलग नहीं हुई, तब तक इसको पता भी नहीं चल रहा है।

आप परमात्मा में हैं, जैसे मछली सागर में है। जैसे मछली सागर के बिना नहीं हो सकती, आप परमात्मा के बिना नहीं हो सकते हैं। वह आपके होने का ढंग है। वह आपके होने का आधार है।

तो गुरु क्या करे? आप उससे पूछते हैं, मैं क्या करूं परमात्मा को पाने के लिए? और वह देख रहा है कि मछली पानी में तैर रही है। और पूछती है, पानी को पाने के लिए क्या करूं? तो आपको कुछ विधि बताता है। वे विधिया सब ऐसी हैं कि जिनसे आप तड़फ जाएं; जिनसे आप क्षणभर के लिए उस बेचैनी से भर जाएंगे, जो आपको सागर से अलग कर दे एक क्षण को भी। और जैसे ही वह अलग होने की व्यर्थता और पीड़ा आपको पता चलेगी, आप वापस सागर में गिर जाएंगे। वह सागर में गिरना ही परमात्मा से मिलना हो जाएगा।

सारी खोज की दुविधा, समस्या, उलझाव यही है कि हम उसे खोज रहे हैं जो मिला ही हुआ है। और गुरु को आपको वही दिखाना है, जो आप देख ही रहे हैं। क्या किया जाए?

मैं एक कहानी कहता रहा हूं। एक आदमी ने शराब पी ली। शराब पीकर रात वह अपने घर लौटा, आदतवश।

घर आने के लिए कोई होश की जरूरत तो किसी को भी नहीं होती। अपने घर तो आदमी यंत्र की तरह चला आता है। कब मुड़ना है बाएं, कब दाएं; किस गली से जाना है, कहां से आना है। अपने घर आने के लिए कोई होश की जरूरत किसी को भी नहीं होती है। आप भी बेहोश ही अपने घर आते हैं। साइकिल का हैंडल मुड़ जाता है, गाड़ी का व्हील मुड जाता है, पैर घूम जाते हैं। आप अपने घर आ जाते हैं।

वह बेहोश तो था, अपने घर पहुंच गया। लेकिन घर के सामने जाकर उसको खयाल आया कि यह मेरा घर है या नहीं! आंखों में धुंध थी; भीतर नशा था। कुछ ठीक साफ समझ नहीं। चीजें घूमती मालूम पड़ रही थीं। तो बैठ गया अपनी सीढ़ियों पर और आस—पास से गुजरने वाले लोगों से पूछने लगा कि कोई मुझे मेरे घर का पता बता दो।

कोई हंसा। किसी ने कहा, अरे मूर्ख, तू अपने घर के सामने बैठा है। तू अपने घर की सीढ़ी पर ही बैठा हुआ है। उसने कहा, तुमने मुझे इतना नासमझ समझा हुआ है कि अपने घर की सीढ़ी पर बैठकर मैं तुमसे पूछूंगा?

जिसने भी उसे बताने की कोशिश की कि तू अपने घर की सीढ़ी पर बैठा है, उसने समझा कि वह उसे धोखा देने की कोशिश कर रहा है। अगर मैं अपने घर की सीढ़ी पर बैठा हूं तो मैं पूछूंगा क्यों? भीड़ इकट्ठी हो गई। उसकी मां, की मां, शोरगुल सुनकर मकान के बाहर आई। आधी रात, देखा उसका बेटा रो रहा है और भीड़ खड़ी है। और वह पूछ रहा है, मेरा घर कहां है? तो उसकी मां ने उसके सिर पर हाथ रखा और कहा कि बेटा, तू पागल हो गया! यह तेरा घर है।

उसने उसको देखा। वह पहचाना तो नहीं। देखा, कोई स्त्री खड़ी है। उसने पैर पकड़ लिए और कहा, माई, तू कृपा कर और मुझे मेरे घर का पता बता दे।

तभी पड़ोस का एक आदमी, जो खुद भी नशे में था, वह अपनी बैलगाड़ी जोतकर आ गया। उसने कहा कि बैठ, तू मानता ही नहीं, तो मैं तुझे पहुंचा दूंगा।

उसकी मां रोती है। वह कहती है, इसकी बैलगाड़ी में मत बैठना, नहीं तो यह न मालूम तुझे कहां ले जाए। तू घर पर है ही। अगर तू कहीं भी गया, तो दूर निकल जाएगा।

तो करीब—करीब हालत हमारी ऐसी ही है। अगर कोई कहे कि जिसको आप खोज रहे हैं, वह आपके भीतर है, तो आप कहते हैं, तो क्या मैं इतना मूढ़ हूं कि मुझे पता नहीं! तो आपके लिए बैलगाड़ी जोतनी पड़ती है। उसमें आपको बैठाना पड़ता है कि चलिए विराजिए। आपको पहुंचा देंगे आपके घर तक।

इसमें जो गुरु है, वह तुम्हें बैलगाड़ी पर बिठा—बिठाकर थकाएगा। और घुमा—फिराकर उसी जगह ले आएगा, जहां से बैलगाड़ी की यात्रा शुरू हुई थी। लेकिन इस बीच बैलगाड़ी में तुम्हें इतने दचके देगा कि तुम्हारा होश आ जाए, तुम्हारी बेहोशी टूट जाए, नींद टूट जाए।

तुम्हारी मंजिल दूर नहीं है। तुम्हारा होश कायम नहीं है। जो पाना है, वह तो यहां है। लेकिन जिसे पाना है, वह बेहोश है। और उससे सीधा यह कह देना कि तुम वहीं खड़े हो, जहां पाना है, वह तुम्हारी मानेगा नहीं। अगर उसको यही समझ में आ जाता, तो वह तुमसे पूछता ही नहीं।

शिष्य गुरु के पास इसलिए आ रहा है कि वह जानता है कि जहां वह है, वहां कुछ भी नहीं है। और जहां सब कुछ है, वह बहुत दूर है मंजिल। बड़ी कठिन है वहां पहुंचने की यात्रा। किसी से पूछना पड़ेगा, कोई गाइड चाहिए। इसीलिए तुम्हारे पास आया है। और अगर तुम उससे सीधा—सीधा कह दो, यहां आने का कोई सवाल नहीं है, क्योंकि तुम वहां हो ही, मंजिल में ही तुम रह रहे हो, तब वह कोई दूसरा गुरु खोजेगा, जो उसे ले जाए।

तो सदगुरु को तुम्हारी नासमझी के साथ योजना बनानी पडती है। वह बैलगाड़ी जोतता है, ताकि तुम्हें भरोसा आ जाए कि ठीक है। वह तुम्हें बिठाता है। वह गाड़ी चलाता है। वह तुम्हें काफी चक्कर लगाता है। और उसी जगह तुम्हें ले आना है, जहां तुम थे, जहां से तुम्हें यात्रा पर शुरू किया गया था।

समस्त गुरुओं का एक ही उपाय है कि तुम्हें कर्म की व्यर्थता, विधि की व्यर्थता बोध में आ जाए। प्रयत्न व्यर्थ है। निष्प्रयत्न उसकी उपलब्धि है। पर यह आने के लिए काफी भटकना जरूरी है। और अपने ही घर को पहचानने के लिए न मालूम कितने घरों, कितने द्वारों की तलाश करनी पड़ती है। जहां तुम हो, वहां आने के लिए तुम्हें करीब—करीब पूरे संसार का चक्कर लगा लेना होता है।

तीसरा प्रश्न :
गुणातीत में जाने के लिए आपने साक्षी—भाव का प्रयोग बताया। लगता है, आपकी सारी शिक्षा का केंद्रीय तत्व साक्षीत्व है। वर्षों से मैं आपको सुनता हूं और संभवत: साक्षीत्व का प्रयोग भी करता हूं। लेकिन क्षितिज की तरह वह मुझसे जहां का तहां खड़ा मालूम होता है। कृपा करके बताएं कि मेरी भूल क्या है?
बस इतनी ही भूल है कि यह साक्षी— भाव को भी आप क्रिया बना लिए हैं। आप सोचते हैं, आप साक्षी— भाव साधते हैं। साक्षी— भाव भी आपको कुछ करने जैसा मालूम होता है। एक भूल।

साक्षी— भाव कृत्य नहीं है, समस्त कृत्यों के प्रति बोध का भाव है। इसलिए साक्षी— भाव स्वयं कृत्य नहीं है। साक्षी— भाव के लिए कुछ करना नहीं पड़ता। जो भी आप करते हैं, उसको देखना है।

और साक्षी— भाव को अगर आप कर्म बना लेंगे, तब तो फिर आपको इसको भी देखना पड़ेगा। इसके पीछे फिर आपको पुन: साक्षी होना पड़ेगा। साक्षी अंतिम है, उसके पीछे जाने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए आप साक्षी— भाव को कर्म मत बनाएं, उसे सहज रहने दें।

जरा कठिन है, क्योंकि हम सब चीज को कर्म बना लेते हैं। हम साक्षी— भाव को भी साधने लगते हैं।

यह वैसा ही है, जैसे किसी आदमी को मैं कहूं कि नींद को लाने के लिए कुछ करना नहीं पड़ता। और उसको नींद नहीं आती। वह मुझसे पूछेगा, यही तो मेरी समस्या है कि मुझे नींद नहीं आती। मैं पूछता हूं कि क्या करूं कि नींद आ जाए? और आप कहते हैं, नींद लाने के लिए कुछ करना नहीं पड़ता। तो इसका मतलब हुआ कि मुझे नींद कभी आएगी ही नहीं। मुझे आती नहीं।

वह कोई विधि मांगता है। वह कहता है, मैं कुछ करूं, जिससे नींद आ जाए। तो आप उसे बता सकते हैं कि तू एक से लेकर सौ तक गिनती कर। फिर सौ से उलटा लौट—निन्यानबे, अट्ठानबे, सत्तानबे—एक तक आ। फिर एक से जा।

मगर उसके खतरे हैं। खतरा यह है कि जब तक आप गिनती पढ़ते रहेंगे, तब तक तो नींद आ ही नहीं सकती। क्योंकि कोई भी कर्म नींद में बाधा डालेगा। कोई भी कर्म विश्राम में बाधा डालेगा। आप कुछ भी करें, जब तक आप कर रहे हैं, तब तक नींद नहीं आएगी। करना तो बंद होना चाहिए तभी नींद आएगी।

नींद नहीं आती, उसका मतलब ही इतना है कि आपके मन में करना जारी रहता है। इतना ही हो सकता है कि एक से सौ तक गिनती, सौ से फिर वापस एक तक गिनती, फिर एक से सौ तक गिनती आपको उबा दे, थका दे। और आप कर—करके ऊब जाएं, थक जाएं। और उस थकान की वजह से संख्या पढ़ना भूल जाएं। और उस भूले क्षण में नींद आ जाए। यह हो सकता है। लेकिन नींद तो तभी आएगी, जब करना छूट जाएगा। जब तक करना जारी रहेगा, तब तक नींद नहीं आएगी। करने में और नींद में विपरीतता है।

ठीक ऐसे ही साक्षी— भाव की दशा है। आप कुछ भी करें, साक्षी— भाव नहीं हो पाएगा। क्योंकि जो भी आप करेंगे, उसमें कर्ता हो गए। साक्षी का मतलब ही यह है कि मैं कर्ता नहीं बनूंगा, मैं सिर्फ देखूंगा। मैं किसी तरह का कर्ता— भाव पैदा नहीं होने दूंगा। लेकिन आप कहते हैं कि मैं सिर्फ देखूंगा, तो मैं देखने का कर्म करूंगा। तो आप अकड़ जाएंगे और अकड़कर देखेंगे, वह कर्तृत्व हो गया, साक्षी— भाव खो गया।

साक्षी— भाव तो सहज है। उसके लिए अकड़ नहीं चाहिए। उसके लिए कोई करने की बात नहीं चाहिए। करने का कोई सवाल ही नहीं है।

मगर क्या करें आप! साक्षी— भाव पास में नहीं है, तो आप तो करेंगे ही। जब तक आप करेंगे, तब तक साक्षी— भाव नहीं सधेगा। इसीलिए आप कहते हैं, संभवत: साक्षीत्व का प्रयोग कर रहा हूं। नहीं तो संभवत: का खयाल नहीं आएगा। अगर साक्षी का प्रयोग हो रहा है, तो हो रहा है। संभव की क्या बात है?

आप कभी नहीं कहते कि संभवत: मैं जिंदा हूं! आप जिंदा हैं, तो आप जानते हैं, जिंदा हैं। मर गए तो बात खत्म हो गई। संभवत: कहने वाला भी नहीं रहा।

साक्षी— भाव अगर होगा, तो होगा। नहीं होगा, तो नहीं होगा। संभव का अर्थ ही यह हुआ कि आप साक्षी— भाव को एक क्रिया बना लिए हैं। आप कोशिश कर रहे हैं। कोशिश से ही तो साक्षी— भाव मिट जाएगा।

आप कोशिश मत करें। जो भी होता है, उसे देखें। कभी साक्षी— भाव हो जाए, तो ठीक, न हो, तो ठीक। लेकिन कोशिश मत करें। साक्षी— भाव को छोड़ दें अपने पर। एक क्षण को भी आ जाए चौबीस घंटे में, तो काफी है। बस, उतनी देर देख लें। जब न आए, फिक्र न करें। जब साक्षी— भाव आए, तो उसे देख लें। और जब न आए, तो उसके न आने को देखते रहें। जब द्रष्टा सध जाए, तो उसको देख लें। जब द्रष्टा खो जाए, तो उसको देख लें।

गुरजिएफ इस संबंध में बहुत कीमती है। गुरजिएफ से आस्पेंस्की ने पूछा है कि मैं...। क्योंकि गुरजिएफ की साधना थी सेल्फ रिमेंबरिंग की। उसको साक्षी— भाव कहें। स्वयं का स्मरण बनाए रखना। कभी—कभी भूल जाएगा। कभी—कभी खो जाएगा।

तो आस्पेंस्की गुरजिएफ से पूछ रहा है, उसका शिष्य, कि कभी—कभी जब खो जाए, तब मैं क्या करूं? कभी तो ध्यान सधता है और कभी बेध्यान हो जाता हूं। तो गुरजिएफ कहता है, जब ध्यान सधे, तो जानो कि ध्यान सधा। और जब बेध्यान हो जाओ, तो जानो कि अब बेध्यान है। लेकिन इसमें कुछ कलह खड़ी मत करो। बी अटेंटिव आफ योर इनअटेंशन। वह जब बेध्यान हो जाए तब उसका भी ध्यान रखो। जब होश रहे तो ठीक, होश के प्रति होश रखो। और जब बेहोशी आ जाए तो ठीक, बेहोशी के प्रति होश रखो।

बड़े मजे की बात है। क्योंकि जब आप बेहोशी के प्रति होश रखेंगे, तो बेहोशी टिक नहीं सकती।

सहज होश को रखो। उठते—बैठते, चलते—सोते, जो भी हो रहा हो। कभी—कभी सपना मन को पकड़ लेगा, तो पकड़ लेने दो। कभी—कभी भूल जाएंगे, तो भूल जाओ। इससे अड़चन खड़ी मत करो, इससे तनाव मत बनाओ। साक्षी— भाव के सहज सूत्र को स्फुरित होने दो।

धीरे— धीरे, एक—एक, दो—दो क्षण करके वह झरना फूटेगा। और अगर सहज रहे, तो वह झरना बंद नहीं होगा; बड़ा होता जाएगा। और अगर झपट्टा मारकर उसको पकड़ा, तो वे जो दो बूंद आ रही थीं, वे भी बंद हो जाएंगी।

कुछ चीजें हैं, जिनको झपट्टे से नहीं पकड़ा जा सकता। उसमें वे मर जाती हैं। वे बहुत कोमल हैं। अति कोमल हैं। बहुत डेलिकेट हैं, नाजुक हैं। उनको पत्थर की तरह हाथ में नहीं लिया जा सकता। लेकिन हमारी आदत हर चीज को पत्थर की तरह हाथ में लेने की है। इसलिए जब फूल पर भी हमारा हाथ पड़ता है, तो हम पत्थर की तरह ही हाथ में ले लेते हैं। उसमें ही फूल मर जाता है।

और साक्षी— भाव सबसे नाजुक फूल है। उससे ज्यादा नाजुक इस जगत में कोई भी चीज नहीं है। वह सर्वाधिक नाजुक है। उससे ज्यादा कोमल फिर कुछ भी नहीं है। इसलिए उसको आप झपट्टा मारकर नहीं पकड़ सकते। उसको आपको सहजता से आने देना होगा। आपको चुपचाप प्रतीक्षा करनी होगी। और अगर वह न आए, जैसा पूछा है, कि अभी भी दूर खड़ा मालूम पड़ता है, तो कृपा करके बताएं कि मेरी भूल क्या है? उसे दूर खड़ा रहने दें और देखते रहें। उसको पास लाने की फिक्र मत करें। सिर्फ देखने की फिक्र करें कि वह दूर खड़ा है। देखते रहें। उसको पास लाने की कोशिश में कर्ता— भाव आ जाएगा और साक्षी— भाव खो जाएगा। क्योंकि आप कर्म की फिर जिज्ञासा करने लगे।

अनंत जीवन तक भी वह खड़ा रहे साक्षी— भाव क्षितिज की तरह और आपको न मिले, तो भी जल्दी मत करें। और जिस दिन आप अपनी जगह खड़े रहेंगे और वह अपनी जगह खड़ा रहेगा और कोई भाग—दौड़ नहीं होगी, अचानक आप पाएंगे कि वह आपके भीतर खड़ा है, दूरी मिट गई। लेकिन दूरी मिटाई नहीं जा सकती। आप दौड़कर नहीं मिटा सकेंगे। क्योंकि दौड़ने का मतलब है, कर्ता आ गया।

यह कर्ता और साक्षी शब्दों का फासला ठीक से समझ लें। जब भी आप कुछ करने लगे, तो कर्ता आ गया। और जो भी हो रहा है, उसे आप देखते रहे, तो साक्षी रहा।

जो भी हो रहा है, होने दें। ऐसा समझें कि जैसे किसी और को हो रहा है। आप जैसे किसी नाटक को देख रहे हैं। किसी और पर कहानी बीत रही है। दूरी! उसमें इतने ज्यादा डूबे मत। उसकी वासना न बनाएं। नहीं तो हम सोचते हैं पहले कि जैसे और चीजें मिल जानी चाहिए, साक्षी— भाव भी मिल जाना चाहिए। उसकी वासना बनाते हैं। जितने जोर से हम वासना बनाते हैं, उतनी ही दूरी हो जाती है।

साक्षी— भाव आपके लाने से नहीं आएगा। आपके मिट जाने से आएगा। और मिटने की सुगमतम कला एक ही है कि आप करने के साथ अपने को मत जोड़े; सिर्फ देखने के साथ जोड़े।

इसलिए हमने परम साधना के सूत्र को इस मुल्क में दर्शन कहा है। दर्शन का मतलब है, सिर्फ देखने की कला। जरा भी कुछ न करें।

अंतिम प्रश्न :
कामवासना के पार जाने के लिए अविवाहित रहने की सहज इच्छा रखने वाला साधक साक्षी— भाव को साधे या वासना में उतरकर उसकी व्यर्थता या सार्थकता को जान ले? अविवाहित रहने की सहज इच्छा क्या इस तथ्य को इंगित नहीं करती कि इसकी व्यर्थता को उसने अपने पिछले जन्मों की यात्रा में बहुत दूर तक जान लिया है? क्या साक्षी— भाव बिना उसकी पूर्ण व्यर्थता जाने नहीं साधा जा सकता?
पहली बात, अविवाहित होने की सहज इच्छा और अकाम, एक ही बात नहीं हैं। अगर वासना ही न उठती हो, तब तो कोई सवाल नहीं है। तब तो यह सवाल भी नहीं उठेगा। वासना ही न उठती हो, तो यह सवाल ही कहां उठता है!

अविवाहित रहने की इच्छा और वासना का न उठना अलग बातें हैं। अविवाहित तो बहुत— से लोग रहना चाहते हैं। वस्तुत: तो जो ठीक वासना से भरे हैं, वे विवाह से बचना चाहेंगे, क्योंकि विवाह उपद्रव है वासना से भरे आदमी के लिए। विवाह का मतलब है, एक स्त्री, एक पुरुष से बंध गए। और वासना बंधना नहीं चाहती; वासना उन्मूक्त रहना चाहती है।

तो विवाह न करने की इच्छा जरूरी नहीं है कि ब्रह्मचर्य की इच्छा हो। विवाह न करने की इच्छा बहुत गहरे में अब्रह्मचर्य की इच्छा भी हो सकती है।

फिर विवाह न करने की इच्छा के पीछे हजार कारण होते '। विवाह एक जिम्मेवारी है, एक उत्तरदायित्व है। सभी लोग उठाना भी नहीं चाहते। बहुत चालाक हैं, वे बिलकुल नहीं उठाना चाहेंगे। कौन उस झंझट में पड़े!

लेकिन वासना का न होना दूसरी बात है। विवाह का वासना से कोई लेना—देना नहीं है। बिना वासना के आदमी विवाह कर सकता है, किन्हीं और कारणों से।

एक नौकरानी रखना भी महंगा है घर में। एक पत्नी से ज्यादा सस्ता कोई भी उपाय नहीं है। बिना वासना के आदमी विवाह कर सकता है। और वासना से भरा हुआ आदमी विवाह से बच सकता है। इसलिए विवाह और वासना को पर्यायवाची न समझें।

चारों तरफ विवाह का दुख दिखाई पड़ता है। जिसमें थोड़ी भी बुद्धि है, वह विवाह से बचना चाहेगा।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी उससे पूछ रही है कि क्या नसरुद्दीन, कभी तुम्हारे मन में ऐसा भी खयाल उठता है कि मुझसे तुमने विवाह न किया होता तो अच्छा होता? या ऐसा खयाल उठता है कभी कि मैंने—नसरुद्दीन की पत्नी ने—किसी और से विवाह कर लिया होता, तो अच्छा था न:

नसरुद्दीन ने कहा कि मैं किसी दूसरे का बुरा क्यों चाहने लगा! एक भावना जरूर मन में उठती है कि तू अगर सदा कुंआरी तो अच्छा था।

तो चारों तरफ विवाह आप देख रहे हैं। वहां जो दुख फैला हुआ है। हर बच्चे को उसके घर में दिखाई पड़ रहा है, उसके मां —बाप का दुख, बड़े भाइयों, उनकी पत्नियों का दुख। विवाह एक नरक है, चारों तरफ फैला हुआ है। बडी गहरी वासना है, इसलिए हम फिर भी विवाह में उतरते हैं। नहीं तो बहुत मुश्किल हो जाएगा। अंधे हैं बिलकुल, शायद इसलिए। बिलकुल समझ से नहीं चलते। या हर आदमी को एक खयाल है भीतर कि मैं अपवाद हूं। इसलिए ये सब लोग दुख भोग रहे हैं, मैं थोडे ही भोगूंगा। हर आदमी को यह खयाल है।

अरब में कहावत है कि परमात्मा हर आदमी को बनाकर उसके कान में एक बात कह देता है कि तुझे मैंने अपवाद बनाया है। तेरे जैसा मैंने कोई बनाया ही नहीं। तू नियम नहीं है, तू एक्सेप्शन है। और हर आदमी इसी वहम में जीता है।

आप अपने जैसे पचास आदमियों को मरते देखें उसी गट्टे में। आप अकड़ से चलते जाएंगे कि मैं थोड़े ही! मैं बात ही अलग हूं। इस अपवाद के कारण आप विवाह में उतरते हैं। नहीं तो आंख खोलने वाली है, विवाह की घटना चारों तरफ घटी हुई है। उसमें कहीं कोई छिपा हुआ नहीं है मामला।

तो जरा भी समझ होगी, तो आपमें विवाह की सहज इच्छा न।? पैदा होगी। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं हुआ कि आपमें ब्रह्मचर्य की इच्छा पैदा हो रही है। ब्रह्मचर्य बड़ी दूसरी बात है। अकाम बड़ी दूसरी बात है।

यह जो अकाम है, अगर वह सहज है, तो यह प्रश्न ही नहीं उठेगा। फिर कहीं जाने का कोई सवाल नहीं है, किसी अनुभव में उतरने की जरूरत नहीं है। जिस बात की मन में वासना नहीं उठ। रही, उसके अनुभव में उतरने का प्रयोजन क्या है? और अनुभव में उतरूं या न उतरूं, यह भी खयाल क्यों उठेगा?

साफ है कि वासना भीतर मौजूद है। विवाह की जिम्मेवारी लेने का मन नहीं है। मन चालाक है और वह होशियारी की बातें कर रहा है।

तो मैं कहूंगा कि अगर मन में वासना हो, तो वासना में उतरना . ही उचित है। उतरने का मतलब यह नहीं है कि आप साक्षी— भाव खो दें। उतरें और साक्षी— भाव कायम रखें। उतरेंगे, तभी साक्षी— भाव को कसौटी भी है। और अगर नहीं उतरे, तो। साक्षी— भाव तो साधना मुश्किल है। और वासना सघन होती जाएगी, और मन में चक्कर कांटेगी, और मन को अनेक तरह की विकृतियों में, परवरशंस में ले जाएगी।

जिनको हम साधु —संत कहते हैं, आमतौर से विकृत मनों की अवस्था में पहुंच जाते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन मरा। उसके बहुत शिष्य भी थे। इस दुनिया में शिष्य खोजना जरा भी कठिन मामला नहीं है। अनेक लोग उसे मानते भी थे। कुछ दिनों बाद उसका एक शिष्य भी मरा। तो जाकर उसने पहला काम स्वर्ग में तलाश का किया कि नसरुद्दीन कहां है। पूछा—तांछा तो किसी ने खबर दी कि नसरुद्दीन वह सामने जो एक सफेद बदली है, उस पर मिलेगा।

भागा हुआ शिष्य अपने गुरु के पास पहुंचा। वहा जाकर उसने देखा, तो बहुत चकित रह गया। का नसरुद्दीन एक अति सुंदर स्त्री को अपनी गोद में बिठाए हुए है। उसने मन में सोचा कि मेरा गुरु! और यह तो सदा विपरीत बोलता था स्त्रियों के; और ब्रह्मचर्य के बड़े पक्ष में समझाता था। यह क्या हो गया! लेकिन तब उसे तत्क्षण खयाल आया उसके अचेतन से कि नहीं—नहीं, यह परमात्मा का दिया गया पुरस्कार होगा, यह जो स्त्री है। मेरे गुरु ने इतनी साधना की और इतनी तपश्चर्या करता था और इतना ज्ञानी था कि जरूर उसको पुरस्कार में यह सुंदरतम स्त्री मिली है।

तो वह भागा हुआ गया। उसने कहा, धन्यभाग, और परमात्मा का अनुग्रह, प्रभु की कृपा; कैसा पुरस्कार तुम्हें मिला! नसरुद्दीन ने कहा, पुरस्कार? यह मेरा पुरस्कार नहीं है, इस स्त्री को मैं दंड की तरह मिला हूं। शी इज नाट माई प्राइज; आई एम हर पनिशमेंट। लेकिन उस शिष्य के मन में, अचेतन में, यह खयाल आ जाना कि यह पुरस्कार मिला होगा, इस बात की खबर है कि वासना कायम है और इसको पुरस्कार मानती है।

इसलिए ऋषि—मुनि भी स्वर्ग में किस पुरस्कार की आशा कर रहे हैं? अप्सराएं, शराब के चश्मे, कल्पवृक्ष, उनके नीचे ऋषि—मुनि बैठे हैं और भोग रहे हैं!

तो जो आप छोड़ रहे हैं, वह छोड़ नहीं रहे हैं। वह कुछ सौदा है गहरा और उसमें पुरस्कार की आशा कायम है। यह इस बात की सूचना है कि ये मन विकृत हैं। ये स्वस्थ मन नहीं हैं।

जिन—जिन के स्वर्ग में अप्सराओं की व्यवस्था है, उन—उन का ब्रह्मचर्य परवटेंड है, विकृत है। और जिन्होंने स्वर्ग में शराब के चश्मे बहाए हैं, उनके शराब का त्याग बेईमानी है, झूठा है। जो वे यहां नहीं पा सकते या यहां जिसको छोड़ने को कहते हैं, वहां उसको पाने का इंतजाम कर लेते हैं। यह मन की दौड़ साफ है। यह गणित सीधा है।

तो मैं तो कहूंगा कि बजाय वासना को दबाने, विकृत करने के साक्षी— भाव से उसमें उतर जाना उचित है। संसार एक अवसर है। यहां जो भी है, अगर उसका जरा भी मन में रस है, तो उसमें उतर जाएं, भागें मत। नहीं तो वह स्वर्ग तक आपका पीछा करेगा। आखिरी क्षण तक आपका पीछा करेगा। उसमें उतर ही जाएं। उसका अनुभव ले ही लें।

अनुभव मुक्तिदायी है, अगर होश कायम रखें। नहीं तो अनुभव पुनरुक्ति बन जाता है और नए चक्कर में ले जाता है।

इसलिए मैं यह नहीं कह रहा हूं कि मात्र अनुभव से आप मुक्त हो जाएंगे। अनुभव और साक्षी का भाव संयुक्त हो, तो आप मुक। हो जाएंगे। अकेला अनुभव हो, तो आपकी आदत और गहरी होती जाएगी। और फिर आदत के वश आप दौड़ते रहेंगे। और अकेला साक्षी— भाव हो और अनुभव से बचने का डर हो, तो वह साक्षी— भाव कमजोर और झूठा है। क्योंकि साक्षी— भाव को कोई भय नहीं है। न किसी चीज के करने का भय है, और न न करने का भय है।

साक्षी— भाव को कर्म का प्रयोजन ही नहीं है। जो भी हो रहा है, उसे देखता रहेगा। तो साक्षी मंदिर में बैठा हो कि वेश्यालय में, कोई फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि साक्षी का काम सिर्फ देखने का है।

कथा है बौद्ध साहित्य में, आनंद एक गांव से गुजर रहा है—बुद्ध का शिष्य। और कथा है कि एक वेश्या ने आनंद को देखा। आनंद सुंदर था। संन्यस्त व्यक्ति अक्सर सुंदर हो जाते हैं। और संन्यस्त व्यक्तियों में अक्सर एक आकर्षण आ जाता है, जो गृहस्थ में नहीं होता। एक व्यक्तित्व में आभा आ जाती है।

वह वेश्या मोहित हो गई। और कथा यह है कि उसने कुछ तंत्र—मंत्र किया। बुद्ध देख रहे हैं दूर अपने वन में वृक्ष के नीचे बैठे। दूर घटना घट रही है, आनंद बहुत दूर है, लेकिन कथा यह है कि बुद्ध देख रहे हैं। बुद्ध देख सकते हैं। वे देख रहे हैं। बुद्ध के पास सारिपुत्त, उनका शिष्य भी बैठा हुआ है। वह भी देख रहा है।

सारिपुत्त बुद्ध से कहता है, आप आनंद को बचाएं। वह किसी मुश्किल में न पड़ जाए। क्योंकि स्त्री बड़ी रूपवान है और उसने बडा गहरा तंत्र—मंत्र फेंका है। और आनंद कहीं ठगा न जाए। लेकिन बुद्ध देखते रहते हैं।

अचानक बुद्ध उठकर खड़े हो जाते हैं और सारिपुत्त से कहते हैं, अब कुछ करना होगा। सारिपुत्त कहता है, अब क्या हो गया जो आप करने के लिए कहते हैं? अब तक मैं आपसे कह रहा था, कुछ करें। आप चुप बैठे रहे। जो बीमारी शुरू हुई, उसे पहले ही रोक देना उचित है!

बुद्ध ने कहा, बीमारी अब तक शुरू नहीं हुई थी; अब शुरू हुई है। आनंद मूर्च्छित हो गया, साक्षी— भाव खो गया। अभी तक कोई डर नहीं था। वेश्या हो, सुंदर हो, कुछ भी हो, अभी तक कोई भय न था। और आनंद उसके घर में चला जाए; रात वहा टिके, कोई भय की बात नहीं थी। अब भय खड़ा हो गया है।

लेकिन सारिपुत्त बडा चकित है, क्योंकि आनंद अब भाग रहा है। वेश्या बहुत दूर रह गई है। जब बुद्ध कहते हैं, भय हो गया है, तब आनंद वेश्या से दूर निकल गया है भागकर और उसने पीठ कर ली है। वह लौटकर भी नहीं देख रहा है। लेकिन बुद्ध खड़े हैं। और वे कहते हैं, इस समय आनंद को सहायता की जरूरत है।

सारिपुत्त कहता है, आप भी अनूठी बातें करते हैं! जब वेश्या सामने खड़ी थी और आनंद उसको देख रहा— था और डर था कि वह लोभित हो जाए, मोहित हो जाए, तब आप चुपचाप बैठे रहे। और अब जब कि आनंद भाग रहा है, और वेश्या दूर रह गई है, और उसके मंत्र—तंत्र पीछे पडे रह गए हैं, और उसके प्रभाव का क्षेत्र पार कर गया है आनंद, और आनंद लौटकर भी नहीं देख रहा है, तो अब आपके खड़े होने की क्या जरूरत है?

बुद्ध ने कहा, वह भाग ही इसलिए रहा है कि साक्षी— भाव खो गया। अब वह कर्ता— भाव में आ गया है। और कर्ता की वजह से डरा हुआ है। और अब वह डर रहा है। जब तक साक्षी था, तब तक खड़ा था, डर के कोई कारण भी न थे। अब उसको सहायता की जरूरत है।

एक ही बात करने जैसी है कि आपके भीतर साक्षी— भाव बना रहे। फिर आप कुछ भी करें, विवाह करें, न करें, कुछ भी करें, साक्षी— भाव आपके अनुभव में जुड़ा रहे, तो आप आज नहीं कल अपनी मुक्ति की सीढ़ियां पूरी कर लेंगे।

लेकिन ध्यान रहे, अधूरे और कच्चे अनुभवों को रोकने का परिणाम विषाक्त होता है। भागें मत, डरें मत, साक्षी को ही सम्हाले। मेरा सारा जोर इस बात पर है कि आप जागे, बजाय भागने के। भागकर कहं। जाएंगे? विवाह न करें, यह हो

सकता है। लेकिन कितने लोग विवाह न करने से कुछ कहीं पहुंच नहीं जाते। विवाह न करने का परिणाम चित्त में और वासनाओं का जाल होता है।

अगर एक विवाहित और एक अविवाहित आदमी की जांच की जाए बैठकर, तो अविवाहित आदमी के मन में ज्यादा वासना मिलेगी। स्वाभाविक है। जैसे एक भूखे आदमी की और भोजन किए आदमी की जांच की जाए, तो भूखे आदमी के मन में भोजन का ज्यादा खयाल मिलेगा। जिसका पेट भरा है, उसके मन में भोजन का खयाल क्यों होगा!

तो जब तक आपको भीतर का साक्षी ही न जगने लगे, तब तक जीवन के किसी अनुभव से अकारण अधूरे में, अधकचरे में भागना उचित नहीं है। उस भय से कोई किसी सिद्धि को प्राप्त नहीं होता है। सारा जीवन अनुभव के लिए है। यह ऐसा ही है, जैसे हम किसी विद्यार्थी को विश्वविद्यालय भेज दें और वह वहा परीक्षाओं से बचने लगे। यह संसार परीक्षालय है। वहां आपकी चेतना इसीलिए

है, ताकि अनुभवों से गुजरकर परिपक्व हो जाए।

तो मैं तो कहूंगा, सब अनुभव भोग लें, बुरे को भी। अगर जरा भी रस हो बुरे में, तो उसको भी भोग लें। बस इतना ही खयाल रखें कि भोगते समय में भी होश बना रहे, तो आप मुक्त हो जाएंगे। और अगर आप डरे, जिम्मेवारी से बचना चाहा, तो वासनाएं विकृत हो जाएंगी और भीतर मन में घूमती रहेंगी।

उन विकृत वासनाओं के परिणाम कभी भी मुक्तिदायी नहीं हैं। स्वास्थ्य से तो कोई मुक्त हो सकता है, विकृति से कोई मुक्त नहीं हो सकता।

तो सहज हों, स्वाभाविक हों। और जो भी मन में उठता हो, उसको उठने दें, उसको पूरा भी होने दें। सिर्फ एक ही बात खयाल रखें कि पीछे एक देखने वाला भी खडा रहे और देखता रहे। आपकी पूरी जिंदगी एक नाटक हो जाए और आप उसको देखते रहें। यह देखना ही सारी जिंदगी को बदल देगा। यह बड़ा क्रांतिकारी सूत्र है, देखने के द्वारा पूरी जिंदगी को बदल लेना।

भागने के द्वारा कोई कभी नहीं बदलता। भागने से सिर्फ कमजोरी जाहिर होती है। और भागे हुए आदमी की वासनाएं पीछा करती हैं। वह जहां भी चला जाए, वासनाएं उसके पीछे होंगी।

अब हम सूत्र को लें।
और जो पुरुष अव्यभिचारी भक्तिरूप योग के द्वारा मेरे को निरंतर भजता है, वह इन तीनों गुणों को अच्छी प्रकार उल्लंघन करके सच्चिदानंदघन ब्रह्म में एकीभाव होने के लिए योग्य होता है।

तथा हे अर्जुन, उस अविनाशी परब्रह्म का और अमृत का तथा नित्य धर्म का और अखंड एकरस आनंद का मैं ही आश्रय हूं।

पहली बात, जो पुरुष अव्यभिचारी भक्तिरूप योग के द्वारा......।

व्यभिचार का अर्थ है, जहां मन में बहुत दिशाएं हों, जहां मन में बहुत प्रेम—पात्र हों, जहां मन में बहुत खंड हों। विभाजित मन व्यभिचारी मन है। अव्यभिचारी भक्तिरूप का अर्थ है कि मन एकजुट हो, इकट्ठा हो। एक ही धारा में बहे, एक ही दिशा की तरफ प्रवाहित हो, तो अव्यभिचारी है।

संसार में हमारा मन बहुत तरफ बह रहा है। संसार में हम सभी व्यभिचारी हैं। मन का एक हिस्सा धन के लिए दौड रहा है। मन का दूसरा हिस्सा पद के लिए दौड़ रहा है। मन का तीसरा हिस्सा यश के लिए दौड रहा है। मन का चौथा हिस्सा धर्म के लिए दौड़ रहा है। पांचवां हिस्सा कुछ और, छठवां कुछ और। आपके भीतर एक भीड़ है। और सभी अलग— अलग भागे जा रहे हैं।

इसलिए बड़ा द्वंद्व है और बडी कलह है। क्योंकि एक ही व्यक्ति को इतनी दिशाओं में भागना पड़ रहा है। जैसे एक ही बैलगाड़ी में हमने सब तरफ बैल जोत दिए हैं। आठों दिशाओं में बैल जा रहे हैं। बैलगाड़ी कहौ जाए? तो जब भी कोई बैल जरा ताकत ज्यादा लगा देता है या दूसरा बैल थोडा ढीला और शिथिल होता है या विश्राम कर रहा होता है या ज्यादा ताकत पहले लगा चुका होता है और अब ताकत नहीं बचती, तो बैलगाड़ी को थोड़ी देर कोई पूरब की तरफ खींच लेता है।

लेकिन यह थोड़ी देर हो सकता है। क्योंकि जो पूरब की तरफ खींच रहा है, वह थक जाएगा खींचने में। और पश्चिम की तरफ जो बैल बंधा हुआ है, जो कि इस खिंचने में जा रहा है, वह थकेगा नहीं। वह थोड़ा ढील दे रहा है, विश्राम कर रहा है। जब उसकी ताकत इकट्ठी हो जाएगी और पूरब की तरफ ले जाने वाला बैल थक जाएगा, तब वह पश्चिम की तरफ बैलगाड़ी को खींचेगा।

ऐसे आप जिंदगीभर खिचेंगे बहुत, पहुंचेंगे कहीं भी नहीं। बैलगाड़ी आखिर में वहीं अस्थिपंजर टूटे हुए पड़ी मिलेगी, जहां शुरू में खड़ी थी।

ऐसा हमारा मन है, व्यभिचारी मन है। इसमें कभी एक बात ठीक लगती है, कभी उससे विपरीत बात ठीक लगती है। अभी धन कमा रहे हैं, और तभी कोई आ जाता है कि आप! आप जैसा यशस्वी पुरुष! आपके नाम से तो एक धर्मशाला बननी ही चाहिए।

अभी धन इकट्ठा कर रहे थे, अब यह नाम का भी मोह पकड़ता है कि एक धर्मशाला तो कम से कम होनी ही चाहिए, जिस पर एक पट्टी तो लगी हो। एक मंदिर बनवा दूं। बिरला का मंदिर है, मेरा क्यों न हो! अभी धन पकड़े था, अब यह धन खर्चा करने का काम है। यह आपके मन के विपरीत है मामला। लेकिन इससे यश मिलता है, नाम मिलता है।

अब ये मंदिर बनाएंगे। मंदिर बनाते -बनाते यह बैल थक जाएगा। और मंदिर बन भी नहीं पाएगा, उसके पहले ही आप ब्लैक मार्केटिंग और जोर से करने लगेंगे। क्योंकि वह जितना पैसा खर्च हो गया, उसको पैदा करना है। तो इधर मंदिर बन नहीं पाता कि वह आदमी जोर से और जेब काटने लगेगा; चोरी और करने लगा; स्मगलिंग करेगा। कुछ उपाय करेगा जल्दी से, ताकि यह जो मंदिर में लग गया है, इससे दस गुना पैदा कर ले।

यह चल रहा है। यह पूरे वक्त आपके मन को पकड़े हुए है। यह विभिन्न दिशाओं में दौड़ता हुआ मन व्यभिचारी मन है। और व्यभिचारी को कोई शाति नहीं। हो नहीं सकती। अव्यभिचारी इसीलिए बड़ी मूल्यवान बात है।

कृष्ण कहते हैं, जब तक कोई अव्यभिचारी- भाव से सत्य की ओर, स्वयं 'की ओर, सच्चिदानंदघन परमात्मा की ओर न बहे, तब तक कोई उपलब्धि नहीं है।

और ध्यान रहे, अगर आप अव्यभिचारी है, तो एक ही क्षण में भी उपलब्धि हो सकती है। क्योंकि जब सारी शक्ति एक दिशा में बहती है, तो सब बाधाएं टूट जाती हैं।

बाधाएं हैं ही नहीं। बाधाएं खड़ी हैं, क्योंकि आप बहुत दिशाओं में बह रहे हैं। इसलिए आपकी शक्ति ही इकट्ठी नहीं हो पाती, जो किसी भी दिशा में बह सके।

जैसे हम गंगा को हजार हिस्सों में बांट दें और गंगा का कोई भी हिस्सा फिर सागर तक न पहुंच पाए। सारी गंगा रेगिस्तानों में खो जाए। गंगा के लिए कोई बाधा नहीं है। लेकिन अविभाज्य धारा चाहिए। गंगा इकट्ठी हो, तो ही सागर तक पहुंच सकती है। और आप भी इकट्ठे हों, तो ही परमात्मा तक पहुंच सकते हैं।

लेकिन जैसा हमारा मन है, उसमें बड़ी तकलीफ है। उसकी पहली तकलीफ तो यह है कि वह इकट्ठा कभी भी नहीं है, एकजुट कभी भी नहीं है; खंड-खंड है, टूटा-टूटा है। और जब एक खंड कहता है, यह करो, तभी दूसरा खंड कुछ

और कह रहा है कि यह मत करो। तो हम जो भी करें, उसी से पछतावा हाथ लगता है। और ! जो भी हम न करें, उसका भी पछतावा रह जाता है कि वह हमने क्यों न कर लिया।

हम दुख ही इकट्ठा करते हैं, करें तो, न करें तो। आप धन कमाए, तो दुखी होंगे। क्योंकि आप धन कमाकर पाएंगे कि इससे तो अच्छा था, मैंने ज्ञानार्जन किया होता, तो कुछ सुख तो मिलता। या इससे तो अच्छा था कि मैं किसी बड़े पद पर हो गया होता; सारी ताकत उस तरफ लगा दी होती। एक राजनेता हो गया होता। कुछ सुख तो मिलता।

राजनेता हो जाते, तो सोचते, इससे तो बेहतर था, कुछ धन ही कमा लेते। यह तो व्यर्थ की दौड़- धूप है। शान इकट्ठा कर लेते, तो कहते, क्या हुआ! शब्द ही शब्द हाथ में लग गए। कुछ मजबूत हाथ में नहीं है। कुछ सब्स्टेंशियल, कुछ सारभूत नहीं दिखता।

सभी रोते हुए दिखाई पड़ते हैं। वह जो शान इकट्ठा कर लेते हैं, वे रो रहे हैं। धन इकट्ठा कर लेते हैं, वे रो रहे हैं। पद इकट्ठा कर लेते हैं, वे रो रहे हैं। हंसता हुआ आदमी ही नहीं दिखता। जो भी

दिखता है, रोता हुआ दिखता है। फिर भी, जो आप हैं, उसके लिए आप ज्यादा रोते हैं। जो आप नहीं हैं, उसका आपको अनुभव नहीं है। आप सोचते हैं, सारा जगत सुख भोग रहा है, मेरे सिवाय। मैं दुख भोग रहा हूं।

जहां भी आप हैं, वहा आप असंतुष्ट होंगे, यह व्यभिचारी मन का लक्षण होगा ही। क्योंकि कोई भी काम आप टोटल, समग्र चेतना से नहीं कर पाते हैं। और जो काम समग्र चेतना से होता है, उसी का फल आनंद है।

अगर आप गड्ढा भी खोद पाएं जमीन में समग्र चेतना से, उस गड्ढा खोदते वक्त आपके पूरे प्राण कुदाली बन गए हों, और मन कहीं भी न जा रहा हो, सारा मन कुदाली में प्रविष्ट कर गया हो; गड्ढा खोदना ही एक क्रिया रह जाए और कहीं भी कोई दौड़ न हो, उस क्षण में आपको जो परम अनुभव होगा, वह आपको बड़ी से बड़ी प्रार्थना और पूजा और यज्ञ में नहीं हो सकता। क्योंकि आप जब प्रार्थना कर रहे हैं, तब मन हजार तरफ जा रहा है। तो वह कुदाली से जमीन खोदना प्रार्थना हो जाएगी।

प्रार्थना का एक ही अर्थ है, अव्यभिचारी चित्त की धारा। वह किसी भी तरफ जा रही हो, पर इकट्ठी जा रही हो।

जो पुरुष अव्यभिचारी भक्तिरूप योग के द्वारा, अव्यभिचारी प्रेम के द्वारा मुझको निरंतर भजता है।

जिसके मन में निरंतर अंतिम की खोज का स्वर बजता रहता है।

भजने का अर्थ यह नहीं कि आप बैठकर राम-राम, राम-राम कर रहे हैं। क्योंकि आपके राम-राम करने का कोई मूल्य नहीं है। जब आप राम-राम कर रहे होते हैं, तब भीतर आप और दूसरी चीजें भी कर रहे होते हैं। धीरे- धीरे अभ्यास हो जाता है। राम-राम करते रहते हैं, और दूसरे हिसाब भी लगाते रहते हैं। राम-राम ऊपर-ऊपर चलता रहता है, जैसे कि कोई और कर रहा हो। और भीतर सब हिसाब चलते रहते हैं। तो उसका कोई मूल्य नहीं है।

भजने का अर्थ है- भजन बड़ी गहरी प्रक्रिया है-उसका अर्थ है, मेरे रोएं-रोएं में रस की तरह कोई चीज डोलती रहे। उठुं, बैठुं, चलूं, बाकी एक स्मृति सजग ही रहे कि उस परम को उपलब्ध करना है, सत्य को खोज लेना है, मुक्ति को खोज लेना है। ये कोई शब्द बनें, यह आवश्यक नहीं है। इनको कोई ऊपर के शब्दों में छिपाने की जरूरत नहीं है। यह भीतर का भाव रहे। इसलिए इसे भक्ति कहेंगे। भक्ति का अर्थ है, भाव। यह भाव बना रहे।

जैसे मां घर में काम कर रही हो, वह चौके में काम कर रही है और उसका छोटा बच्चा घूम रहा है कमरे में। वह सब काम करती रहती है, लेकिन उसका भाव बच्चे की तरफ लगा रहता है। वह कहां जा रहा है? वह क्या कर रहा है? वह गिर तो नहीं जाएगा? वह कोई गलत चीज तो नहीं खा लेगा? वह कोई चीज गिरा तो नहीं लेगा अपने ऊपर? वह सब काम करती रहेगी, लेकिन उसका अचेतन प्रवाहित रहेगा बच्चे की तरफ।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि तूफान भी आ जाए, आंधिया बह रही हों, मां की नींद नहीं खुलती। लेकिन उसका बच्चा जरा-सी आवाज कर दे रात, उसकी नींद खुल जाती है। तूफान चल रहा है, उससे उसकी नींद नहीं टूटती। लेकिन बच्चे की जरा-सी आवाज, कि उसकी नींद टूट जाती है। जरूर कोई भाव गहरे में, नींद में भी सरक रहा है।

मनोवैज्ञानिकों ने बहुत-से अध्ययन किए हैं। उसमें एक अध्ययन बडा कीमती है। अभी स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी में वे एक प्रयोग करते हैं। और उस प्रयोग से भारत की बड़ी पुरानी खोज सिद्ध होती है। मुझसे भी लोग पूछते हैं, तो मैं वही प्रयोग उनको स्मरण दिलाता हूं।

मुझसे लोग पूछते हैं, आप अपने संन्यासी को कहते हैं स्वामी और अपनी संन्यासिनी को कहते हैं मां, ऐसा क्यों? संन्यासिनी को मां क्यों और संन्यासी को स्वामी क्यों? या तो उसको भी स्वामिनी जैसा कोई शब्द दें; या संन्यासी को भी पिता क्यों नहीं?

स्टैनफोर्ड में अभी-अभी एक प्रयोग हुआ, जो बड़ा सोचने जैसा है। वह प्रयोग यह है कि जिस चीज में आपका रस होता है, उस रस के कारण आपकी आंख की जो पुतली है, वह बड़ी हो जाती है। अगर आप कोई किताब पढ़ रहे हैं, जिसमें आप बहुत ज्यादा रस पा रहे हैं, तो कमरे में बिलकुल भी कम से कम प्रकाश हो, तो भी आप पढ पाएंगे। क्योंकि आपकी आंख की पुतली बड़ी हो जाती है, आपकी जिज्ञासा के कारण, आपके रस के कारण। और अगर आपको किताब में रस नहीं है, तो कमरे में प्रकाश भी पूरा हो, तो भी आपको धुंधला- धुंधला दिखाई पड़ेगा। क्योंकि रस नहीं होता, तो आंख की पुतली छोटी हो जाती है।

आंख की पुतली चौबीस घंटे छोटी-बडी होती है। जब आप बाहर जाते हैं धूप में, तो पुतली छोटी हो जाती है, क्योंकि उतनी धूप को भीतर ले जाने की जरूरत नहीं है। कम से काम चल जाता है। जब आप बाहर से भीतर आते हैं, तो पुतली बड़ी होती है, क्योंकि अब ज्यादा रोशनी भीतर जानी चाहिए।

इसीलिए एकदम धूप से आने पर आपको कमरे में अंधेरा मालूम पड़ता है, क्योंकि पुतली छोटी रहती है। थोड़ी देर लगेगी, तब पुतली बड़ी होगी। फिर कमरे में प्रकाश हौ जाएगा। आपकी पुतली बिलकुल छोटी—बड़ी होकर प्रकाश को कम—ज्यादा भीतर ले जाती है।

स्टैनफोर्ड में उन्होंने एक प्रयोग किया कि अगर पुरुषों को कोई भी चीज सबसे ज्यादा आकर्षित करती है, तो नग्न स्त्री के चित्र। नग्न स्त्री का चित्र सामने आए, तो उनकी आंख की पुतली एकदम बड़ी हो जाती है।

वह उनके बस में नहीं है। आप कोशिश करके धोखा नहीं दे सकते। क्योंकि आप पुतली को कुछ नहीं कर सकते, न छोटी कर सकते हैं, न बड़ी कर सकते हैं। नंगा चित्र स्त्री का सामने आते ही पुतली एकदम बड़ी हो जाती है।

लेकिन बड़े मजे की बात है कि नंगे पुरुष का चित्र देखकर स्त्री की पुतली बड़ी नहीं होती। लेकिन एक छोटे बच्चे का चित्र देखकर एकदम बडी हो जाती है। छोटा बच्चा, और स्त्री की पुतली एकदम बड़ी हो जाती है। जैसे मां होना उसकी सहज गति है।

पुरुष की सहज गति पिता होना नहीं है, पति होना, स्वामी होना सहज गति है। तो कोई पुरुष किसी स्त्री को इसलिए विवाह नहीं करता कि पिता बनेगा। सोचता ही नहीं है। बनना पड़ता है, यह दूसरी बात है। न बने, तब तक पूरी चेष्टा करता है।

लेकिन स्त्री जब भी सोचती है, तो वह पत्नी बनने के लिए नहीं सोचती, वह मां बनने के लिए सोचती है। और जब वह किसी से प्रेम भी करती है, तो उसको जो पहला खयाल होता है वह यही होता कि इससे जो बच्चा पैदा होगा, वह कैसा होगा! उसकी जो गहरी आकांक्षा है, वह मां की है।

इसलिए मैं अपनी संन्यासिनियों को मां कहता हूं, क्योंकि वह उनकी पूर्णता का अंतिम शब्द है। और पुरुष को स्वामी कहता हूं क्योंकि पति, मालिक होना उसकी आखिरी खोज है। वह अपना जिस दिन मालिक हो जाएगा, उसकी खोज पूरी होगी। और स्त्री की खोज उसी दिन पूरी होगी, जिस दिन सारा जगत उसे बेटे की तरह मालूम पड़ने लगे, सारा अस्तित्व उसे बेटे की तरह मालूम पड़ने लगे; सारे अस्तित्व से उसमें मातृत्व जग जाए।

भाव का अर्थ है, जिस दिशा में आपकी अचेतन धारा सहज बहती है। मां, स्त्री का भाव है। स्वामित्व, पुरुष का भाव है। वह कुछ भी करे, वह चाहे धन इकट्ठा करे, तो स्वामी होना चाहता है।

बड़े पद की तलाश करे, तो स्वामी होना चाहता है। त्याग करे, तो स्वामी होना चाहता है। वह कुछ भी करे, उसकी खोज एक है कि वह मालिक हो जाए, चीजों पर उसका कब्जा हो। वह अपनी भी खोज में निकले, तो भी स्वामी होना चाहता है।

भाव हम उसको कहते हैं, जिसको आपको सोचने की जरूरत नहीं पड़ती। जो आपके अचेतन में एक पर्त की तरह सदा बना हुआ है। आप कुछ भी करें, वह मौजूद है।

अव्यभिचारी— भाव का अर्थ है, परमात्मा का खयाल, स्मृति, वह खोज की धुन आपके भीतर बजती रहे। आप कुछ भी करें, करना ऊपर—ऊपर हो, वह धुन भीतर बजती ही रहे। तो आपका सारा करना उसका भजन हो जाएगा।

और आप उसका भजन करते रहें और भीतर कोई और धुन बजती रहे, वह बेकार है। उसका कोई भी मूल्य नहीं है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक रईस के घर नौकर हुआ, लखनऊ में। तो जैसा कि लखनऊ के रईसों का रिवाज था, पहले ही दिन नसरुद्दीन को कहा गया—महफिल बैठी रात, दस—बीस रईस इकट्ठे थे—कि नसरुद्दीन हुक्का भर ला।

नसरुद्दीन हुक्का भर लाया। लेकिन एक के सामने रखे। वह कहे, किबला आप ही शुरू करें। दूसरे के सामने रखे। वह कहे, किबला आप शुरू करें।

तीन दफा वह भर— भरके लाया। हुक्का बुझ जाए। और किसी ने एक निवाली भी न ली। चौथी दफा वह भरकर लाया। बीच में बैठकर उसने हुक्का गुडगुडाना शुरू कर दिया।

तो जो मालिक था, वह एकदम क्रोध से भर गया। उसने कहा, कोई है? इस बदतमीज को पच्चीस जूते लगाओ! नसरुद्दीन ने कहा, किबला आप ही शुरू करें। आपसे ही शुरू करें। वहीं से शुरू करें। मैं नियम समझ गया।

आपको आपके मन में नियम को ठीक से समझ लेना चाहिए। क्या नियम है? नियम यह है कि जो ऊपर चल रहा है, वह सार्थक नहीं है। जो भीतर चल रहा है, वह सार्थक है। इसलिए परमात्मा को अगर ऊपर जोड़ दें आप, कोई मूल्य का नहीं है। भीतर जुड़ना चाहिए। एक।

दूसरा नियम यह है कि आप व्यभिचारी हैं, आप हजार चीजें खोज रहे हैं। इस हजार में परमात्मा भी हजार और एक हो जाए, तो बेकार है। क्योंकि फिर वह व्यभिचार और बढ़ा, कम नहीं हुआ। एक हजार चीजें पहले खोज रहे थे, उस लिस्ट में एक परमात्मा और जोड़ दिया!

इसलिए कृष्ण कहते हैं कि परमात्मा को तुम अपने व्यभिचार की लिस्ट में न जोड़ सकोगे। तुम्हें सारी यह लिस्ट एक तरफ रख देनी पड़ेगी। और इस सारी लिस्ट की तरफ तुम्हारा जो प्राण दौड़ रहा है, वह अकेला परमात्मा की तरफ ही दौड़े।

तुम कुछ भी करो, लेकिन सब करना तुम्हारा भजन बन जाए। तुम भोजन भी करो, तो तुम्हें यह खयाल रहे कि जैसे तुम्हारे भीतर छिपा परमात्मा भोग ले रहा है। तुम स्नान करो, तो तुम्हें खयाल रहे कि तुम्हारे भीतर छिपा परमात्मा स्नान

कर रहा है। तुम उठो—बैठो, तो तुम्हें खयाल रहे कि परमात्मा उठता है और बैठता है। यह धुन इतनी गहरी हो जाए कि यह अव्यभिचारी हो जाए। इसमें दूसरे का खयाल न रहे। तो ही!

इसी रईस के संबंध में मुझे एक घटना और खयाल आती है।

नया—नया रईस था। नव—रईस जिसको कहते हैं। और नसरुद्दीन को नौकरी पर लगाया था। तो उसने कहा कि नसरुद्दीन, एक बात खयाल रखना। यह रईस का घर है। और यहां सब चीजें दिखावे की हैं। यहां वास्तविक होने की जरूरत नहीं है। लेकिन दिखावा भरपूर होना चाहिए। तो अगर मैं कहूं कि नसरुद्दीन, शर्बत ले आ! तो तू पहले पूछना, हुजूर, कौन—सा? गुलाब, कि अनानास, कि बादाम, केवड़ा, खस, कौन—सा हुजूर? तो जितने नाम हों, पहले सब कह देना। हालांकि अपने घर में एक ही है। और जो है, वही मैं तुझे कहूंगा कि ले आ नसरुद्दीन, यह ले आ।

दूसरे दिन ही कुछ मित्र आ गए और रईस ने कहा कि नसरुद्दीन, पान ले आ। नसरुद्दीन ने कहा, हुजूर कौन—सा? कपूरी, बनारसी, महोबा, कौन—सा?

पान बुलाया गया, जो पान घर में था। मित्रों ने लिया। मित्र बड़े अनुगृहीत हुए। चलते वक्त कहने लगे रईस से कि बहुत दिन बाद आए हैं, आपके पिताजी के दर्शन नहीं हुए। उनको बुलाएं।

रईस ने कहा कि नसरुद्दीन, पिताजी को बुला ला। नसरुद्दीन ने कहा, कौन से पिताजी? इंग्लैंड वाले, अमेरिका वाले, जर्मनी वाले, कि घरेलू स्वदेशी?

वह नियम समझ गया! आदमी की दोहरी परतें हैं। एक पर्त, वह जो दिखाने के लिए निर्मित किया है, और एक वह जो है।

जो आपकी दिखाने वाली पर्त है, उससे परमात्मा को मत जोड़ना। उससे कोई सार नहीं है। उसमें वह भी हो जाएगा, कौन—सा परमात्मा? वह जो न दिखाने वाली पर्त है, जो आंतरिक है और वास्तविक है, जहां एक ही पिता होता है, जहां बहुत पिता नहीं हो सकते, उस भीतर की धारा से उसे जोड़ना।

और जहां एक ही हो सकता है, केंद्र पर एक ही हो सकता है, परिधि पर अनेक हो सकते हैं। जैसे—जैसे चित्त अव्यभिचारी होता है, वह केंद्र पर थिर हो जाता है।

अव्यभिचार के लिए इतना जोर है, क्योंकि अव्यभिचार के माध्यम से ही तुम्हारी चेतना एक जगह बहेगी। और एक जगह बह जाए कि तुम अनंत शक्तिशाली हो—तुम ही। और अनेक जगह बह जाए, तो तुम नपुंसक हो, तुम व्यर्थ हो। तुम्हारी सब धाराएं मरुस्थल में खो जाएंगी और सागर से कभी मिलना न हो पाएगा। वह इन तीन गुणों को अच्छी प्रकार उल्लंघन करके—जो अव्यभिचारी— भाव से निरंतर परमात्मा को भजता है—वह इन तीन गुणों को अच्छी प्रकार से उल्लंघन करके सच्चिदानदघनरूप ब्रह्म में एकीभाव के योग्य हो जाता है।

तथा हे अर्जुन, उस अविनाशी परब्रह्म का और अमृत का तथा नित्य धर्म का और अखंड एकरस आनंद का मैं ही आश्रय हूं।

वह जो परम आनंद है, अमृत है, परब्रह्म है, धर्म है—जो भी हम उसे नाम दें—कृष्ण कहते हैं, उन सब का मैं ही आश्रय हूं।

यह जो मैं है, इसका कृष्ण की अस्मिता से कोई संबंध नहीं है। यह कृष्ण नाम के व्यक्ति के लिए उपयोग नहीं किया गया है, यह मैं।

उस सब का आश्रय मैं हूं........।

यह आप सबके भीतर जो छिपा हुआ अंतिम मैं है, उसके लिए उपयोग किया गया है। जो—जो भी कह सकता है मैं, उस मैं की जो अंतिम धारा है, उस अंतिम धारा के लिए उपयोग किया गया है। यह कृष्ण के मैं से इसका संबंध नहीं। यह समस्त चेतनाओं में जो गहरा आत्म — भाव है, वह जो मेरे का बोध है कि मैं हूं, उस होने का नाम है।

उस होने को ही सच्चिदानंदघन ब्रह्म, अमृत, आनंद या जो भी नाम हम चुनें —मुक्ति, परमेश्वर, प्रभु का राज्य, निर्वाण, कैवल्य—जो भी नाम हम चुनें, उसका अंतिम आश्रय है, आपके भीतर वह जो मैं की आखिरी शुद्धतम अवस्था है, होना, वही छिपी है।

लेकिन उसे पाने के लिए आपको अव्यभिचारी चेतना की धारा चाहिए; ध्यान चाहिए एकजुट, एक बहाव, और एक दिशा चाहिए।

और जो भी व्यक्ति ऐसी एक धारा को उपलब्ध हो जाता है, वह तीनों गुणों के पार गुणातीत परब्रह्म के साथ एकीभाव हो जाता है। वह योग्य हो जाता है।